पलायन' में 'आत्माभिव्यक्ति' का सुख है। तभी उसको कुछ त्राण मिलता है—कुछ!...किन्तु कला में भी उसको निष्कृति का असली मार्ग नहीं मिलता। क्योंकि वह अभी तक अपनी अकेली हस्ती को बड़ी चीज़ समझता है। हालांकि वह पूरे सिलसिले की एक बड़ी कड़ी है। उससे अलग कुछ नहीं।

और यों केवल चेतन इस उपन्यास का नायक नहीं रह जाता। इसका असली नायक एक-के-पीछे-एक लगा हुआ इन कड़ियों का सिलसिला है, जिनके बिना चेतन महज़ हवा में हाथ-पांव मारने वाली एक छाया की तरह रह जाता है। इस सिलसिले के सब से भरे पूरे और सजीव व्यक्ति हैं—चेतन की मां—सब्र और संतोष की देवी; उसके पिता—नशे और क्रूरता का देव; उसके भाई साहब—हर खरखशे से बच के लिए छड़ी उठाकर बाहर निकल जाने वाले; कुन्ती—उसके प्यार की पहली चीज़; और उसके सब से गहरे प्रेम को पाने वाली नीला और उस प्रेम की आड़—उसकी भोली-भाली बीवी चन्दा! और चेतन के समाजिक जीवन को बनाने वाले अन्य दूसरे लोग—जैसे 'हुनर' साहब—गांवों से आकर शहर में रंग जमाने वाले शायर; सरदार जगदीश सिंह—समाज के शरीफ़ लुटेरों के हाथ का खिलौना; विशेषकर कविराज रामदास—चेतन जैसे होनहार नवयुवकों का 'भला करने' और उनकी प्रतिभा को 'चूसने वाली' एक सब से मोटी, सब से चिकनी चालाक और अच्छी-भली जोंक; फिर म्यूज़िक कालेज के डायरेक्टर और संगीत विशारद बनने के सपने लेने वाला ग़रीब दुर्गादास... ..!

फिर चेतन क्या है!

जिस पर्दे पर इन सब लोगों का फ़िल्म चलता है, चेतन वह पर्दा है। इन लोगों से अलग वह सिर्फ़ एक छाया है, जो पाठक को कभी कभी उदास कर देती है—कभी कभी बहुत उदास कर देती है, क्योंकि वह-

आरा फिल्म उसी पर अंकित हुआ है। लेखक ने स्वयं उसे एक केन्द्र का स्थान और दर्जा दिया है।

और यों यह उपन्यास निम्न-मध्य वर्ग के प्रतीक एक व्यक्ति के मानस-पट पर हर उस घटना, दुर्घटना, आशा आकांक्षा, सफलता-असफलता प्यार और चोट और उनकी उस चोट का उपन्यास है जो निचले मध्यवर्गीय जीवन का ताना बाना कसते और ढीला करते हैं।

लेकिन इस वर्ग के प्रतीक— इस चेतन ने एक बुद्धिजीवी कलाकार की राह पकड़ ली है। यह राह असंतोष की है, झल्लाहट की है अपने और दुनिया भर के ऊपर क्रोध की है। इन झल्लाहटों—याने इनके कारण को— दूर करने की है। भागने की नहीं अपने आपको—याने समाज को बदलने की है।

मध्य वर्ग का पाठक इस उपन्यास में अपने वर्ग का एक नमूना इतने नजदीक से देख लेता है कि उस परिवार का अन्दर बाहर, उसके पीछे-और-आगे का भरा-पूरा 'क्लोज़-अप-चित्र'— इतनी ओर से लिया गया उसकी आंखों के सामने आता है कि इसका जोड़ उसे हिन्दी के किसी अन्य उपन्यास में कम—और शायद ही कहीं—मिलेगा।

रही उपन्यास की कला तो वह हमारे पुराने मंदिरों की मूर्तिकला की याद दिलाती है, जिनकी दीवारें मूर्तियों से भरी होती हैं। एक बीच की बड़ी मूर्ति, फिर अगल-बगल दो चार उससे छोटी, फिर इनके चारों ओर इन मूर्तियों की कथा चित्रित करती हुई अनेक मूर्तियां...देवी देवता उनके गण, उनके सेवक और उनकी लीलाएं.....*(शमशेर बहादुर सिंह की एक आलोचना के आधार पर)*

कोई उत्कृष्ट कलाकृति लेखक ही से नहीं, पाठक और आलोचक से भी श्रम और समझदारी की माँग करती है !

१

न आकर आख़िर एक दिन चेतन चुपचाप अपनी भावी पत्नी को
के लिए बस्ती ग़ज़ाँ की ओर चल पड़ा।

स्ती ग़ज़ाँ जलन्धर से कुछ अधिक दूर नहीं। दोनों में इतना ही
है कि सुन्दर से सुन्दर घोड़े तांगे वाला भी बड़ी ख़ुशी से फ़ी
दो पैसे ले लेता है और कभी-कभी किसी सूखी-सड़ी कंजूस बुढ़िया
एक पैसे पर ले जाने को भी तैयार हो जाता है। किसी
में यह ग़ज़ जाति के लम्बे-तगड़े पठानों की बस्ती थी, लेकिन
ब में पतले दुबले, तपेदिक के रोगी से, हिन्दू-मुसलमान दोनों
यों के लोग आबाद हैं। न जाने ये बाहर से आकर वहां बस गये
उन्हीं सुन्दर, सुगठित, बलिष्ठ पठानों के वंशज हैं।

चुपचाप अपने मन में उस लड़की का चित्र बनाता (जिस की चर्चा
दिनों से उस के घर में बराबर हो रही थी) चेतन चला जा
ा। दिन ढल रहा था और बाज़ारों में छिड़काव के कारण मिट्टी

की सोंधी-सोंधी महक फैल रही थी। चारों ओर खासी चहल-पहल थी। 'बाजियाँ वाला बाज़ार' में अपनी-अपनी दुकानों के तख्तों पर बैठे दो कलावन्त क्लार्नेटों पर मुँह फुला फुला कर अपनी कला का परिचय दे रहे थे। कुछ आगे चौरस्ती अटारी में, गाकर किस्से बेचने वाले दो पंजाबी कवि तहमद लगाये, लट्ठे की खुले गले वाली कमीज़ें पहने, उल्टी सीधी पगड़ियाँ बाँधे, पान से ओठ लाल किये, अनपढ़ सास और पढ़ी-लिखी बहू की लड़ाई का किस्सा गा गाकर सुना रहे थे और भीड़, जैसे अपनी ही कटी हुई पतंग को दूसरे के हाथों तार तार होते देख, खुश होने वालों की भांति, बड़े मज़े से सुन रही थी।

'सूदाँ' के बड़े खुले चौक में ट्रङ्क वालों ने बाहर चौक में लगी हुई, एक दूसरे के ऊपर रखे ट्रङ्कों की कतारें शाम के ग्राहकों के लिए झाड़ पोंछ कर चमका दी थीं। 'छत्ती गली' के कोने पर दीनू हलवाई ने अपने मिटाई के थालों को बाहर सजा दिया था और गरमागरम इमरतियाँ भूखे ग़रीबों की भूख को और भी तेज़ कर रही थीं।

इन सब की उपेक्षा करता हुआ चेतन छत्ती गली में दाखिल हुआ और 'बड़ा बाज़ार' की भीड़ से किसी तरह बचता-बचाता ब... के अड्डे पर आकर एक तांगे में बैठ गया। तांगे में उस समय केवल दो ही सवारियाँ बैठी हुई थीं। चेतन चाहता था कि चार बजे से पहले ही बस्ती पहुँच जाय। तांगे वाले से उस ने पूछा, "क्यों भाई कितनी देर है?"

"बस एक सवारी और ले लूं बाबू जी, चलता हूँ!"

तभी एक हाँफते-कांपते लाला दूर से आते दिखाई दिये। तांगे वाले ने वहीं से हांक लगाई, "तांगा बस तैयार ही है सेठ जी!"

और सेठ जी आकर पिछली सीट पर चेतन के साथ लद गये।

तब ताँगे वाले ने फिर ज़ोर से पुकारा—"चलो भाई कोई एक सवारी बस्ती गुज़ाँ को !"

चेतन का धैर्य जाता रहा। चिढ़ कर उसने कहा, "अब चल भी ! चार सवारियाँ तो हो गईं, चालान करायेगा क्या ?"

हँस कर ताँगे वाला बोला, "आप का क्या जाता है बाबू जी, आगे देखा लूँगा।"

चेतन चीखा, "मुझे जल्दी है और फिर चार सवारियाँ तो हो गईं।"

ताँगे वाले ने लापरवाही से उत्तर दिया, "एक सवारी तो सरकार वहीं उतर जायगी।"

चेतन का जी चाहा, ऐसे पाजी ताँगे वाले को छोड़कर दूसरे पर जा बैठे, पर अन्य कोई ताँगा तैयार न था और उसे जल्दी थी। बोला, "अच्छा ज़रा तेज़ी से चल, एक सवारी के पैसे मैं और दूँगा।

प्रसन्न होकर ताँगे वाले ने दुआ दी, टिटकारी भरी और ताँगा हवा से बातें करने लगा।

—०—

२

बस्ती गुज़ाँ को आसानी से दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है। एक वह जो उत्तर और दक्षिण के दो पुराने, बड़े, महराबदार दरवाज़ों के अन्दर, छोटी ईंटों के, अँधेरे, सीलदार मकानों को अपनी चारदीवारी में

की सोंधी-सोंधी महक फैल रही थी। चारों ओर खासी चहल-पहल थी। 'बाजियाँ वाला बाज़ार' में अपनी-अपनी दुकानों के तख्तों पर बैठे दो कलावन्त क्लार्नेटों पर मुँह फुला फुला कर अपनी कला का परिचय दे रहे थे। कुछ आगे चौरस्ती अटारी में, गाकर किस्से बेचने वाले दो पंजाबी कवि तहमद लगाये, लट्ठे की खुले गले वाली कमीज़ें पहने, उल्टी सीधी पगड़ियाँ बाँधे, पान से ओठ लाल किये, अनपढ़ सास और पढ़ी-लिखी बहू की लड़ाई का किस्सा गा गाकर सुना रहे थे और भीड़, जैसे अपनी ही कटी हुई पतंग को दूसरे के हाथों तार तार होते देख, खुश होने वालों की भांति, बड़े मज़े से सुन रही थी।

'सूदाँ' के बड़े खुले चौक में ट्रंक वालों ने बाहर चौक में लगी हुई, एक दूसरे के ऊपर रखे ट्रंकों की कतारें शाम के ग्राहकों के लिए झाड़ पोंछ कर चमका दी थीं। 'छत्ती गली' के कोने पर दीनू हलवाई ने अपने मिठाई के थालों को बाहर सजा दिया था और गरमागरम इमरतियाँ भूखे ग़रीबों की भूख को और भी तेज़ कर रही थीं।

इन सब की उपेक्षा करता हुआ चेतन छत्ती गली में दाखिल हुआ और 'बड़ा बाज़ार' की भीड़ से किसी तरह बचता-बचाता बस्ती के अड्डे पर आकर एक तांगे में बैठ गया। तांगे में उस समय केवल दो ही सवारियाँ बैठी हुई थीं। चेतन चाहता था कि चार बजे से पहले ही बस्ती पहुँच जाय। ताँगे वाले से उस ने पूछा, "क्यों भाई कितनी देर है?"

"बस एक सवारी और ले लूं बाबू जी, चलता हूं!"

तभी एक हाँफते-कांपते लाला दूर से आते दिखाई दिये। तांगे वाले ने वहीं से हांक लगाई, "तांगा बस तैयार ही है सेठ जी!"

और सेठ जी आकर पिछली सीट पर चेतन के साथ लद गये।

तब ताँगे वाले ने फिर ज़ोर से पुकारा—"चलो भाई कोई एक सवारी
गुज़ाँ को !"

चेतन का धैर्य जाता रहा। चिढ़ कर उसने कहा, "अब चल भी !
सवारियाँ तो हो गईं, चालान करायेगा क्या !"

हँस कर ताँगे वाला बोला, "आप का क्या जाता है बाबू जी,
देख लूँगा।"

चेतन चीख़ा, "मुझे जल्दी है और फिर चार सवारियाँ तो हो
।"

ताँगे वाले ने लापरवाही से उत्तर दिया, "एक सवारी तो रास्ते
उतर जायगी।"

चेतन का जी चाहा, ऐसे पाजी ताँगे वाले को छोड़कर दूसरे
जा बैठे, पर अन्य कोई ताँगा तैयार न था और उसे जल्दी
बोला, "अच्छा ज़रा तेज़ी से चल, एक सवारी के पैसे मैं और
दूँगा।

प्रसन्न होकर ताँगे वाले ने दुआ दी, टिटकारी भरी और ताँगा हवा
बातें करने लगा।

—०—

२

बस्ती गुज़ाँ को आसानी से दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है। एक
जो उत्तर और दक्षिण के दो पुराने, बड़े, महराबदार दरवाज़ों के
न्दर, छोटी ईंटों के, अँधेरे, सीलदार मकानों को अपनी चारदीवारी में

वाले को पैसे दिये और लपक कर बायीं तरफ़ नये सिरे की एक गली की ओर बढ़ा। तेज़ चलता हुआ वह लड़कियों की पाठशाला के पास से गुज़रा और एक उड़ती हुई दृष्टि उसने उसके बन्द दरवाज़े पर भी डाली। गली के कोने वाले मकान के सामने जा कर वह रुका और उसने ज़ोर से आवाज़ दी, "मुल्कराज, मुल्कराज!"

एक छोटे क़द के पतले-दुबले लड़के ने किवाड़ खोले और जैसे हँसने की नक़ल उतारते हुए कहा, "आओ, आओ!"

"नहीं मैं आऊँगा नहीं!"—यह कहता हुआ चेतन अन्दर चला गया।

कमरा छोटा और अँधेरा था। फ़र्श पर एक पुरानी दरी बिछी हुई थी, जिस पर पुस्तकों के अम्बार लगे थे। वहीं जाकर अपने स्थान पर बैठते हुए मुल्कराज ने पुस्तकों से बची हुई दरी पर कुछ ख़ाली जगह की ओर इशारा किया और चेतन से कहा, "बैठो, बैठो!"

"नहीं मैं बैठूँगा नहीं", यह कहते हुए चेतन बैठ गया और फिर तनिक खिसियानी सी मुस्कराहट के साथ उसने कहा, "इतना न पढ़ो, मर जाओगे!"

मुल्कराज केवल हँस दिया।

"देखो", चेतन बोला, "मुझे जल्दी है। एक मामले में तुम्हारी सहायता लेने आया हूँ। यहाँ तुम्हारी गली में जो स्कूल है, उसमें 'बेरी वाली गली के पंडित दीनबन्धु की लड़की पढ़ती है।"

"चन्दा, हाँ, हाँ!"

"तुम उसे जानते हो?"

"अरे मैं, बस्ती का रहने वाला, बस्ती की लड़कियों को न जानूँगा? और फिर वे तो हमारे दूर के शरीक* होते हैं।"

*शरीक=ख़ानदानी।

"लड़की वहीं रहती है न ?"

"हाँ, हाँ !"

"तो उठो । छुट्टी होने वाली होगी, मुझे पहचान नहीं, वह निकले [illegible] बता देना ।"

उठते हुए एक अर्थ-भरी-दृष्टि से चेतन की ओर देखकर मुल्कराज ने कहा, "क्यों ?" और अपने वही साधारण मैले कपड़े पहने, वह गली में आ गया । जब चेतन भी बाहर निकल आया तो मुल्कराज ने किवाड़ बन्द कर के कुण्डी लगा दी ।

गली के सामने चौक में, एक हाथ में छोटी सी बांसुरी [illegible] 'मन बिच मेरे बसलिए हीरे' की तर्ज़ का कोई गीत [illegible] और दूसरे से डुगडुगी बजाता हुआ, एक मदारी लोगों को इकट्ठा करने की कोशिश में था । दुकानों पर बैठे हुए [illegible] और अपने फटे [illegible] में मस्त बेकार वहां जमा होने लगे थे और गली के छोटे छोटे नंग-धड़ंग बच्चों की टोली, [illegible] खड़ी थी । [illegible] के [illegible] वाले [illegible] और भी [illegible] लगाने लगे [illegible] में [illegible] हो; [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

होगी।"

चेतन ने जैसे यह बात नहीं सुनी, मुल्कराज के कन्धे पर हाथ रखते हुए उसने पूछा, "तो तुम्हें पसन्द नहीं ?"

"पसन्द को तो कोई ऐसी बुरी यह नहीं, पर मैंने तुम्हें अपनी राय दे दी।" मुल्कराज ने कंधे सिकोड़ते हुए कहा, "सीधी सादी, सुस्त, मझोले क़द की लड़की है। साधारण सुघड़ियों की तरह मैंने उसे कभी हँसते-बोलते, इठलाते-खेलते नहीं देखा। तुम ठहरे चालाक चपल ! तुम्हारे साथ उसकी निभ सकेगी, यह नहीं लगता।"

"रंग कैसा है ?" चेतन ने पूछा।

"गेहुआँ है, गोरा तुम उसे नहीं कह सकते।"

चेतन का उत्साह मन्द पड़ गया। उसने सोचा कि यहीं से वापस हो जाय। फिर ख्याल आया—माँ ने पूछा तो क्या जवाब दूँगा और स्वयं ही सोच लिया—कह दूँगा कुरूप है। लेकिन फिर अन्दर में किसी ने कहा—कौन जाने सुन्दर ही हो ! मुल्कराज वहीं का रहने वाला है, उन के घराने में से ही। शायद यह न चाहता हो कि उनके घराने की लड़की को ऐसा अच्छा वर मिले। और सन्देह की एक दृष्टि मुल्कराज पर डाल कर अनमना-सा वह तमाशा देखने लगा।

सड़क की ओर जिन मकानों की खिड़कियाँ खुलती थीं, उनमें बच्चों के नन्हें चेहरे झांकने लगे थे। किसी किसी खिड़की की चिलमन के पीछे, प्रातः से सन्ध्या तक काम-काज में जुटी रहने वाली, कोई पर्देवाली गृहणी भी आ खड़ी हुई थी। खेल कोई नया न था। वही तीन सींगों वाला बैल, वही रुपया पैदा करने वाला जादू का छू मंत्र और गोली गुम करने वाली थैली ! किन्तु मदारी की बातें ही ऐसी दिलचस्प थीं कि कुछ क्षण तक चेतन उन में खो गया। और फिर यद्यपि उसके कानों में मदारी के शब्द स्वप्न-संसार के शब्दों की

भांति सुनाई देते रहे, किन्तु उसकी कल्पना के पर्दे पर अनायास कई प्रकार के चित्र अंकित हो चले। कल तक ये सब चित्र सुन्दर कोमलांगी तरुणियों के चित्र थे। पर आज वे सब असुन्दर बन बन आते। वहीं खड़ा वह एक बार फिर उन कुरूप चित्रों को उन्हीं सुन्दर तस्वीरों में परिणत करने का प्रयास कर रहा था, पर बार बार वही असुन्दर, मँझोले, गेहुँएँ रंग के चित्र उसकी आँखों में आते और फिर सब कुछ जैसे गडमड हो जाता। खीझ खीझ कर वह तमाशे में ध्यान जमाता, किन्तु कल्पना उसे कहीं का कहीं ले जाती!

तभी मुल्कराज ने उस के बाजू को छूते हुए धीरे से कहा, "छुट्टी हो गई है, बड़े दर्जों की लड़कियाँ आने लगी हैं।"

चेतन चौंक कर मुड़ा और दोनों कुछ तिरछे होकर ऐसे खड़े हो गये कि न मालूम हो कि तमाशा देख रहे हैं, न मालूम हो कि बाज़ार में किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

एक सुन्दर बारह तेरह वर्ष की लड़की, हाथ में किताबें थामे मानो माप माप कर क़दम रखती हुई, जैसे अपनी चाल की सुन्दरता से अभिज्ञ, तीन चार सहेलियों के साथ जा रही थी। जाते जाते उस ने एक चंचल दृष्टि उधर भी डाली। चेतन का दिल धक धक करने लगा और उसके गाल सुर्ख हो गये।

अनायास ही उसने मुल्कराज के बाजू को छुआ। इशारे से मुल्कराज ने बता दिया कि यह नहीं।

चेतन शरमिन्दा सा चुप खड़ा हो गया, फिर उस ने कहा, "मैं चलता हूँ।"

"अब तो वह आने ही वाली है।"

"नहीं मैं चलता हूँ।"

"पागल हो गये हो?"

इस बीच में छोटी बड़ी लड़कियों की कई टोलियां निकल ग
पर चेतन कल्पना ही कल्पना में उस चंचल किशोरी का चित्र देख
इतना मस्त था कि कौन आया कौन गया, इसकी उसे सु
रही। तभी मुल्कराज ने उसके कंधे को छुआ और जैसे अपने ही क
बात करते हुए धीरे से कहा, "वह आ रही है।"

उत्सुकता से चेतन ने देखा—एक मँझले क़द की, कुछ मोटे
गेहुएँ रंग की लड़की जैसे घर के ही धुले, मटमैले कपड़े पहने,
सादी चाल से चली आ रही है। उसके दोनों हाथों पर स्लेट थी,
पर लगा हुआ किताबों का अम्बार जैसे उम्र के वज़न का सहारा लि
था। उसकी आँखें जैसे धरती में गड़ी जा रही थीं।

चुपचाप वह उसके पास से हो कर गुज़र गई।

मदारी का खेल ख़त्म हो गया था। भीड़ के ऊपर से पै
थाली वाला हाथ उसने चेतन के आगे कर दिया। लाचारी मे
"ऊँहूँ" कर के चेतन वहाँ से चल पड़ा और तांगे की पिछली सी
जा बैठा।

मुल्कराज ने सड़क पर ही से पूछा, "क्यों?"

चेतन जैसे विवशता से सिर्फ़ मुस्करा कर रह गया।

मुल्कराज बोला, "मैंने तो कहा था शादी......."

चेतन ने बात काट कर कहा, "इस मोटी भुटन्नी लड़की
हरगिज़ नहीं!"

—०—

बैठा कर आप भी बैठ गये। इसके बाद उन आगन्तुकों की बातें सुन कर दादा के चेहरे पर जो उल्लास खेलने लगा था और धीरे-धीरे होने वाली बातों की जो भनक चेतन के कान में पड़ी थी, उससे उसने जान लिया था कि उन महानुभावों के आने का प्रयोजन क्या है। वास्तव में ब्राह्मण जाति के निम्न-मध्य-वर्ग में अच्छे पढ़े लिखे और रोज़गार से लगे हुए लड़कों का अभाव था। इसी कारण जो लोग उस की प्रतिभा का पता पाकर और यह जान कर कि कालेज से निकलते ही वह अपने स्कूल में चालिस रुपये मासिक की नौकरी प्राप्त करने में सफल हो गया है, उन के घर आया करते थे, उन की बातों से वह पूरी तरह परिचित था। उसे पूरा विश्वास था कि अभी उस के दादा उसे आवाज़ देंगे और उसे कुछ मनोरञ्जन का सामान मिलेगा। पर ऐसा नहीं हुआ। वह प्रकट पुस्तक में ध्यान जमाये इसी बात की प्रतीक्षा करता रहा, पर उसके दादा ने कोई आवाज़ न दी और कुछ देर बातें करने के बाद वे ऊपर, सम्भवतः चेतन की माँ से कुछ पूछने, चले गये।

ऐसी दशा में पहले वह स्वयं उठ कर बैठक में आ जाया करता था और आगन्तुकों को अवसर दे दिया करता था कि वे उससे बातें करके विवाह सम्बन्धी उसके विचारों को जान लें या फिर वह अपने मित्र अनन्त को बुला लाता था और वे दोनों मिल कर आगन्तुकों को लड़कियों के पिता होने का दण्ड दिया करते थे। किन्तु उस दिन दादा के चले जाने पर भी वह उठ कर वहाँ न जा सका। लकवे के कारण शरीर-कम्पन की बीमारी में ग्रसित, प्रतिक्षण अत्यन्त दयनीय रूप में अपने हाथ और गर्दन को हिलाते रहने वाले, उन बुज़ुर्ग की आकृति में कुछ ऐसी बात थी कि वह उन से किसी तरह के परिहास का विचार मन में न ला सका। उन का स्वर इतना धीमा, गम्भीर और मंदन था कि साधारण लोगों की अपेक्षा उनके व्यक्तित्व से अनायास

ही अल्ल हो जाती थी। भाग कर पास की गली से अपने मित्र अनन्त को बुला लाने की इच्छा भी तब उसे नहीं हुई।

कुछ देर बाद दादा ने एक कागज़ उनके हाथ में थमा दिया। बड़ी कठिनाई से उसे अपने काँपते से हाथ में थाम कर, उन्होंने अपनी जेब से ऐनक का डिब्बा निकाला और उसे अपने शरीर से सटा कर खोलने का यत्न करने लगे। तब बैठक पर उनके साथ आये हुए व्यक्ति ने झट उसे खोल कर उन्हें दे दिया। सफेद कमानी की साधारण सस्ती ऐनक—उसे बड़ी कठिनाई से नाक पर जमा कर उन्होंने कागज़ पढ़ा और लपेट कर जेब में रख लिया। चेतन समझ गया, उसके दादा ने उसकी माँ से पूछ कर चारों अंग लिख* कर दिये हैं।

इसके बाद नमस्कार करते हुए वे वृद्ध उठे! जाते जाते चेतन के पास आकर उन्होंने अपना काँपता हुआ हाथ उस के सिर पर फेरा और कहा, "अब तो परीक्षा हो चुकी है बेटा, अब इतनी मेहनत न किया करो! कुछ दिन आराम करो और सेहत बनाओ।" बस इतना कह, अपने हिलते हुए शरीर को जैसे तैसे सम्हालते हुए, वे बैठक की सीढ़ियाँ उतर गये! न उन्होंने दूसरों की भांति उस की शिक्षा-दीक्षा वेतन या विचारों के सम्बन्ध में प्रश्न किये, न अपने ही बारे में कुछ बताया।

उनके चले जाने के बाद चेतन के मन में प्रबल आकांक्षा उठी कि वह अपनी माँ अथवा दादा से उन के इस आगमन का ठीक कारण पूछे, पर वह मन मार कर बैठा रहा।

---

*लड़के का, लड़के की माँ का, उस के पिता तथा उस के दादा का, अपना और ननिहाल का गोत्र बताने को चारों अंग बताना कहते हैं। पुराने विचार के हिन्दुओं में यदि लड़के के इन चारों अंगों में कोई लड़की के चारों अंगों में किसी से मिल जाय, तो सगाई नहीं होती।

शाम को खाना खाते समय उसे पता चल गया कि उसका अनुमान गलत न था। लकवे की बीमारी से ग्रसित वे बुजुर्ग रिटायर्ड ओवरसियर थे। उन के साथ उन का छोटा भाई था, जिस के ईंटों के दो भट्टे 'काला बकरा' में थे। उसी की लड़की के सम्बन्ध में बात करने वे आये थे। उसे यह भी पता चला कि वे चारों अंग लिखकर ले गये हैं। तब खीझ कर चेतन ने अपनी माँ से कहा था, "दादा न जाने क्यों उन को साफ़ इनकार नहीं कर देते। क्यों व्यर्थ दो भलेमानुसों को परेशान करते हैं?"

माँ ने आँखों में आँसू भरकर वही पुरानी बातें दुहरानी शुरू की थीं—'बच्चा यदि तू घर न बसावेगा तो मैं मुहल्ले में किस तरह मुँह दिखा सकूँगी? ब्याह, शादी और बीसियों दूसरे संस्कारों और त्योहारों पर किसी न किसी घर से कुछ न कुछ आता रहता है। मेरे घर अब मेरे ब्याह के सिवा इतनी जल्दी और कौन सा उत्सव होगा कि मैं उन सब का बदला दे सकूँ। और फिर तेरे ब्याह न करने से कुल को लांछन अलग लगेगा। यह कोई न कहेगा, लड़का नहीं मानता सब यही कहेंगे कि वंश ही में कोई दोष होगा जो अब तक शादी नहीं हुई।

इन बातों का कोई भला-बुरा उत्तर देने के बदले चेतन ने अपना वही पुराना अस्त्र प्रयोग में लाने का विचार किया। गम्भीरता से उस ने कहा, "मैं तुम्हारी सब बातें मानता हूँ, पर मैं लड़की देखे बिना शादी न करूँगा और इस बात के लिए शायद वे तैयार न हों।"

माँ ने कहा, "वे दिखा देंगे।"

और माँ ने ठीक ही कहा था। दूसरे ही दिन वे बुजुर्ग फिर आये और उन्होंने कहा कि परमात्मा की कृपा से अंग तो नहीं मिले, और आग्रह किया कि यह नाता तो अब हो ही जाना

चाहिए। तब दादा ने उत्तर दिया कि उन को और बहू की ओर से तो कोई आपत्ति नहीं, वे तो वर अच्छा चाहते हैं—भलेमानुस लोग! बाक़ी किसी चीज़ की उन्हें परवाह नहीं.... पर लड़के के पिता से भी पूछ लेना चाहिए। और फिर सकुचाते सकुचाते उन्हों ने कहा कि लड़के को मना लेना भी आप ही का काम है।

इस पर वृद्ध ने दादा से चेतन को बुलाने के लिए कहा था और दादा ने चेतन को आवाज़ दी थी।

जैसे गहरे लाल रंग के ऊपर हल्का पीला रंग उस की ललाई को नहीं छिपा पाता, इसी तरह जब कभी ऐसे अवसरों पर चेतन आकर बैठा करता था तो उस के चेहरे पर जो हल्की सी गम्भीरता होती थी उस के नीचे शरारत साफ़ छिपी दिखाई देती। लेकिन उस दिन जब रोग से विवश उन वृद्ध के सामने चेतन आकर बैठा तो उस की वह शरारत ऐसी छिप गई जैसे उस का कभी अस्तित्व ही न था। चुप, गम्भीर, शरमाया-शरमाया-सा वह आकर बैठ गया।

बड़े मीठे स्वर में हकलाते हकलाते उन बुज़ुर्ग ने पूछा "क्यों बेटा, तुम्हें इस रिश्ते में कुछ आपत्ति तो नहीं?"

चेतन ने चाहा आश्चर्य प्रकट करता हुआ पूछे, "किस रिश्ते में?"—पर न तो वह आश्चर्य का प्रदर्शन कर सका और न कुछ पूछ ही सका, बस चुप बैठा रहा।

उन वृद्ध ने कहा, "तुम्हें लड़की दिखा देंगे बेटा, मैं स्वयं आज़ाद-ख्याल आदमी हूँ। जिस के साथ जीवन भर का नाता हो, उसे देखा तक न जाय, इसे मैं अन्याय समझता हूँ।"

चेतन फिर भी चुप बना रहा। उस की सब मुखरता न जाने कहां उड़ गई।

फिर कुछ देर बाद वे बोले, "रहे तुम्हारे पिता जी, तो भाई

उन की सेवा में उपस्थित होकर भली-भाँति उनकी अनुमति प्राप्त कर ली जायगी। तुम्हारी ओर से तो कोई आपत्ति नहीं ?"

चेतन का गला सूख सा रहा था, उस के कंठ में जैसे गोला सा अटक गया था, पर उन के अन्तिम वाक्य से उसे जैसे ज़बान मिल गई। धीरे से बोला, "जी...जी...मैं अभी आगे पढ़ना चाहता हूँ!"

"तुम जैसे अध्ययनशील, बुद्धिमान युवक से ऐसी ही आशा है बेटा", उन्हों ने समर्थन करते हुए कहा, "आगे ज़रूर पढ़ो! गुण अपने पास हो तो क्या बुरा है? कोई छीन तो लेगा नहीं! और दो वर्ष तो पलक झपकते बीत जायेंगे। चन्दा उन लड़कियों में से नहीं, जो पति के मार्ग का रोड़ा बन जायँ। सरल, सुघड़, समझदार लड़की है, तुम्हारी पढ़ाई में किसी तरह की बाधा न डालेगी। फिर हम से भी जहाँ तक हो सका तुम्हारी सहायता करेंगे।"

चेतन क्या कहे? वह स्थिर न कर सका।

वृद्ध अपने भाई के कन्धे का सहारा लेकर उठे और दादा की ओर देख कर बोले, "हम आज ही पंडित जी के पास जायेंगे और परमात्मा ने चाहा तो उन्हें मना कर ही आयेंगे नमस्कार!"

और अपने हिलते हुए हाथ जोड़ कर उन्हों ने विदा ली।

कृतज्ञता के बोझ से जैसे दब कर दादा भी उन के साथ उठे। .

"आप बैठिए, व्यर्थ कष्ट न कीजिए"! और यह कह कर वे तनिक हँसते हुए अपने छोटे भाई को साथ लेकर उसी दयनीय दशा में काँपते, हिलते, झूलते, डोलते सीढ़ियाँ उतर गये।

कुछ देर तक चेतन चुपचाप वहीं बैठा रहा था। फिर उस का सारा क्रोध पोते के विवाह की सुखद कल्पना में डूबे, धीरे-धीरे हुक्का गुड़गुड़ाते हुए अपने सत्तर वर्ष के बूढ़े दादा पर उतरा। चाख

। है कि मुझे तंग न

करूँ, फिर क्यों आप लोग मुझे सताते हैं ! मैं घर छोड़ कर चला जाऊँगा।" और पैर पटकता हुआ वह अपने कमरे में जाकर लेट गया।

दोपहर को उस की माँ जब खाना खाने के लिए उसे बुलाने आई तो वह छत की ओर टकटकी लगाये चारपाई पर लेटा था।

माँ चारपाई पर जा कर बैठ गई और प्यार से बोली, "खाना नहीं खाओगे आज ?"

बिना उस की ओर देखे रुखाई से चेतन ने कहा, "मुझे भूख नहीं।"

इस वाक्य के पीछे जो बवंडर छिपा हुआ था, वह शायद माँ से छिपा न रहा। खाना खाने के लिए फिर उसने नहीं पूछा।

कुछ क्षण तक चुप रह कर वह बोली—"आज ज्वाली महरी की लड़की आई थी।"

चेतन चुप रहा।

"उस की ससुराल भी तो बस्ती गुज़ाँ ही में है", माँ ने कहा "बेचारी बड़ी दुखी है। अभी दो वर्ष भी नहीं हुए कि उस का ब्याह हुआ था। फिर लड़का भी कौन घर घर का पानी भरने या कुल्फियाँ बेचने वाला था।* रेलवे में पैंतीस रुपये पाता था। अभी छः महीने हुए उस के घर लड़का हुआ था। सब तरह का आनन्द था......"

किसी पर उतार न सकने से चेतन के हृदय में क्रोध उमड़ा पड़ रहा था, पर ज्वाली महरी की इस मन्द-भाग्य लड़की के दुख की बात सुन कर जैसे वह कुछ क्षण के लिए सन्न होकर बैठ गया।

एक दीर्घ-निश्वास छोड़ कर और सहज ही भर आने वाली आँखों

* पंजाब के धीवर प्रायः घरों में पानी भरते हैं या मलाई की कुल्फियाँ लगाते हैं

को पोंछ कर माँ ने कहा, "आज बेटा वह विधवा है। कुछ ही दिन हुए उस के पति की बदली सम्मा सट्टा की ओर किसी रेगिस्तानी स्टेशन पर हुई थी। बड़ी लाइन, दिन रात का काम और रेगिस्तान की गर्म झुलसा देने वाली लू। वहाँ जाते ही उसे ज्वर हो आया। पर काम तो ज्वर की अपेक्षा नहीं करता। इस से पहले कि छुट्टी की प्रार्थना स्वीकार होकर आती और उस के स्थान पर दूसरा बाबू जाता, वह घर में बेहोश होकर पड़ गया। उस वीराने में अपना कौन था ? दूसरे ग्वाली की लड़की बच्चे से थी और रेल का डाक्टर भी इन छोटे स्टेशनों पर कहाँ आता है। बेचारा अकेला चार-पाँच दिन बेहोश पड़ा रहा। यहाँ तब खबर पहुँची जब वह सभी व्याधियों से सदा के लिए मुक्त हो चुका था।"

चेतन का क्रोध बिलकुल जाता रहा। ग्वाली की लड़की के दारुण दुःख से जैसे दुखी होकर उस ने कहा, "तुम वीरो ही की बात कर रही हो न ?"

माँ ने कहा, "हाँ हाँ, उसी की ! उन्हीं की गली के पास तो उन का घर है।"

"किन का ?"

"पंडित दीनबन्धु का।"

"कौन दीनबन्धु ?"

"वही जो आज बस्ती से आये थे।"

"कौन ?" समझ कर भी चेतन ने न समझते हुए पूछा।

माँ ने तनिक सा हँस कर कहा, "अरे वही जो आज तुम्हारे लिए आये थे। बातों बातों में वीरो से लड़की की बात चली थी। उस ने कहा, "भाभी, लड़की तो ऐसी सुशील और हँसमुख है कि क्या कहूँ। स्वर तो इतना मीठा है कि जो दो मिनट उससे बात कर लेता है उस

निछावर हो जाता हूँ।"

चेतन चुप रहा।

माँ ने कहा, "बेटा, लड़कियाँ तो एक से बढ़ कर एक सुन्दर, शिक्षित मिल जाती हैं, पर सरल और सुशील लड़की का मिलना कठिन है। तू जाकर देख क्यों नहीं आता, न पसन्द होगी न ना!"

माँ यह कह कर चुप हो गई और चेतन मन ही मन उस ली भाली लड़की के चित्र बनाने लगा।

कुछ देर बाद जब फिर माँ ने उस से खाना खाने के लिए कहा तो ह चुपचाप उठ खड़ा हुआ।

माँ की बातों का, उस भोली भाली लड़की की उस प्रशंसा का जो रों से मिलने के बाद वह प्रतिदिन किया करती थी और उस लड़की ो एक नज़र देख आने के लिए माँ के अनुरोध का ख्याल करके तन मन ही मन हँस पड़ा। सिनेमा के चित्रों की भाँति कई ओं के दृश्य उस की कल्पना के सम्मुख घूम गये और सिर नीचा के वह इन्हीं के विवेचन में मग्न चलता आया। उसे नहीं मालूम—

वह अड्डे पर ताँगे से उतरा; कब उस ने पैसे दिये और कब इतने लम्बे, तंग, जन-संकुल बज़ारों को पार करके इतनी दूर चला या। जब उस ने सिर उठाया तो वह चौरस्ती अटारी के समीप हुँच गया था।

सन्ध्या के सूरज की अन्तिम मुस्कान ऊँचे श्वेत मकानों की छतों ो सुनहरा बना रही थी। मुहल्ले के चौक में केवल विधवा मंसो का र्जा अभी तक चल रहा था। शेष स्त्रियां अपने घरों में जाकर काम धन्धे में जुट गई थीं। कुएँ पर भीड़ क्षण-प्रतिक्षण बढ़ रही थी और

किसी पल भी झगड़े की सम्भावना की जा सकती थी। कुएँ के पास ही, ज़रा हट कर, काले कलूटे शरीर को लिये मोटा, बलिष्ट तेलू भैंसों की सानी-पानी का प्रबन्ध कर रहा था। कुर्ते की आस्तीनें उसकी चढ़ी थीं और हाथ भूसे तथा खली के पानी से लिथड़े थे। खली की एक तीखी सी गन्ध मुहल्ले के चौक में फैल गई थी। उस समय धीरे-धीरे चलता हुआ चेतन मुहल्ले में दाखिल हुआ।

—०—

४

माँ रसोई घर में बैठी खाना पका रही थी जब चेतन ने जाकर कहा, "देख आया हूँ तुम्हारी बस्ती वाली शहज़ादी भी! उस से तो मैं सात जन्म शादी करने की बात नहीं सोच सकता।"

मां रोटी बेल रही थी। रुक कर उत्सुकता से उस ने पूछा, "तुम ने कहाँ देखा उसे?"

"बस्ती में और कहां", चेतन ने उत्तर दिया।

बेसब्री से मां ने कहा, "तुम इधर आकर बैठो तो मालूम हो। वहीं खड़े खड़े क्या बातें कर रहे हो।"

"अब जूते तो मैं उतारने से रहा", चेतन ने जरा हँस कर उत्तर दिया। "और फिर बातें ही ऐसी कौन सी हैं. बस स्कूल से घर जाते समय देखा उसे! मझोले क़द की भद्दी सुस्त लड़की है..........।"

मां रोटी बेलना छोड़ कर चौखट में आ खड़ी हुई। चेतन

...गया, "अपने शरीर का, अपने कपड़ों का, अपनी किसी बात
उसे होश नहीं—बाल बिखरे, कपड़े मैले—ऐसी फूहड़
...से मैं ब्याह करूँगा ! ठीक ही यह मेरी पढ़ाई में मुझे
...देगी !"

'पढ़ाई !" खीझ कर माँ ने कहा, "अब तुम और कहाँ तक पढ़ने
...गे । बहुतेरा पढ़ लिया । नौकरी मिली है तो अब कुछ दिन जम
टिको। शादी करो, घर बसाओ और ऐसे रहो जैसे दुनिया रहती
तुम से तीन तीन बरस छोटे लड़के नूरमहल ही में दो-दो बच्चों के
हैं । कालिका राम को देख लो, नरायण दास को देख लो...."

कटु होकर चेतन बोला, "सारे का सारा कुनबा कुएँ में जा गिरे
क्या मैं भी कूद पड़ूँ ? और नौकरी भी क्या मैं अभी छोड़ रहा हूँ ।
...र जाकर पढ़ लेना भी कौन आसान बात है ? मैं तो उन महाशय
बात कर रहा था जो यह कहते थे कि लड़की समझदार है और
...रे रास्ते की रुकावट न बनेगी ।"

और यह कह कर चेतन उपेक्षा से हँस दिया ।

माँ ने कहा, "तो बहुत ही सुन्दर और फूहड़ है ? बीरो तो
...ती थी... ।"

"मैंने तुम्हें बता दिया न कि मोटी गुदगुदी, ढीली-ढाली लड़की है ।
...टे ओठ और पिलपिला सा मुँह, सुस्त इतनी दिखाई देती है कि क्या
...है । अपने कपड़े धोना, बाल सँवारना तक नहीं जानती ।" फिर चबा-
...चबाकर कहने लगा—"बीरो कहती थी...बीरो कहती थी . बीरो...।"

पर माँ ने बात काट कर कहा, "बेटा सीधी लकड़ियाँ अच्छी
...ती हैं और बनाव-सिंगार—मैं तो इस से पहले ही जली बैठी हूं ।
...नी भाभी ही को देख लो । वह ताश शतरंज में लगा रहता है,
...बनाव सिंगार में और मैं उन की बाँदी बनी सारा दिन घर का

काम करती हूँ ।"

चेतन ने हँस कर रद्दा जमाते हुए कहा, "तो यह तुम्हारा काम करेगी, इस आशा से हाथ धो रखो ! मां बाप के लाड़-प्यार में पली इकलौती लड़की है। हाथ से तिनका उस ने कभी तोड़ा नहीं, यदि तुम अब बांदी हो तो फिर भी बांदी ही रहोगी, इस का मैं तुम्हें विश्वास दिला देता हूँ ।"

"तो ऐसी निकम्मी लड़की को लेकर मैं क्या करूँगी ?"

तवे पर जो रोटी पड़ी थी, वह जलने लगी और जब तीखी गंध उड़ कर उन तक पहुँची, तो झट माँ ने जाकर उसे उठाया। एक ओर से बिलकुल कोयला हो कर तवे से चिमट गई थी। रोटी को एक ओर फेंक कर माँ ने चिमटे से तवे को साफ़ किया, कपड़े से पोंछा और नीचे आग को मन्द करके फिर रसोई-घर की चौखट पर आ खड़ी हुई।

चेतन जाने लगा था। उसे रोककर मां ने कहा, "तुम उन्हें चिट्ठी लिख दो ।"

"चिट्ठी ?" चेतन ने हैरानी से पूछा।

"हां, चिट्ठी के बिना वे बेचारे शायद दुबिधा में रहें और शायद तुम्हारे पिता के पास वे हो आये हों, इस लिए तुम उन्हें लिख दो ।"

"क्या लिख दूँ ?"

"कोई बहाना बना दो, लिख दो, मैं अभी आगे पढ़ना चाहता हूँ, मैं जल्दी ब्याह नहीं कर सकता। जो तुम्हें ठीक लगे, लिख दो ।"

यह कह कर वह जल्दी से अपने आसन पर जा बैठी और रोटी बेलने लगी।

चेतन नीचे अपने कमरे में गया, जल्दी जल्दी उस ने वह सूट उतार डाला, जिसे जाते समय पहनने में उसने आधा घंटा लगाया था। गले में कुर्ता पहन और कमर में तहमद कस कर वह बाहर

दोस्तों में गपशप करने निकल पड़ा। तभी ऊपर रसोई घर की खिड़की से झांक कर मां ने कहा, "देखो देर न लगाना, जल्दी आ जाना, और यह 'लुढ़क' कहीं मिले तो उसे भेजना। आकर खाना खा ले। फिर तेरी ओर से चाहे सारी रात पड़ा रहा [illegible] में फिर [illegible]!" और फिर [illegible] मां ने [illegible] से कहा, "[illegible] में खाना [illegible] गया है, एक मिनट के लिए भी नहीं आया। भगवान [illegible] भी ऐसी निकम्मी सन्तान न दे!"

—०—

५

चेतन के बड़े भाई रामानन्द को मां ने यों ही 'लुढ़क' की उपाधि दे रखी थी। चेतन के दादा उन के विषय में कहा करते थे—'इस के सामने घी का घड़ा लुढ़क रहा हो तो भी यह हिलने का नाम न ले!' घर के सुख-दुख तो दूर रहे, अपनी परेशानियां भी उन्हें छू न पाती थीं, पिता की डांट-डपट, मार-पीट; मां के गिले-शिकवे, कोसने-उलाहने; पत्नी के ताने मेहने और रोना-रूठना—कोई बात उन की निर्लिप्तता को भंग न कर पाती। एक अजीब ढंग की, कसाई की सीमा को पहुँची हुई, वीतरागता उन की आकृति से सदैव टपका करती।

यह वीतरागता उस ढीठपने ही का दूसरा रूप थी जो प्रायः रोज़ रोज़ की डांट-डपट या मार-पीट के कारण बच्चों में पैदा हो जाया करती है। चेतन के ये बड़े भाई, न केवल बचपन ही में अधिक पिटे थे,

वरन् युवावस्था में भी उन की खूब 'आव भगत' हुई थी। बचपन में पिता की निर्दयता के भय से मां ने उन्हें अपने पीहर भेज दिया था। वहां मार-पीट से तो मुक्ति मिल गई, किन्तु नानी सौतेली थी, इसलिए डांट-डपट, ताने मेहने आठों पहर उन के गले का हार रहे। चेतन के पिता रेलवे में थे। जब वे 'रिलीविंग' में हुए, माँ ने सब बच्चों को जालन्धर दाखिल करा दिया और नानी इस 'डहूस'* से तंग आ गयी तो मां ने भाई साहब को भी जालन्धर बुलवा लिया। यहाँ नानी के सौतेले व्यवहार और नाना की रूखी-फीकी डांट-डपट से पिंड छुटा तो पिता के तूफ़ानी दौरे और तूफ़ानी मार-पीट से पाला पड़ने लगा। चेतन के पिता पंडित शादीराम किसी दूरस्थ स्टेशन से किसी दूरस्थ स्टेशन को (छुट्टी पर जाने वाले किसी स्टेशन मास्टर का स्थान लेने के हेतु) जाते हुए जालन्धर से गुज़रते तो अपने उस आगमन की स्मृति के रूप में अपने इस बड़े लड़के को सौ पचास थप्पड़ और दस बीस पटखनियां दे जाते।

चेतन या उस के छोटे भाईयों की अपेक्षा उस के ये बड़े भाई ही क्यों अधिक पिटते? इस का कारण सम्भवतः उन दो उपाधियों में निहित हैं जो मां और नानी ने उन्हें दे रक्खी थीं—'बुढ़ऊ' और 'डहूस'।

वे बड़े थे, इसलिए शायद पंडित जी की दृष्टि सब से पहले उन्हीं पर पड़ती और प्रायः उन्हीं को पंडित जी की 'कृपाओं' का भाजन बनना पड़ता।

या फिर नानी की उपाधि के अनुसार उन्हों ने ऐसा मन-मस्तिष्क और शरीर पाया था कि न उन पर उस मार-पीट का प्रभाव पड़ता और न वे उस से बचने के उपाय सोच पाते। पंडित शादीराम भी, जिन्हें

*डहूस—मन्द-बुद्धि, मोटी खाल वाला बैल सरीखा व्यक्ति।

र पीट की कला में अपूर्व दक्षता प्राप्त थी, वहाँ वह अपने को चेले की
स सहनशीलता से हार कर कह उठते, 'पीटते पीटते मेरे हाथ दुखने
लगते हैं, लेकिन इस 'कलूत' के कान पर जूँ भी नहीं रेंगती,' और
के इस ढीठपने से चिढ़कर वे पंजाबी भाषा की एक लोकोक्ति
गाते :

✓ हो पढ़ियाँ, विस्सर गइयाँ
सदका मेरी पुट्ठ दा*

पंडित जी साधारणतः पढ़ाई के सिलसिले ही में पीटते। यदि वे अपने किसी चेले के हाथ में पुस्तक देख लेते तो पहले मामूली तौर पर, बड़े स्नेह से, हँसते हँसते, पुस्तक लेकर उस के दो चार पृष्ठ उलटते। फिर सहसा उस की परीक्षा लेने के लिए (जैसी भी पुस्तक हो, उस के अनुसार) कोई अंग्रेज़ी, गणित, भूगोल अथवा इतिहास का प्रश्न पूछ बैठते। यदि उत्तर ठीक होता तो लड़के को पीठ ठोंकते, उसे उठा कर चूम लेते और प्रसन्नता से उस के भविष्य के सम्बन्ध में कई उत्साह-भरी भविष्यद्वाणियाँ करते हुए अपने उस जोश में और भी कठिन प्रश्न पूछते—परिणाम सदैव ठुकाई होता।

चेतन भी बचपन में दो तीन बार पिटा था, इस बुरी तरह कि वह बहुत देर तक बीमार रहा था; किन्तु बचपन में पिटा सो पिटा, उस के बाद यथाशक्ति उस ने ऐसा अवसर न आने दिया। वह सदा उन की मार-पीट से बचने; उन के सामने न पड़ने; जिस समय वे घर में हों, उस समय घर से ग़ायब हो जाने के बीसों बहाने सोच लेता। उस का छोटा भाई, छोटा होने पर भी, उस की इस 'दूरदर्शिता' से लाभ उठा लेता और पिता की मारपीट से बचने के उपाय सोचने और उन्हें कार्य-

*हो पढ़ी भूल गई; मेरी पीठ के सदके!

रूप में परिणत करने में सदैव उस की सहायता करता—वह बीमार पड़ जाता कि चेतन उसे डाक्टर के पास ले जा सके; पीड़ा से कराहने लगता कि चेतन उस का सिर दबा सके; गुम हो जाता कि चेतन उसे ढूँढने का बहाना कर सके।

जब पंडित जी घर पर होते तो दोनों छोटे भाई सदा उन के सामने जाने से बचने के बीसों बहाने सोच लेते। वे इस बात का भी विशेष ध्यान रखते कि पंडित जी आयें तो उन दोनों के हाथ में तो क्या, घर के किसी कोने में भी उन्हें पुस्तक का कोई पृष्ठ तक न दिखाई दे। बाहर मुहल्ले ही से उनकी आवाज़ सुन कर वे पुस्तकें छिपाना शुरू कर देते। पंडित जी नीचे होते तो वे तुरन्त ऊपर की पुस्तकें छिपा देते और जब वे ऊपर आते तो बहाने से नीचे जाकर, वहाँ यदि कोई पुस्तक पड़ी हो तो, उसे उड़ा देते। अपनी समस्त सतर्कता और चाबुकदस्ती के बावजूद यदि उन्हें पंडित जी के कमरे में जाना पड़ जाता तो न केवल वे कभी हाथ में पुस्तक न ले जाते, वरन् पंडित जी जिस कमरे में हों, वहां यदि भूले से भी कोई पुस्तक पड़ी रह गई हो, तो बातों बातों में उसे बड़ी कुशलता से, उन की दृष्टि बचा कर, उड़ा देते। यदि पंडित जी को गर्मी लग रही हो तो उन्हें इस ज़ोर से पंखा करते कि उनका मन लेट जाने को चाहे। वे लेट जाते तो उनके पांव तथा पिंडलियां इस निष्ठा से दबाते कि वे खुर्राटे लेने लगते।

यदि इस समस्त सावधानी के बावजूद दुर्भाग्य उन का कोई बस न चलने देता—उन में कोई पंडित जी के चंगुल में फँस जाता और पंडित जी उस की परीक्षा लेने लगते तो दूसरा सदैव इस बात का प्रयास करता कि पंडित जी के किसी घनिष्ट-तम मित्र को उन के आने का समाचार इस भांति पहुँचा दे कि वह भागा भागा पंडित जी से मिलने चला आये और भाई का गला छूटे।

किन्तु चेतन के ये बड़े भाई (जो चाहे सदा उपन्यास पढ़ते या आवारागर्दी करते) जब पंडित जी घर आते तो तुरन्त पुस्तकें ले बैठते। न केवल वे घर से गुम रहने या पंडित जी के समक्ष जाने से बचने के उपाय न सोचते, वरन् जब पंडित जी घर आते तो वे सदैव घर ही में बने रहते—सम्भवतः अपनी आवारागर्दी का दोष छिपाने और पढ़ने में अपनी निष्ठा उन्हें बताने के लिए! फिर चेतन और उसके छोटे भाई की सी सतर्कता और चाटुकारिता भी उन के यहां न थी। वे न हाज़िर-जवाब थे, न जल्दी बहाने सोच सकते थे। पिटने पर भी वे सदा अपने पिता के साथ चिपके रहते और इसीलिए प्रायः घर तो घर, बाज़ार में भी पिटते!

पंडित जी पुस्तक देख कर ही प्रश्न पूछते हों, यह बात न थी। कई बार सहसा वे ऐसे समय और ऐसा प्रश्न पूछते जिस की रत्ती भर भी सम्भावना न होती।

...एक बार वे एक दावत के सिलसिले में (पूर्ववत भाई साहब साथ थे) सड़क की ओर से जाने के बदले लाइन लाइन थानेदार के यहां जा रहे थे कि सहसा एक सिगनल की ओर संकेत करके उन्होंने पूछा, "इसे अंग्रेज़ी में क्या कहते हैं?"

भाई साहब ने तुरन्त उत्तर दिया, "सिंगल!"

और दट से एक थप्पड़ उनके मुँह पर पड़ा, "यह पंजाबी भाषा का नहीं कम्बख्त अंग्रेजी का शब्द है। स्टेशन मास्टर का लड़का होकर गँवारों की तरह 'सिंगल' 'सिंगल' बके जा रहा है।"

दो और थप्पड़ जड़ते हुए उन्होंने वैसे ही और शब्द पूछे। थानेदार बेचारे बढ़िया पुरानी देशी शराब रखे उन की प्रतीक्षा करते रहे, किन्तु पंडित जी भाई साहब की मरम्मत करते हुए रास्ते से ही

रूप में परिणत करने में सदैव उस की सहायता करता—वह बीमार पड़ जाता कि चेतन उसे डाक्टर के पास ले जा सके; पीड़ा से कराहने लगता कि चेतन उस का सिर दबा सके; गुम हो जाता कि चेतन उसे ढूँढने का बहाना कर सके।

जब पंडित जी घर पर होते तो दोनों छोटे भाई सदा उन के सामने जाने से बचने के बीसों बहाने सोच लेते। वे इस बात का भी विशेष ध्यान रखते कि पंडित जी आयें तो उन दोनों के हाथ में तो क्या, घर के किसी कोने में भी उन्हें पुस्तक का कोई पृष्ठ तक न दिखाई दे। बाहर मुहल्ले ही से उनकी आवाज़ सुन कर वे पुस्तकें छिपाना शुरू कर देते। पंडित जी नीचे होते तो वे तुरन्त ऊपर की पुस्तकें छिपा देते और जब वे ऊपर आते तो बहाने से नीचे जाकर, वहाँ यदि कोई पुस्तक पड़ी हो तो, उसे उड़ा देते। अपनी समस्त सतर्कता और चाबुकदस्ती के बावजूद यदि उन्हें पंडित जी के कमरे में जाना पड़ जाता तो न केवल वे कभी हाथ में पुस्तक न ले जाते, वरन् पंडित जी जिस कमरे में हों, वहां यदि भूले से भी कोई पुस्तक पड़ी रह गई हो, तो बातों बातों में उसे बड़ी कुशलता से, उन की दृष्टि बचा कर, उड़ा देते। यदि पंडित जी को गर्मी लग रही हो तो उन्हें इस ज़ोर से पंखा करते कि उनका मन लेट जाने को चाहे। वे लेट जाते तो उनके पांव तथा पिंडलियां इस निष्ठा से दबाते कि वे खुर्राटे लेने लगते।

यदि इस समस्त सावधानी के बावजूद दुर्भाग्य उन का कोई बस न चलने देता—उन में कोई पंडित जी के चंगुल में फँस जाता और पंडित जी उस की परीक्षा लेने लगते तो दूसरा सदैव इस बात का प्रयास करता कि पंडित जी के किसी घनिष्ट-तम मित्र को उन के आने का समाचार इस भांति पहुँचा दे कि वह भागा भागा पंडित जी से मिलने चला आये और भाई का गला छूटे।

किन्तु चेतन के ये बड़े भाई (यों चाहे सदा उपन्यास पढ़ते या आवारागर्दी करते) जब पंडित जी घर आते तो तुरन्त पुस्तकें ले बैठते। न केवल वे घर से गुम रहने या पंडित जी के समक्ष जाने से बचने के उपाय न सोचते, वरन् जब पंडित जी घर आते तो वे सदैव घर ही में बने रहते—सम्भवतः अपनी आवारागर्दी का हाल छिपाने और पढ़ने में अपनी निष्ठा उन्हें बताने के लिए! फिर चेतन और उसके छोटे भाई की सी सतर्कता और चाबुकदस्ती भी उन के यहां न थी। वे न हाज़िर-जवाब थे, न जल्दी बहाने सोच सकते थे। पिटने पर भी वे सदा अपने पिता के साथ चिपके रहते और इसीलिए प्रायः घर तो घर, बाज़ार में भी पिटते!

पंडित जी पुस्तक देख कर ही प्रश्न पूछते हों, यह बात न थी। कई बार सहसा वे ऐसे समय और ऐसा प्रश्न पूछते जिस की रत्ती भर भी सम्भावना न होती।

...एक बार वे एक दावत के सिलसिले में (पूर्ववत भाई साहब साथ थे) सड़क की ओर से जाने के बदले लाइन लाइन थानेदार के यहां जा रहे थे कि सहसा एक सिगनल की ओर संकेत करके उन्होंने पूछा, "इसे अंग्रेज़ी में क्या कहते हैं?"

भाई साहब ने तुरन्त उत्तर दिया, "सिंगल!"

और दड़ से एक थप्पड़ उनके मुँह पर पड़ा, "यह पंजाबी भाषा का नहीं कम्बख्त अंग्रेजी का शब्द है। स्टेशन मास्टर का लड़का होकर गँवारों की तरह 'सिंगल' 'सिंगल' बके जा रहा है।"

दो और थप्पड़ जड़ते हुए उन्होंने वैसे ही और शब्द पूछे। थानेदार बेचारे बढ़िया पुरानी देशी शराब रखे उन की प्रतीक्षा करते रहे, किन्तु पंडित जी भाई साहब की मरम्मत करते हुए रास्ते से ही

लौट आये ।

...'चीचोकी मलियाँ' स्टेशन के सामने एक मिलेट्री का डिपो था। चेतन के बड़े भाई उस समय आठवीं श्रेणी में पढ़ते थे और चेतन छठी में। वह पहली बार अपने बड़े भाई के साथ चीचोकी मलियाँ आया था। एक दोपहर जब अपने पिता के साथ वे दोनों डिपो के सामने से जा रहे थे, चेतन ने सहसा अपने भाई से प्रश्न किया "यह बैरक सी क्या है, भरा जी ?"

भाई साहब ने बोर्ड पढ़ते हुए बताया, "चीचोकी मलियां मिलेट्री डिपोट..."

अभी उन्होंने वाक्य पूरा भी न किया था कि पूरे जन्नाटे के साथ एक थप्पड़ उन की कनपटी पर पड़ा और उनकी आँखों के आगे तारे नाचने लगे, "आठवीं जमात में पढ़ता है और यह भी मालूम नहीं कि शब्द 'डिपो' है 'डिपोट' नहीं।"

और पंडित जी ने काँटे वाले से वहीं कुर्सी मँगाई और भाई साहब से पुस्तक लाने को कहा। चेतन पानी पीने के बहाने खिसक गया। पीछे भाई साहब की जो दशा हुई उस का अनुमान लगाया जा सकता है।

......उन दिनों चेतन स्वयं आठवीं श्रेणी में पढ़ रहा था, उन का नया मकान अभी पूरा न बना था और वे सब मुहल्ले के साथ ही 'खोसलों की गली' में एक विधवा का मकान किराये पर लेकर रहते थे। उस को गणित की परीक्षा थी और घर पर पंडित जी (मकान बनवाने के हेतु छुट्टी लेकर) आये हुए थे।

भरा जी = भाई साहब

चेतन को गणित से तनिक भी लगाव न था। वह सदैव सौ में से एक दो नम्बर ही पाता। ये एक दो नम्बर भी उस की योग्यता की अपेक्षा अध्यापक की उदारता ही का प्रमाण होते। वार्षिक परीक्षा में रेखागणित ही उसकी सहायता करता।

बात यह थी कि बचपन ही से उसका गणित कमज़ोर और अँग्रेज़ी अच्छी थी। पंडित शादीराम ने उसका गणित सुधारने की ओर कभी ध्यान न दिया था और उस समय जब उसे दूसरी का गणित भी न आता था, तीसरी श्रेणी में दाखिल करा दिया था। उन्हें विश्वास था, कि वह एक वर्ष में दो कक्षाओं का गणित सीख लेगा। इसीलिए स्कूल ही के एक अध्यापक की ट्यूशन भी उसे रख दी थी। यद्यपि वे महाशय बरस भर उसे गणित पढ़ाते रहे और चेतन उन महाशय के कारण तीसरी श्रेणी में पास भी हो गया, तो भी गणित में वह कोरे का कोरा ही रहा। रहता भी क्यों न, जब कि अध्यापक महाशय उसे गणित का अभ्यास कराने की अपेक्षा उस से हुक्का भरवाते और पाँव दबवाते। गणित में यह कमजोरी धीरे-धीरे उस विषय से अरुचि और फिर घृणा में परिणत हो गई और फिर ऐसा हुआ कि गणित की पुस्तक देख कर ही चेतन एक विचित्र प्रकार की उदासीनता और उकताहट अनुभव करने लगा।

उस दिन यद्यपि परीक्षा चार बजे समाप्त हो गई थी, किन्तु चेतन बड़ी देर बाद घर पहुँचा—इस आशा से कि उसके पिता अपने अभिन्न-हृदय-मित्र देसराज के साथ बाज़ार शेखाँ की शोभा बढ़ाने चले गये होंगे, पर कदाचित उस दिन देसराज आया न था, या पंडित जी की जेब में मदिरा के लिए पर्य्याप्त पैसे न थे, या कोई और कारण था, नियम के विरुद्ध वे घर ही पर थे। चेतन के जाते ही उन्हों ने डाँट कर पूछा, 'कहाँ मर गये थे? अब परीक्षा समाप्त हुई है तुम्हारी!'

चेतन का गला सूख गया। उस की आँखों में धुँधियाली सी छा गई। हकलाते हुए उस ने जो बहाना बनाने की चेष्टा की, उसे पंडित जी ने बीच ही में काट दिया और उस से प्रश्न-पत्र माँगा।

काँपते हाथों से चेतन ने पेपर अपने पिता की ओर बढ़ा दिया।

झटके के साथ पेपर उस के हाथों से छीनते हुए उन्हों ने पूछा, "कितने प्रश्न ठीक हैं?"

यद्यपि चेतन का एक भी प्रश्न ठीक न था तो भी उसने कहा कि उसके पाँच प्रश्न ठीक हैं। सहपाठियों से सुने हुए ठीक उत्तर उस ने अपने पिता को बता दिये और अपने इस झूठ को सत्य का रङ्ग देते हुए उस ने यह भी कहा कि केवल 'काम और वक्त' और 'सूद-दर-सूद' के प्रश्न उस की समझ में नहीं आये।

इस से पूर्व कि पंडित जी ठीक प्रश्नों के विषय में उस के सत्य की जाँच करते, उन्हों ने 'काम और वक्त' का प्रश्न पढ़ा और बोले, "इस में मुश्किल क्या है? कौन सी बात तुम्हारी समझ में नहीं आई!"

चेतन मुँह ही में कुछ बड़बड़ा कर रह गया।

"जाओ अपनी पुस्तक लाओ।"

उस समय भाई साहब ने, जो उन दिनों मैट्रिक में पढ़ते थे, अपने पिता से पेपर लिया और प्रश्न पढ़ कर बोले, "यह तो बिलकुल आसान है।"

चेतन ने एक क्रोध-भरी दृष्टि अपने भाई पर डाली और धीरे धीरे उस व्यक्ति की सी चाल से लड़खड़ाता हुआ पुस्तक लेने चला जिस के भाग्य का निर्णय, मृत्यु के रूप में, जज ने सुना दिया हो।

भाई साहब ने इस बीच में प्रसन्नता-पूर्वक लैम्प लाकर उस की चिमनी को साफ़ किया, बत्ती काटी, तेल भरा और उसे चौकी पर रख कर जला दिया। इस ओर से निश्चिंत होकर वे अपने पिता के

लिए हुक्का भर लाने का [illegible] चेतन पुस्तक लेकर न आया तो उसके पिता गरजे। तब माँ ने आकर रुआँसे स्वर से कहा कि भूखा था, खाना खा रहा है.....।

चेतन ने बैठे बैठे यह बात सुनी। उस के पेट में एक गोला सा उभर कर उस के कंठ तक आ गया। यदि नीचे न जाना होता तो वह फूट फूट कर रो उठता, किन्तु किसी प्रकार अपनी समस्त शक्ति से अपने आप को संयत रख, दो कौर किसी न किसी तरह निगल कर, वह उठा। उस के पाँव मन मन भर के हो रहे थे। उसे कुछ दिखाई न दे रहा था। पुस्तक यद्यपि ताक ही में पड़ी थी, फिर भी उसे ढूँढ़ने में उसे काफी देर लग गई। इतने में उसके पिता की गरज फिर सुनाई दी। कांपते हुए रुआसे स्वर में "आया जी" कह कर, पुस्तक स्लेट और पेंसिल ले, वह चींटी की सी चाल से नीचे को चला। उस समय उसे ऐसा लग रहा था जैसे प्रत्येक सीढ़ी उसे किसी गहरे अँधेरे गर्त में लिये जा रही है। उस का शरीर रेंगते हुए उस ग़रीब घोंघे की तरह अपने आपमें सिकुड़ा सा जा रहा था जिसने संकट की गंध पा ली हो।

जब वह जाकर पंडित जी के सामने बैठ गया तो उन्हों ने स्लेट पेंसिल और पुस्तक लेकर उसे एक उदाहरण समझाया कि यदि पचीस मज़दूर एक खेत को पाँच दिन में काटते हैं तो पाँच मज़दूर उसे पचीस दिन में काटेंगे। और उन्होंने उसे समझाया कि काम करने वालों की सख्या अधिक हो तो समय कम हो जाता है और कम हो तो अधिक।

चेतन का वह भय जो मार पीट की निकट-सम्भावना से उत्पन्न हुआ था, कुछ दूर हो गया। भय के दूर होने के कारण घोंघा फिर खोल से बाहर निकलने लगा। चेतन फिर सम्हल कर बैठ गया और ध्यान से समझने लगा। उस समय उसे न जाने कैसी एकाग्रता प्राप्त

हो गई कि वह प्रश्न जो, गणित से घृणा होने के कारण कभी उस की समझ में न आया था, अपनी सारी सूक्ष्मता के साथ तुरन्त उस की समझ में आ गया। वास्तव में उस ने कभी समझने का प्रयास ही न किया था। उस समय मार के भय से या समझाने वाले के सामीप्य के कारण, प्रश्न की समस्त जटिलता सर्वथा स्पष्ट होकर, उस की समझ में आ गई।

जब चेतन के पिता ने उस से पूछा कि प्रश्न उसकी समझ में आ गया है या नहीं तो उसने 'हाँ' सूचक सिर हिलाया।

तब पंडित जी ने उसे योंही एक मौखिक प्रश्न पूछा। चेतन ने झट उसका उत्तर बता दिया। फिर वे उससे प्रश्न करते गये और चेतन उत्तर देता गया। हर बार वे प्रश्न को जटिल बनाते गये, यहाँ तक कि उन्हों ने एक खासा मुश्किल प्रश्न उस से पूछा।

चेतन का साहस बँध गया था। उस ने कहा, "जी मैं तनिक सोच कर बताता हूँ।"

चेतन की मेधा-शक्ति से प्रसन्न होकर उसके पिता ने उसे सोचने की आज्ञा दे दी और जब सोचने पर भी उस ने डरते डरते कहा, "जी यह मेरी समझ में नहीं आया", तो सहसा पंडित जी की दृष्टि मूर्खों की भाँति मुँह बाये बैठे अपने बड़े लड़के पर चली गई। और उन्होंने जैसे बन्दूक दाग़ी, "तू बता!"

भाई साहब सिटपिटाये! काफ़ी सोचने के बाद उन्हों ने जो उत्तर दिया उसकी दाद में एक ज़ोर का थप्पड़ उनके गाल पर पड़ा।

"मैट्रिक में पढ़ता है कम्बख्त और आठवीं का सवाल नहीं आता।"

और पंडित जी ने अपनी कृपा-दृष्टि को चेतन के बदले भाई साहब की ओर मोड़ दिया।

मैट्रिक तक मार-पीट के बल पर किसी न किसी प्रकार पढ़ कर भाई साहब कालेज में दाखिल तो हो गये, किन्तु परीक्षा में सफल होना उन्होंने उतना आवश्यक नहीं समझा। अंग्रेजी में कमज़ोर थे, किन्तु संस्कृत से तो जैसे उनके प्राण जाते थे। यह बात वे कभी न समझ पाते कि यह क्लिष्ट भाषा, जो न किसी सरकारी नौकरी में काम आती है, न किसी व्यापारिक दफ्तर में, जो आर्यों के समय में भी जन-साधारण की भाषा न थी, आजकल क्यों पढ़ाई जाती है ? क्यों आवश्यक है कि संस्कृत या अरबी, फारसी में से एक विषय अवश्य लिया जाय। इस के स्थान पर किसी ललित कला या शिल्प की शिक्षा क्यों नहीं दी जाती जिसमें वे निश्चय अपनी योग्यता दिखा सकते थे। और एक दिन गर्मी की छुट्टियों से पहले, तीन महीने की फ़ीस लेकर वे दिल्ली भाग गये थे और वहाँ एक पेंटर की दुकान पर शिष्य हो गये थे। दुर्भाग्य से पंडित शादीराम के एक पुराने मित्र ने उन्हें देख लिया और इस प्रकार भाई साहब को न केवल विवश होकर लौट आना पड़ा, बल्कि उसी कालेज में फिर से शिक्षा पाने के लिए बाध्य होना पड़ा।

पिता की कठोरता से भाई साहब घबराये नहीं मार के भय से वे कालेज में प्रविष्ट तो हो गये, किन्तु क्लास में बैठ कर प्रोफ़ेसरों के शुष्क लेक्चर सुनने की अपेक्षा कालेज के सुहाने उपवन के किसी घने वृक्ष की छाया में बैठ कर नित्य-नये मनोरंजक उपन्यास पढ़ने लगे। वे सब उपन्यास भाई साहब 'महन्तराम बुक सैलर' की दुकान से, दो पैसे प्रतिदिन के हिसाब से, किराये पर ले आते। महन्तराम की दुकान भैरो बाजार में थी और उसमें फजल बुक डिपो लाहौर से लेकर नवल-किशोर प्रेस लखनऊ तक सभी प्रकार की संस्थाओं से छपी हुई पुस्तकों के ढेर लगे रहते थे। भाई साहब वह राशि राशि ज्ञान दीमक की भाँति

चाट गये थे और साहित्य के उत महान्-कोष को चाट जाने पर भी वे दीमक ही की भांति कोरे के कोरे थे।

उपन्यास वे केवल मन बहलाव या समय काटने के लिए पढ़ते थे, मनन चिन्तन के लिए नहीं। इसी कारण जिस उल्लास और उत्सुकता से वे 'वेगुनाह कैदी', 'नीली छतरी', ''वहराम डाकू', ''चन्द्र-कान्ता संतति', ''भोलानाथ' और तीरथराम फीरोजपुरी के अनुवाद आदि पढ़ गये थे, उतने ही आनन्द से वे बङ्किमचन्द्र, टैगोर, शरत् और प्रेमचन्द के उपन्यास निगल गये थे।

परिणाम वही हुआ जिसकी उन्हें आशा थी। उन की हाजिरियाँ कम हो गयीं, और यद्यपि पंडित शादीराम ने अपने सिद्धान्त तेल तमा जिस को मिले तुरत नरम हो जाय, के अनुसार प्रोफेसरों को रिश्वत देने का प्रयास भी किया और दूसरे विषयों में किसी प्रकार भाई साहब के लैक्चर पूरे भी हो गये, किन्तु संस्कृत के प्रोफेसर को वे किसी भांति राम न कर पाये। भाई साहब परीक्षा में न बैठ सके और जब एक बार नहीं बैठे तो फिर नहीं बैठे।

कालेज से पिंड छूटा तो भाई साहब ने जीविकोपार्जन की चिन्ता करने की अपेक्षा ताश और शतरंज को अपना साथी बनाया। इस में कुछ उनका दोष था, कुछ उन के पिता का। जब भाई साहब दिल्ली से आ गये तो माँ के परामर्श से पंडित जी ने इस चंचल 'बोते' को बाँधने के विचार से, उस की नाक म नुकेल डालना आवश्यक समझा। अपने एक स्टेशन मास्टर मित्र की लड़की से उन की सगाई कर दी। जब भाई साहब परीक्षा में बैठने के स्थान पर घर बैठ गये तो उन्हें किसी काम पर लगाने या कोई कला-कौशल सिखाने के बदले पंडित जी ने उनकी शादी कर दी।

ऊँट।

इस के पश्चात् यद्यपि दूसरे वर्ष भाई साहब ने कालेज जाने से साफ़ इन्कार कर दिया, तो भी पंडित जी को उन्हें नौकर कराने की चिन्ता नहीं हुई। एक बार माँ के अनुरोध से तंग आकर वे उन्हें आडिट आफ़िस में, अपने एक मित्र के पास, अवश्य ले गये, किन्तु जब उसने उन्हें केवल पैंतिस रुपये मासिक पर 'आफ़िस ब्वाय' रखने से अधिक कुछ करना स्वीकार न किया तो पंडित जी ने अपने उस मित्र को बीसियों गालियाँ दीं और कहा कि "पैंतिस रुपये तो मैं रोज़ शराब पर खर्च कर देता हूँ कम्बख्त!" और अपने इस थर्ड डिविजन मैट्रिक पास सुपुत्र को लेकर चले आये।

फिर यद्यपि पंडित जी ने उन की नौकरी लगाने के हेतु फ़िरोज़पुर, लाहौर और दिल्ली जाने के लिए, चेतन की माँ से कई बार रुपये लिए किन्तु वे बाज़ार शेखाँ के साक़ी की दुकान तक होकर ही लौट आये।

रहे भाई साहब, तो उन्हों ने अपने लिये मॉटो बना रखा था—"सोचो मत।" इसी मॉटो पर अक्षरशः चलने का परिणाम था कि इस बेकारी और बेरोज़गारी के होते भी एक लड़का और दो लड़कियाँ उन के यहाँ हो गई थीं। एक मर चुकी थी और दूसरी को उनकी पत्नी कूल्हे से लगाये फिरती थी और वे स्वयं अपने इन बीवी, बच्चों को पालने के लिए कहीं नौकरी ढूंढ़ने की बात एक दम भुलाये, गुलछर्रे उड़ा रहे थे। कभी जब माँ या पत्नी घर में उन का दम नाक में कर देतीं और ऐसे तीखे व्यंग्य-बाण छोड़तीं कि भाई साहब सोचने को विवश हो जाते तो वे आँगन में किसी औंधी बाल्टी पर या दरवाजे की किसी चौखट में कुछ क्षणों के लिये घुटनों पर कुहनियाँ टिकाये, हथेलियों पर ठोड़ी रखे, अतीव एकाग्रता से सोचने की मुद्रा बना कर बैठ जाते। सम्भवतः वे सोचना भी चाहते, किन्तु इस क्षेत्र में वे अपने आपको सदैव उस खिलाड़ी सा पाते जिसे खेल का आरम्भिक ज्ञान भी न हो।

कुछ क्षण इसी मुद्रा में रहने के पश्चात् सहसा सिर को झटक कर वे उठते और सरदार नन्दासिंह सोडावाटर वाले की दुकान या पंडित बनारसीदास सूतवाले की दुकान पर जाकर किसी ताश या शतरंज की टोली में सम्मिलित हो जाते। धीरे धीरे वे उस क्षेत्र में अपना स्थान बना लेते। ताश और शतरंज में उनकी अपूर्व प्रतिभा के सम्मान में कोई न कोई खिलाड़ी उन को अपना स्थान दे देता और फिर एक बार जूते एड़ियों से ठकोर कर झाड़ने के पश्चात् वे जम कर जो बैठते तो दूसरों को अपनी योग्यता का लोहा मनवाये बिना न उठते।

किन्तु चेतन की माँ अपने इस बेटे की बेकारी और अकर्मण्यता तथा उस की बहू के कर्कश, झगड़ालू, स्वभाव से अत्यन्त दुखी थी। जब अपने सुपुत्र को काम में लगा देखने के लिए पिता के समस्त प्रयत्न शराबखाने तक जाकर ही समाप्त हो गये तो माँ ने कहीं से ऋण लेकर उसे एक लाँडरी खोल दी।

बात वास्तव में यों हुई कि भाई साहब के प्रिय मित्र सरदार नन्दा सिंह सोडावाटर वाले की दुकान पर, जहाँ शीतकाल में सोडे का बाज़ार सर्द और शतरंज की महफिल गर्म रहती थी, फ़िरोजपुर का एक व्यक्ति आया जो शतरञ्ज का ज़बरदस्त खिलाड़ी था। उसने पहली ही बैठक में भाई साहब को, जो उस इलाके में शतरञ्ज के चैम्पियन माने जाते थे, निरन्तर कई बार मात दे दी।

जब बिसात उठी तो एक सच्चे खिलाड़ी की तरह भाई साहब ने उसके खेल की भूरि भूरि प्रशंसा की और लेमोनेड की एक बोतल खोलते हुए उसे दूसरे दिन के लिए आमंत्रित किया। तब उस ने बताया कि वह तो काम की खोज में जालन्धर आया है। उधर से निकला था, शतरञ्ज बिछी देख कर बैठ गया, नहीं उसे तो काम-धन्धा ढूँढ़ना है।

भाई साहब का कुतूहल बढ़ा और वे उसे उस अड्डे—स्टेशन की सराय तक छोड़ने गये। बातों बातों में उन्हें यह ज्ञात हो गया कि उस का नाम राजाराम है। वह लाँडरी के काम में निपुण है, धोने और रङ्गने में दोआबा (सतलुज और व्यास नदी के मध्य का प्रदेश) भर में उस का कोई सानी नहीं। किसी समय फ़िरोज़पुर ही में उस की लाँडरी थी, किन्तु १९२१ के असहयोग आन्दोलन में वह जेल चला गया और उस की लाँडरी चौपट हो गयी। जेल में उस ने दो चीज़ें सीखीं—एक शतरञ्ज, दूसरे राष्ट्रिय कविता। भाई साहब को उसने अपने कई बैंत सुनाये और यह भी बताया कि वह प्रसिद्ध डाइर और ड्राई-क्लीनर * होने के साथ साथ ही ख्याति-प्राप्त राष्ट्रिय कवि भी है। फ़िरोज़पुर में उस की रङ्गाई-धुलाई के साथ उस के बैंतों की भी धूम है। जब लाहौर काँग्रेस के लिए सरकार ने मिंएटोपार्क देना स्वीकार न किया था तो उसी ने यह प्रसिद्ध बैंत लिखा था :

मिंटो पार्क नू ले जाओ बई लन्दन चुक के।
असां रावी ते झंडा झुलावांगे बई। †

कि एक बार लाँडरी टूटने पर उसने कई बार पुनः लाँडरी स्थापित करने का प्रयास किया, पर उसे सफलता नहीं मिली। अब फ़िरोज़पुर छोड़ कर वह जालन्धर आया है कि यदि कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाय जो थोड़ी बहुत पूँजी लगाने को तैयार हो तो साझे में लाँडरी खोले।

शतरञ्ज के इस कुशल खिलाड़ी और राष्ट्रिय कवि के दुर्भाग्य से भाई साहब को बड़ी सहानुभूति हुई, किन्तु शतरञ्ज और ताश की चैम्पियनशिप के अतिरिक्त उन के पास कुछ न था। फिर भी उन्होंने उसे दूसरे दिन आने के लिए कहा और सान्त्वना दी कि वे उस के

---

* रङ्गने और धोने वाला

† मिंटोपार्क को लन्दन उठा कर ले जाओ हम अपना झंडा रावी पर झुलायेंगे

लिए न कुछ प्रबन्ध अवश्य करेंगे।

उस दिन दिये जले जब चेतन घर आया तो उस ने देखा कि माँ बर्तन मल रही है और उन के पास ही एक औंधी बाल्टी पर बैठे हुए भाई सा.ब लांडरी के काम की प्रशंसा पुल बांध रहे हैं।

"हींग लगे न फिटकरी, रङ्ग चोखा आये," वे कह रहे थे, "कपड़े लोगों के और धोकर देने वाले धोबी, लांडरी वाले को तो मुफ्त में लाभ हो जाता है। कोई ही ऐसा बिज़नेस होगा जो इतनी कम पूँजी से आरम्भ किया जा सके और जिस में इतना लाभ हो।

चेतन उस समय जल्दी में था, इसलिए उसने भाई साहब की पूरी बात नहीं सुनी, किन्तु उस दिन के पश्चात् उसने देखा कि लांडरी के काम में भाई साहब का उत्साह उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। दिन का पर्याप्त समय वे घर ही में रहने लगे हैं, ड्राई क्लिनिंग और डाइङ्ग की कला में उन्हें पर्याप्त दक्षता प्राप्त होती जा रही है और जितना समय वे घर पर रहते हैं, मां को लाँडरी के काम समझाते रहते हैं.....।

एक दिन उसने सुना भाई साहब कह रहे थे, "यदि मैं ताश शतरञ्ज में व्यर्थ समय नष्ट करता रहा तो इसमें मेरा क्या दोष है। मुझे किसी ने कोई कला-कौशल सिखया ही नहीं। मैं दिल्ली भाग गया था, यदि मुझे वहाँ से वापस न बुलाते तो मैं अब तक वहाँ प्रसिद्ध पेन्टर हो गया होता। अब भी यदि मैं लाँडरी का काम सीख जाऊँ तो न केवल अपना, बल्कि सारे परिवार का बोझ अपने कन्धों पर उठा लूँ।"

माँ बहुत प्रसन्न हुई कि अन्त में सुबह का भूला शाम को घर आ गया है। उसी दिन से वह इस बात का जतन करने लगी कि अपने इस बेटे को किसी न किसी प्रकार लांडरी के लिए रुपये इकट्ठे कर दे। सुयोग भी आ उपस्थित हुआ। पंडित शादीराम को उन दिनों 'सट्टे' की नयी नयी लत लगी थी। दुनिया भर के साधु-सन्तों, पीरों फ़क़ीरों

की सेवा-शुश्रूषा के पश्चात् वे इसी व्यसन के कारण खासे ऋणी भी हो गये थे। तभी उन्हें जालन्धर छावनी के एक पहुंचे हुए ज्योतिषी का पता चला। बस वे पन्द्रह दिन की छुट्टी लेकर जालन्धर आ पहुंचे। जालन्धर से छावनी और छावनी से जालन्धर, बीसियों चक्कर काटने और उन ज्योतिषी जी की चौखट पर निरन्तर माथा रगड़ने के पश्चात् उन महाराज के दर से उन्हें 'दड़े'* का नम्बर मिला और इसे भाई साहब का भाग्य कहिए या उन के फ़िरोज़पुरी मित्र का, कि वह नम्बर आ गया और पंडित जी को साढ़े तीन हज़ार रुपये मिल गये।

यद्यपि उस समय पंडित जी के सिर पर लगभग उतना ही ऋण था और माँ की इच्छा थी कि परमात्मा ने जब उन को सुअवसर दिया है तो उन्हें उस का पूरा लाभ उठा कर सट्टे को सदैव के लिए "नमस्कार" कह देना चाहिए, लेकिन पंडित जी अपने भगवान को इतना कृपण न समझते थे। पत्नी के उपदेश भरे परामर्श के उत्तर में "भगवान तेरी लीला अपरमपार है!" का नारा बुलन्द करते हुए उन्हों ने कहा, "जिस भगवान ने एक बार दिया है वह फिर क्यों न देगा?" और केवल डेढ़ हज़ार का ऋण उतरा; फल, मिठाई, कपड़ों और रुपयों का एक थाल ज्योतिषी जी के घर पहुँचाया और शेष रुपया अस्सी नव्वे प्रति दिन के हिसाब से सट्टे पर लगाते रहे। किन्तु जब माँ ही की बात पूरी हुई कि वह तो भगवान ने उन्हें सुधरने का एक अवसर दिया था, नहीं लक्ष्मी यों मारी मारी नहीं फिरती तो सारा रुपया ठिकाने लगा कर, डेढ़ हज़ार का फिर साढ़े तीन हज़ार ऋण बनाकर और माँ को "काल जीभी"† की उपाधि से विभूषित करके वे पुनः

* दड़ा=सट्टा=एक तरह की लाटरी है जिसमें १०० तक नम्बर होते हैं। जिसका नम्बर आ जाता है उसे सौ गुना पैसे मिलते हैं।

† काली जीभ वाली

अपने स्टेशन पर चले गये।

माँ ने भाई साहब की प्रेरणा और सहायता से जैसे तैसे उस रुपये में से तीन चार सौ बचा लिया था। दो तीन सौ कहीं से उधार लिया और लाँडरी खोलने की व्यवस्था कर दी।

उन दिनों भाई साहब का उत्साह अपने शिखर पर था। उन के पाँव धरती पर न पड़ते थे। बड़े तमतराक से उन्हों ने अड्डा होश्यारपुर में एक तवेला किराये पर लिया, कपड़े धोने के लिए घाट बनवाये और बड़े बड़े विज्ञापनों के साथ, जिन में उन के मित्र फ़िरोज़पुरी राष्ट्रीय कवि ने अपने बैतों में लाँडरी के गुण-गान बखान करने में बड़ी उदारता के काम लिया था 'भारत लाँडरी वर्क्स' के उद्घाटन की घोषणा कर दी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस लाँडरी में राष्ट्रीय कवि बराबर के साझीदार थे।

लांडरी खोलने में भाई साहब ने इतनी निष्ठा और लगन का परिचय दिया कि चेतन को आप से आप उन की सहायता के लिए तैयार होना पड़ा। अपने कालेज के होस्टल, स्कूल के होस्टल, अपने कालेज और स्कूल ही के नहीं वरन् अपने मित्रों की सहायता से दूसरे स्कूलों के होस्टलों से भी उस ने 'भारत लाँडरी' के लिए कपड़े लाने का प्रबन्ध कर दिया।

पीतल की बड़ी बड़ी इस्त्रियां खरीदी गयीं, तांबे के बड़े बड़े तबल-बाज़ लाये गये, शो-केस बनवाये गये और बड़े धड़ल्ले से लाँडरी का काम चलने लगा। भाई साहब ने रंगाई और धुलाई का काम सीखने में रत्ती भर भी आलस्य नहीं दिखाया। चेतन ने यह भी देखा कि जब धोबी न होते या दूसरा काम कर रहे होते तो भाई साहब स्वयं ही इस्त्री लेकर कपड़ों के ढेर के ढेर प्रेस कर देते।

भाई साहब की इस काया-पलट पर चेतन मन ही मन चकित

हुआ करता और उसे किसी प्रसिद्ध दार्शनिक का यह कथन स्मरण हो आता—'मनुष्य का मन एक अथाह समुद्र है। इसके गर्भ में क्या है, यह सतह को देख कर नहीं जाना जा सकता' और मां नित्य पूजा के समय भगवान से कहतीं "हे भगवान जैसे तूने मेरी सुनी, वैसे ही सब की सुन!"

कुछ महीनों तक मज़े में काम चलता रहा। फिर क्या हुआ, कैसे हुआ, चेतन को कुछ भी ज्ञात नहीं, किन्तु जहां जहाँ से उस ने कपड़े लाकर दिये थे, वहां वहां से उस के पास निरन्तर शिकायतें पहुँचने लगीं। उसके एक मित्र ने उलाहना दिया कि तीन सप्ताह तक उसे कपड़े नहीं मिले और जब वह लाँडरी में गया तो धोबियों ने उस के कपड़े पहन रखे थे। एक दूसरे ने शिकायत की कि उसने अपनी बहन की जो साड़ी रंगने के लिए दी थी, जब वह उसे लेने गया तो उसे कोई दूसरी ही साड़ी मिली। उस ने अपनी साड़ी के लिए तगादा किया तो भाई साहब और उन के मित्र उस से लड़ने पर उतारू हो गये कि रंगने के पश्चात् साड़ी वैसी ही कैसे रह सकती है। चेतन का मित्र पूछ रहा था...."रंगने के पश्चात् साड़ी का रंग तो बदल सकता है, किन्तु साड़ी किस रासायनिक क्रिया से बदल गई।"

चेतन उन दिनों परीक्षा की तैयारी कर रहा था। जब इन शिकायतों, उलाहनों और अभियोगों में प्रति दिन वृद्धि होने लगी और सब ओर त्राहि-त्राहि मच गई तो एक दिन अपनी पुस्तकों को पटक कर वह लाँडरी पहुंचा। तब उस ने देखा कि कपड़ों और उन के झमेलों से मुक्त होकर, तबेले के घने पीपल की छाया के नीचे, भाई साहब अपने उस फ़िरोज़पुरी मित्र के साथ बिसात बिछाये बैठे हैं,

विरुद्ध प्रोटेस्ट के तौर पर समाचार-पत्र बन्द हो गये हैं। देश में चारों ओर प्रोटेस्ट सभाएँ हो रही हैं। इसी सम्बन्ध में उन्होंने भी सभा की व्यवस्था की है, जिस में वे स्वयं एक बहुत ज़ोरदार भाषण देने जा रहे हैं। इस बात की पूर्ण सम्भावना है कि उन्हें सभा में गिरफ़्तार कर लिया जाये। उन्होंने चेतन से अनुरोध किया कि वह उन का भाषण सुनने अवश्य आये और चलते चलते यह भी कहा कि यदि सम्भव हो तो एक आध हार जरूर खरीद कर लेता आये।

चेतन उस दिन एक अत्यन्त मनोरंजक उपन्यास पढ़ रहा था। यद्यपि उपन्यास को बीच ही में छोड़ कर जाना उसे बड़ा अप्रिय लगता था, तो भी भाई साहब का अनुरोध था और फिर इस बात की आशंका भी थी कि जाने वे उस दिन पकड़ लिये जायँ और जाने कितने वर्षों के लिए जेल की कोठरी में ठूंस दिये जायँ। इस लिए पुस्तक को हाथ ही में लिए हुए वह चल पड़ा और भाई साहब की इच्छानुसार उसने रास्ते में फूलों का एक हार भी खरीद लिया।

जब वह चौक इमाम-नासरुद्दीन में पहुँचा तो सभा प्रारम्भ हो चुकी थी। वह एक ओर खड़ा हो गया। उस ने देखा कि ड्राइंग और ड्राइक्लीनिङ्ग के विशेषज्ञ, राष्ट्रीय-कवि सभापति के आसन की शोभा बढ़ा रहे हैं और भाई साहब एक समाचार पत्र से किसी नेता का वक्तव्य पढ़ रहे हैं। इसी को शायद वे भाषण देना कहते थे। चेतन ने देखा कि उनके हाथ काँप रहे हैं, उन की टाँगे काँप रही है, यहाँ तक कि तख़्त और उन पर रखी हुई मेज़ भी कांप रही है।

तभी एक ओर से जनता उठ खड़ी हुई और 'पोलीस' 'पोलीस' का शोर मच गया। इस भगदड़ में चेतन हाथ में हार लिये हुए समीप ही खड़ी एक बैलगाड़ी पर चढ़ गया। दूसरे क्षण उसे पता चला कि जिसे लोग पुलिस समझते थे, वह तो एक भयभीत सांड है। न जाने किस

पाजी ने उसे सभा की ओर भगा दिया था। कभी वह डर कर एक ओर जाता, कभी दूसरी ओर, किन्तु जब साँड़ भय की सीमा पार कर, निर्भीक हो गया तो श्रोताओं ने, जो भाषण सुनने की अपेक्षा यह तमाशा देखने लगे थे, उसे रास्ता दे दिया। लोग फिर इकट्ठे होने लगे। चेतन भी बैलगाड़ी से उतर कर सभा के मध्य रखे हुए तख्त की ओर बढ़ा। उस समय उसने देखा कि वहाँ न सभापति महाशय हैं और न वक्ता महोदय और लोग मंच पर चढ़ कर हुल्लड़ मचा रहे हैं ... ..

जब चेतन घर पहुंचा तो उसे पता चला कि वक्ता महोदय तो उस से कहीं पहले घर पहुंच गये हैं और बड़े आराम से खुर्राटे भी ले रहे हैं। सभापति महाराज उसके पश्चात् महीनों जालंधर में दिखाई नहीं दिये। वे दोआबा के गाँवों में भागते, छिपते और अपनी राष्ट्रीय कविताएँ सुना कर देहातियों का आतिथ्य स्वीकार करते, यह कहते फिरे कि उनकी गिरफ्तारी के वारण्ट निकले हुए हैं और वे पुलिस को छकाते हुए अपने राजनीतिक कार्य को जारी रखे हुए हैं।

एक लम्बी अवधि के पश्चात् होश्यारपुर की एक नयी लाँडरी का विज्ञापन चेतन के हाथ लगा जिसकी प्रशंसा में वही बैत छपे थे, जो कभी राष्ट्रीय-कवि ने 'भारत लाँडरी वर्क्स' की प्रशंसा में लिखे थे।

दूसरे दिन जब भाई साहब उठे तो लाँडरी की तरह काँग्रेस की डिक्टेटरी भी उनके मस्तिष्क से विलुप्त हो गई थी और क्योंकि ग्रीष्म ऋतु आ गई थी, इस लिए भाई साहब ने सरदार नन्दोसिंह सोडावाटर वाले की दुकान को अपना अड्डा बनाने का निश्चय कर लिया था।

—o—

विरुद्ध प्रोटेस्ट के तौर पर समाचार-पत्र बन्द हो गये हैं। देश में चारों ओर प्रोटेस्ट सभाएँ हो रही हैं। इसी सम्बन्ध में उन्होंने भी सभा की व्यवस्था की है, जिस में वे स्वयं एक बहुत ज़ोरदार भाषण देने जा रहे हैं। इस बात की पूर्ण सम्भावना है कि उन्हें सभा में गिरफ़्तार कर लिया जाये। उन्होंने चेतन से अनुरोध किया कि वह उन का भाषण सुनने अवश्य आये और चलते चलते यह भी कहा कि यदि सम्भव हो तो एक आध हार जरूर खरीद कर लेता आये।

चेतन उस दिन एक अत्यन्त मनोरंजक उपन्यास पढ़ रहा था। यद्यपि उपन्यास को बीच ही में छोड़ कर जाना उसे बड़ा अप्रिय लगता था, तो भी भाई साहब का अनुरोध था और फिर इस बात की आशंका भी थी कि जाने वे उस दिन पकड़ लिये जायँ और जाने कितने वर्षों के लिए जेल की कोठरी में ठूंस दिये जायँ। इस लिए पुस्तक को हाथ ही में लिए हुए वह चल पड़ा और भाई साहब की इच्छानुसार उसने रास्ते में फूलों का एक हार भी खरीद लिया।

जब वह चौक इमाम-नासरुद्दीन में पहुँचा तो सभा प्रारम्भ हो चुकी थी। वह एक ओर खड़ा हो गया। उस ने देखा कि ड्राइंग और ड्राफ्ट्समैनशिप के विशेषज्ञ, राष्ट्रीय-कवि सभापति के आसन की शोभा बढ़ा रहे हैं और भाई साहब एक समाचार पत्र से किसी नेता का वक्तव्य पढ़ रहे हैं। इसी को शायद वे भाषण देना कहते थे। चेतन ने देखा कि उनके हाथ काँप रहे हैं, उन की टाँगें काँप रही हैं, यहाँ तक कि तख्त और उस पर रखी हुई मेज़ भी काँप रही है।

तभी एक ओर से जनता उठ खड़ी हुई और 'पोलीस' 'पोलीस' का शोर मच गया। इस भगदड़ में चेतन हाथ में हार लिये हुए समीप ही खड़ी एक बैलगाड़ी पर चढ़ गया। दूसरे क्षण उसे पता चला कि जिसे लोग पुलिस समझते थे, वह तो एक भयभीत सांड है। न जाने किस

पाजी ने उसे सभा की ओर भगा दिया था। कभी वह डर कर एक ओर जाता, कभी दूसरी ओर, किन्तु जब साँड भय की सीमा पार कर, निर्भीक हो गया तो श्रोताओं ने, जो भाषण सुनने की अपेक्षा यह तमाशा देखने लगे थे, उसे रास्ता दे दिया। लोग फिर इकट्ठे होने लगे। चेतन भी बैलगाड़ी से उतर कर सभा के मध्य रखे हुए तख्त की ओर बढ़ा। उस समय उसने देखा कि वहाँ न सभापति महाशय हैं और न वक्ता महोदय और लोग मंच पर चढ़ कर हुल्लड़ मचा रहे हैं......

जब चेतन घर पहुंचा तो उसे पता चला कि वक्ता महोदय तो उस से कहीं पहले घर पहुंच गये हैं और बड़े आराम से खुर्राटे भी ले रहे हैं। सभापति महाराज उसके पश्चात् महीनों जालंधर में दिखाई नहीं दिये। वे दोआबा के गाँवों में भागते, छिपते और अपनी राष्ट्रीय कविताएँ सुना कर देहातियों का आतिथ्य स्वीकार करते, यह कहते फिरे कि उनकी गिरफ्तारी के वारण्ट निकले हुए हैं और वे पुलिस को छकाते हुए अपने राजनीतिक कार्य को जारी रखे हुए हैं।

एक लम्बी अवधि के पश्चात् होश्यारपुर की एक नयी लाँडरी का विज्ञापन चेतन के हाथ लगा जिसकी प्रशंसा में वही बैत छपे थे, जो कभी राष्ट्रीय-कवि ने 'भारत लाँडरी वर्क्स' की प्रशंसा में लिखे थे।

दूसरे दिन जब भाई साहब उठे तो लाँडरी की तरह काँग्रेस की डिक्टेटरी भी उनके मस्तिष्क से विलुप्त हो गई थी और क्योंकि ग्रीष्म ऋतु आ गई थी, इस लिए भाई साहब ने सरदार नन्दोसिंह सोडावाटर वाले की दुकान को अपना अड्डा बनाने का निश्चय कर लिया था।

विरुद्ध प्रोटेस्ट के तौर पर समाचार-पत्र बन्द हो गये हैं। देश में चारों ओर प्रोटेस्ट सभाएँ हो रही हैं। इसी सम्बन्ध में उन्होंने भी सभा की व्यवस्था की है, जिस में वे स्वयं एक बहुत ज़ोरदार भाषण देने जा रहे हैं। इस बात की पूर्ण सम्भावना है कि उन्हें सभा में गिरफ़्तार कर लिया जाये। उन्होंने चेतन से अनुरोध किया कि वह उन का भाषण सुनने अवश्य आये और चलते चलते यह भी कहा कि यदि सम्भव हो तो एक आध हार जरूर खरीद कर लेता आये।

चेतन उस दिन एक अत्यन्त मनोरंजक उपन्यास पढ़ रहा था। यद्यपि उपन्यास को बीच ही में छोड़ कर जाना उसे बड़ा अप्रिय लगता था, तो भी भाई साहब का अनुरोध था और फिर इस बात की आशंका भी थी कि जाने वे उस दिन पकड़ लिये जायँ और जाने कितने वर्षों के लिए जेल की कोठरी में ठूंस दिये जायँ। इस लिए पुस्तक को हाथ ही में लिए हुए वह चल पड़ा और भाई साहब की इच्छानुसार उसने रास्ते में फूलों का एक हार भी खरीद लिया।

जब वह चौक इमाम-नासरुद्दीन में पहुँचा तो सभा प्रारम्भ हो चुकी थी। वह एक ओर खड़ा हो गया। उस ने देखा कि ड्राइंग और ड्राइक्लीनिंग के विशेषज्ञ, राष्ट्रीय-कवि सभापति के आसन की शोभा बढ़ा रहे हैं और भाई साहब एक समाचार पत्र से किसी नेता का वक्तव्य पढ़ रहे हैं। इसी को शायद वे भाषण देना कहते थे। चेतन ने देखा कि उनके हाथ काँप रहे हैं, उन की टाँगे काँप रही है, यहाँ तक कि तख़्त और उस पर रखी हुई मेज़ भी कांप रही है।

तभी एक ओर से जनता उठ खड़ी हुई और 'पोलीस' 'पोलीस' का शोर मच गया। इस भगदड़ में चेतन हाथ में हार लिये हुए समीप ही खड़ी एक बैलगाड़ी पर चढ़ गया। दूसरे क्षण उसे पता चला कि जिसे लोग पुलिस समझते थे, वह तो एक भयभीत सांड है। न जाने किस

पाजी ने उसे सभा की ओर भगा दिया था। कभी वह डर कर एक ओर जाता, कभी दूसरी ओर, किन्तु जब साँड़ भय की सीमा पार कर, निर्भीक हो गया तो श्रोताओं ने, जो भाषण सुनने की अपेक्षा यह तमाशा देखने लगे थे, उसे रास्ता दे दिया। लोग फिर इकट्ठे होने लगे। चेतन भी बैलगाड़ी से उतर कर सभा के मध्य रखे हुए तख्त की ओर बढ़ा। उस समय उसने देखा कि वहाँ न सभापति महाशय हैं और न वक्ता महोदय और लोग मंच पर चढ़ कर हुल्लड़ मचा रहे हैं ...

जब चेतन घर पहुंचा तो उसे पता चला कि वक्ता महोदय तो उस से कहीं पहले घर पहुंच गये हैं और बड़े आराम से खुर्राटे भी ले रहे हैं। सभापति महाराज उसके पश्चात् महीनों जालंधर में दिखाई नहीं दिये। वे दोआबा के गाँवों में भागते, छिपते और अपनी राष्ट्रीय कविताएँ सुना कर देहातियों का आतिथ्य स्वीकार करते, यह कहते फिरे कि उनकी गिरफ्तारी के वारण्ट निकले हुए हैं और वे पुलिस को छकाते हुए अपने राजनीतिक कार्य को जारी रखे हुए हैं।

एक लम्बी अवधि के पश्चात् होशयारपुर की एक नयी लाँडरी का विज्ञापन चेतन के हाथ लगा जिसकी प्रशंसा में वही बैत छपे थे, जो कभी राष्ट्रीय-कवि ने 'भारत लाँडरी वर्क्स' की प्रशंसा में लिखे थे।

दूसरे दिन जब भाई साहब उठे तो लाँडरी की तरह काँग्रेस की डिक्टेटरी भी उनके मस्तिष्क से विलुप्त हो गई थी और क्योंकि ग्रीष्म ऋतु आ गई थी, इस लिए भाई साहब ने सरदार नन्दासिंह सोडावाटर वाले की दुकान को अपना अड्डा बनाने का निश्चय कर लिया था।

—o—

६

अपने बड़े भाई की प्रकृति के इस पक्ष पर विचार करता हुआ चेतन जब 'बाजियाँ वाला बाज़ार' में पहुंचा तो उसने देखा कि उसके भाई पंडित बनारसी दास की दुकान पर चन्द बेफ़िक्रों के साथ ताश खेल रहे हैं। चेतन चुपचाप दुकान के तख्ते पर जा खड़ा हुआ। बाज़ी शुरू हो चुकी थी और वे बड़ी तन्ममयता से पत्ते लगा रहे थे। उस समय उनकी आकृति पर कुछ ऐसी गम्भीरता विद्यमान थी जो अपनी सेना की व्यूह-रचना करते समय नायक की आकृति पर होती है। पत्ते लगाने के बाद उन्होंने कनखियों से अपने इर्द गिर्द बैठे हुए खिलाड़ियों पर एक नज़र डाली, फिर देर से उकड़ूँ बैठे रहने के कारण थकी हुई अपनी टांगों को पसार कर ज़रा सीधा किया और फिर पत्तों को छिपाते हुए उसी प्रकार जम कर बैठ गये।

तभी पंडित बनारसी दास ने एक थकी हुई हँसी के साथ कहा, "बस अब इस पर टिकट* लगाकर ख़त्म करो।"

इशारा पत्ते बाटने वाले की ओर था।

चेतन के बड़े भाई ने कहा, "भगवान ने चाहा तो इस बार टिकट बस लग ही जायगी!" और फिर अपने पत्तों पर एक उल्लास भरी दृष्टि डाल कर अपने सामने बैठे हुए साथी को आदेश दिया। "मांगो

*जब एक व्यक्ति [illegible] पत्ते बाँटता रहे यहाँ तक कि उस पर सौ तक नम्बर हो जायँ, तो उस पर टिकट लग जाती है—पंजाब के ताश खेलने वालों की भाषा में! कभी कभी उसे 'बाद शाह' की उपाधि भी दे दी जाती है। टिकट लगने के बाद उस का दूसरा साथी [illegible] बाँटने लगता है।

भी अब जल्दी कि सारी उम्र पत्ते ही लगाते रहोगे !"

धीमी आवाज में साथी ने कहा, "सात !

तब दूसरे ने कहा, "आठ!"

लेकिन उन से भी बढ़ कर, जैसे उछल कर, चेतन के भाई ने कहा, "ग्यारह" ! और फिर इस बात की प्रतीक्षा किये बिना कि चौथे को भी कुछ बोलना है, उन्हों ने कहा, "रंग पान" और पत्ता फेंक दिया।

चुपचाप दुकान के तख्ते पर खड़ा चेतन सोचने लगा, 'ये लोग कैसे इस फ़िज़ूल के खेल में समय नष्ट कर सकते हैं ? कोई काम नहीं, काज नहीं, आशा नहीं, आकांक्षा नहीं। बस, किसी तरह समय को ज़िबह किये जाते हैं' ! एक दयाभरी दृष्टि उस ने उन सब पर डाली। चारों खिलाड़ी तन्मय होकर भूत-भविष्य की चिन्ताओं को भुला कर खेल में निमग्न थे। उन को भी चेतन ने देखा जो खेल को देख कर ही खेलने वालों से अधिक रस पा रहे थे। उन्हीं में सब से अधिक दिलचस्पी लेने वाले थे स्वयं दुकान के मालिक पं० बनारसी दास !

वहीं खड़े खड़े उस व्यक्ति का सारा जीवन चेतन के सामने घूम गया। उन के दादा का चित्र भी उस के सामने आया। पतला दुबला शरीर, रामरत्न नाम। इसी दुकान में जहाँ खेल जमता है, वे नोन-तेल बेचा करते थे। पर नोन-तेल बेचने से ज्यादा वे मुहल्ले के रोगियों का इलाज किया करते थे। उन के नुसखे अचूक होते। प्रायः मरणासन्न रोगी भी एक बार उठकर बैठ जाता। इस के अतिरिक्त वे मुहल्ले के बच्चों को गणित के प्रश्न भी समझाया करते थे। उन्हें आँख से कुछ अधिक दिखाई न देता था। चेतन को स्वयं उनका वह आँखों के पास स्लेट लेजाकर, एक आँख को प्रायः बन्द करके, गणित के प्रश्न समझाना याद था।

पं० बनारसी दास के बचपन ही में उन के पिता परलोक सिधार

गये थे। उन की मां को पं० रामरत्न ने घर से निकाल दिया था।

हिन्दू विधवा का जीवन आज भी उतना सुगम नहीं, पर तब तो बाघों से घिरी असहाय मृगी के समान था। ससुराल में किसी प्रकार का स्थान न होने के कारण, प्रायः विधवा को किसी देवर जेठ या ऐसे ही किसी रिश्तेदार के आश्रय में रहना पड़ता था। और इस आश्रय का मूल्य भी उसे भरपूर चुकाना पड़ता था। पंडित बनारसी दास की मां के साथ भी वही हुआ जो दूसरी अनेक विधवाओं के साथ होता था। पर पंडित रामरत्न को जब मालूम हुआ कि उन की बहू अपने सतीत्व को नहीं निभा सकी तो एक रात जब मुहल्ले वाले सुख की नींद सो रहे थे, वे उसे उसके मायके का किराया देकर चुपचाप स्टेशन पर छोड़ आये।

मातृ-पितृ-स्नेह तथा भय-विहीन पं० बनारसी दास जल्द ही उन सब गुणों से सम्पन्न हो गये, जिन्हें बे-मां-बाप के बच्चे शीघ्र ही ग्रहण कर लेते हैं। यही कारण है कि दो-दो तीन-तीन वर्ष में दादा के यत्नों से छोटे दर्जे पास करके जब वे दसवें दर्जे तक पहुंचे तो उन्होंने वहीं डेरा डाल दिया।

पंडित रामरत्न ने भरसक प्रयत्न किया कि किसी तरह वे अपने इस 'योग्य' पोते को मैट्रिक पास करा के, उसे कहीं खाते कमाते देखकर, मरें पर उन की यह लालसा मन ही मन में रही। चौथे वर्ष फिर मैट्रिक में फेल होने पर जब पंडित बनारसी दास अपने दादा की रही सही पूंजी लेकर चम्पत हो गये, तो उसी फ़िराक में पं० रामरत्न ने प्राण त्याग दिये।

इस के बाद जब तक पूंजी रही पंडित बनारसी दास खूब घूमते रहे, पर जब वह सब खत्म हो गई तो फिर वापस आ गये और अपने दादा की उस दुकान का जीर्णोद्धार करके उस पर जम कर बैठ गये। पुरखों में से किसी ने नौकरी जैसा निकृष्ट काम न किया तो फिर वे ही क्यों

करते ! दादा नोन तेल बेचते थे, उन्होंने इन सब झंझटों से छुट्टी पाकर रुई और सूत का काम शुरू कर दिया। कौन दो-दो पैसे की चीज़ें तोलता फिरे। एक दो देहाती फँस जाते तो उतनी बचत निकल आती जितनी उन के दादा को दिन भर तराज़ू से जूझ कर प्राप्त न होती। फिर पं० बनारसी दास दो दिन कमाते तो चार दिन बैठ कर खाते। जिस दिन चार मित्र न आते उस दिन खोये खोये से दुकान पर बैठे रहते, फिर स्वयं ही उठ कर उन्हें इकट्ठा कर लाते। शादी तो इस हालत में क्या होती, रहा रोटी का प्रश्न तो उस के लिए यार-बाश मौजूद थे। कभी कभी खुद भी दो रोटियाँ सेंक लेते। जब और कोई डौल न होता तो सेर दो सेर दूध पीकर पड़ रहते।

"यह भी कोई जीवन है।" और निमिष भर के लिए चेतन के सामने अपनी आकांक्षाएं घूम गईं—"कीड़े!"—उस ने मन ही मन उपेक्षा से कहा, "किसी दिन योंही मौत के मुँह में जा पड़ेंगे।"

तभी उस ने देखा, उस के बड़े भाई अपने एक प्रतिपक्षी के साथ गुत्थम-गुत्था हो रहे हैं। चेतन का ध्यान उधर नहीं था। बात यह हुई कि उन के एक प्रतिपक्षी ने रंग का पत्ता छिपा लिया। लेकिन चेतन के भाई को धोखा देना आसान न था, एक थप्पड़ उस के मुँह पर जमाते और गाली देते हुए उन्होंने कहा, "यह पत्ता कब का अपनी माँ के पास छिपा रखा था?"

एक तो तीन चार घंटे से पीसते रहने का दुःख, दूसरे चालाकी के पकड़े जाने का गुस्सा, तीसरे थप्पड़ की चोट, चौथे गाली......उस ने थप्पड़ के जवाब में तान कर घूंसा दे मारा और दोनों गुत्थम-गुत्था हो गये। इस से पहले कि दूसरा कोई उन की मदद करता, रुई तोलने के बाटों से दोनों के सिर फट चुके थे। चेतन जब चौंका तो उस ने देखा कि एक को पं० बनारसी दास ने पकड़ रखा है और दूसरे को

किन्तु सम्पन्नता और विपन्नता में कम ही बनती है और पं० मुन्शीराम और उन के भाई में भी कभी नहीं बनी। एक को अपनी सम्पन्नता का गर्व था, दूसरे को अपनी विपन्नता का अभिमान। पं० गिरधारीलाल की पत्नी मर गई थी, इस लिए उन के लड़के लड़कियों ने लड़ना झगड़ना और अपने अहंकार में रत रहना खूब सीख लिया था। इन्हीं पं० गिरधारीलाल की बड़ी लड़की चम्पवती से चेतन के बड़े भाई रामानन्द का विवाह हुआ तो उन के घर की कलह श्रीमती चम्पावती द्वारा इस घर में भी चली आई। चम्पावती ने अपने घर में माँ और चची में, माँ और बड़ी भावज में नित झगड़ा होते देखा था और जब दोनों भाई अलग हो गये और माँ भी परलोक सिधार गई तो उस के पद-चिन्हों पर चलने को अपना परम कर्तव्य मान कर श्रीमती चम्पावती ने अपनी बड़ी भावज की सास की अनुपस्थिति खटकने न दी थी। वह सब होते हुए कैसे सम्भव था कि वह अपनी ससुराल में शान्ति का अखण्ड राज्य रहने देती। वह तो आते ही अलग हो जाती पर दुर्भाग्य से श्री रामानन्द काम के नाम पर सिर्फ़ ताश और शतरंज खेलना जानते थे और अपनी सुपत्नी की डांट-डपट, रोने-पीटने तथा रूठने का उस धीर वीर युवक पर कुछ प्रभाव न पड़ता था।

जब चेतन की भाभी ने अपने पति के फटे हुए सिर और लोहू में लथपथ कपड़ों की ओर कोई ध्यान न दिया तो चेतन के भाई पहली बार डरे। तब भीतर चलने ही में उन्होंने अपनी कुशल समझी। झगड़े का सिलसिला टूटा देख चेतन ने माँ से कहा कि खाना परोस दो, मैं नीचे बैठक ही में जाकर खा लूँगा। और झटपट वह थाली लेकर वहाँ से निकल गया :

नीचे बैठक में जाकर खाना खाने के बाद चेतन ने पानी

बाहर कुएँ ही से पी लिया। ऊपर जाना उसे उचित नहीं लगा फिर जैसे निश्चिन्त होकर वह माँ के आदेशानुसार बस्ती ग़ज़ां के पं० दीनबन्धु को चिट्ठी लिखने लगा। ऊपर होने वाले झगड़े का स्वर उस की तन्मयता को भंग न करे, इस विचार से उस ने किवाड़ भी लगा लिये और कलम दवात लेकर बड़े इतमीनान के साथ बैठ गया।

तब ऊपर उठने वाले तूफ़ान ने कितना ज़ोर पकड़ा, कितने बादल गरजे, कितना पानी बरसा, यह सब उसे मालूम नहीं हुआ। कभी कभी बंद किवाड़ों को भेद कर आने वाले भावज के कर्कश स्वर से उसे तूफ़ान के पूरे ज़ोरों पर होने का आभास मिल जाता था।

कलम दवात ले बैठने पर भी वह चिट्ठी न लिख सका, क्योंकि चिट्ठी लिखना और खाना खाना दोनों एक सी बातें न थीं, और फिर उस समय जब कि ऊपर तूफ़ान उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता था। तभी जब वह हैरान था कि क्या करे और क्या न करे, उसे बाहर किसी अपरिचित कंठ की आवाज़ सुनाई दी—"रामानन्द, रामानन्द !"

कोई आगन्तुक उसके भाई का नाम लेकर पुकार रहा था।

वह क्षण भर रुका. किसी ने फिर बैठक के किवाड़ खटखटाये। उठ कर उस ने दरवाज़ा खोला। देखा—पतले छरहरे शरीर, लम्बी नाक, छोटी ठोड़ी और गोरे रंग का एक युवक नफ़ीस सूट पहने खड़ा है।

"रामानन्द है ?" उस ने पूछा।

"जी, हैं।"

"कहना हुनर आया है।"

"हुनर साहब ?"

"हाँ।"

और जैसे निमिष-मात्र के लिए आगन्तुक को आँखों से पीकर चेतन भागता हुआ सा ऊपर पहुँचा और जाकर भाई को बड़े उत्साह से उस ने

यह समाचार दिया कि हुनर साहब आये हैं।

उस समय उस के भाई चुपचाप चारपाई पर लेटे थे, भावज शायद मायके का सामान तैयार कर के आँखों में अंगारे लिये मेज़ के एक कोने पर बैठी थीं और माँ एक पीढ़ी पर बैठी रो रही थीं।

"हुनर!" चेतन के भाई उछल कर उठे। अपने उस मित्र के आगमन को जैसे दैवी सहायता जान कर उस झगड़े से अपना दामन बचा, वे सीढ़ियों की ओर लपके।

माँ ने कहा, "खाना तो खाते जाओ।"

"मैं आज खाना नहीं खाऊँगा," यह कहते हुए वे जल्दी जल्दी सीढ़ियाँ उतर गये।

तब उन की पत्नी ने चीख़ कर क्या कहा वह सब उन्हों ने नहीं सुना।

—०—

या ।

तार इस मतलब का आया है मुझे भूपाल से
रात भर भैंसे की दुम हिलती रही भूंचाल से

ये और ऐसे कितने ही उनके शेर* चेतन ने अपने भाई से सुनकर याद कर रखे थे। तब उसे क्या मालूम था कि ये हुनर साहब के नहीं, बल्कि हास्य-रस के एक और प्रख्यात कवि के हैं।

लाहौर के एक प्रसिद्ध दैनिक पत्र के सम्पादन-विभाग में हुनर साहब काम करते थे। चेतन की बड़ी भारी आकांक्षा थी कि वह भी किसी समाचार पत्र का सम्पादक बने। कई बार सपनों में अपने आप को सम्पादक के रूप में देख कर वह प्रसन्न भी हो चुका था। इसीलिए हुनर साहब के प्रति उसके मन में वही भाव था जो किसी महान व्यक्ति के दर्शनार्थ आने वाले श्रद्धालु के मन में होता है। हुनर साहब की बातें, उनकी आकृति, उनकी वेशभूषा; उनका सभी कुछ उसे साधारण लोगों से कुछ भिन्न जान पड़ा।

तीनों एम्प्रेस गार्डन की ओर जा रहे थे। हुनर साहब लाहौर की दिलचस्पियों का ज़िक्र कर रहे थे—वहाँ के मुशायरे, वहाँ की सम्पादक-मंडली, वहाँ की मजलिसें—और चेतन मुग्ध सा सुन रहा था। उसके भाई साहब भी प्रभावित थे, किन्तु हुनर साहब ताश या शतरञ्ज के तो चैम्पियन थे नहीं, इसलिए उनके भाग्य से चेतन के भाई साहब

---

*शेर—इसका उच्चारण उस 'शेर' की तरह नहीं होता जिसका अर्थ सिंह होता है बल्कि इसकी 'ए' में उर्दू 'ऐन' होती है और 'शे' कहने में तालू पर ज़ोर देना पड़ता है। दोहे की तरह दो पंक्तियों की कविता को शेर कहते हैं। उर्दू गज़ल में पृथक पृथक कई शेर होते हैं।

को कोई ईर्षा न थी, पर चेतन की श्रद्धा का तो जैसे वारपार न था। उसकी दृष्टि तो उनके मुख से हटती ही न थी। उस चेहरे की एक एक भंगिमा उसके मन पर अंकित हो रही थी और हुनर साहब की बातें उसके कानों से होकर सीधे उसके हृदय में स्थान बना रही थीं। उसके मस्तिष्क में लाहौर का वातावरण अपनी समस्त विभिन्नता और मनोरञ्जकता के साथ घूस जाता और अपने सीमीति क्षेत्र का विचार करके उसका दम घुटने सा लगता।

सम्पादक और अध्यापक में कितना अन्तर है? वह सोचता— सम्पादक कलम का सम्राट है। चाहे तो साम्राज्य बना दे, चाहे तो बिगाड़ दे। वह बड़े से बड़े व्यक्ति तक की आलोचना बड़ी निर्भीकता से कर सकता है (चेतन को तब यह मालूम न था कि पूंजीवादी युग में समाचार पत्र ही नहीं खरीदे जाते, उनके सम्पादक और कई बार मालिक तक भी खरीदे जा सकते हैं।) और अध्यापक—चेतन के सामने घूम गया छुट्टी का दृश्य। लड़के घण्टी बजते ही घरों को भाग जाते और दिन भर माथा-पच्ची करने के बाद थके हारे अध्यापक इस बात की प्रतीक्षा किया करते कि हेडमास्टर साहब आ जायँ तो उन्हें नमस्कार करके घर जायँ। हेडमास्टर साहब कई बार अपनी क्लास को छुट्टी के बाद भी कितनी देर तक न छोड़ते थे—चेतन को भूख लग लग कर मिट जाया करती थी। और किसी प्राइवेट संस्था का अध्यापक तब चेतन की दृष्टि में सब से बड़ा गुलाम था और सम्पादक सबसे अधिक स्वच्छन्द और स्वतन्त्र!

तीनों जाकर एक लॉन में बैठ गये। एक भिश्ती सामने टाउन हाल की सीढ़ियों पर रखे हुए गमलों को पानी दे रहा था। लॉन में एक ओर कुछ छोटे बच्चे कबड्डी खेल रहे थे। दूसरी ओर कुछ मनचलों में बैतबाजी हो रही थी। लॉन के साथ एक वीथी पर दो तीन

सुन्दर पढ़ी लिखी लड़कियां अपने परिवार के साथ चहल-क़दमी कर रही थीं। उसी वीथी के बराबर एक बेंच पर शलवार और कमीज़ पहने एक अत्यन्त सुन्दर, सम्पन्न, पर अशिक्षित युवक अपने कुत्ते को लिये हुए अपनी भाव भंगिमा से अपने आप को पूर्ण रूप से शिक्षित दर्शाने का उपक्रम कर रहा था। किन्तु उसकी प्रत्येक भावभंगी, उसके गले का खुला बटन, उस के बालों की काट, उस की शलवार का फुलाव, उसके निपट निरक्षर होने का पता देता था।

तब हुनर साहब ने धीमे स्वर में गाकर एक शेर सुनाया।

फिर एक तक़दीर कर रहा हूँ, ख़िलाफ़े तक़दीर कर रहा हूँ
फिर एक तदबीर कर रहा हूँ, ख़ुदा अगर कामयाब कर दे

और कहने लगे, यह हफ़ीज का शेर है—जालन्धर के मशहूर कवि हफ़ीज़ का, और उन्हें इस की कला पर नाज़ है। शिमले के एक मुशायरे में हम सब को बुलाया गया था। रिज के ऊपर डेविको बालरूम में सम्मेलन होने वाला था। मिडल बाज़ार के एक मुस्लिम होटल में हम ठहरे थे। वहीं हफ़ीज़ ने यह शेर लिख कर सुनाया। सब सिर धुनने लगे। तब मैंने अपने एक शागिर्द 'साहिर' को एक शेर लिख कर दिया। इत्तफ़ाक देखिए, उस की बारी पहले आ गई। उसने वह शेर पढ़ा तो लोग कुर्सियों से उछल पड़े। वह दाद मिली की हफ़ीज़ साहब का मुँह ज़रा सा निकल आया। जब उनकी बारी आई तो उन्होंने अपना शेर पढ़ा ही नहीं।

चेतन ने उत्सुकता से कहा, "कृपया अपना वह शेर सुनाइए!"

गर्व के साथ सिर उठाकर हुनर साहब ने शेर सुनाया।

मैं अपनी तकदीर का हूँ कायल, हरीफ़ तदबीर पर है मायल
ख़ुदा के दर पर हैं दोनों सायल, जिसे ख़ुदा कामयाब कर दे

और उछल कर चेतन ने कहा, "वाह तक़दीर का कायल होना तो यही है, 'जिसे ख़ुदा कामयाब कर दे'। 'जिसे' ने यह बात पैदा कर दी है कि वाह क्या कहने हैं !"

उस समय चेतन को क्या मालूम था कि जिस शेर पर वह सिर धुन रहा है वह तो किसी दूसरे मस्तिष्क की उपज है और हुनर साहब को तो वह कहानी गढ़ने की ही दाद दी जा सकती है। लेकिन तब चेतन के हृदय में श्रद्धा का अगाध समुद्र कहीं से उमड़ पड़ा और उसका जी चाहा कि हुनर साहब के चरण चूम ले।

इसके बाद हुनर साहब ने 'जिगर मुरादाबादी' और 'फ़ानी बदायूनी' की पूरी की पूरी ग़ज़लें अपने नाम से सुना डालीं। पर इसे जालन्धर की सीमित दुनिया में रहने वाला, आर्य्य-समाजी कालेज में बी० ए० तक हिन्दी पढ़ने वाला चेतन क्या जानता—विशेषकर उस समय जब उस का उर्दू शायरी का ज्ञान केवल दो चार स्थानीय मुशायरों में सुनी हुई ग़ज़लों तक ही सीमित था।

रात को हुनर साहब के घर पर मजलिस जमी। वे अपने बहनोई साहब के यहां ठहरे थे। शेर पर शेर, ग़ज़ल पर ग़ज़ल सुनाते जाते थे। शेर उन की ज़बान से ऐसे निकले पड़ते थे, जैसे वर्षा-ऋतु में अनायास ही पहाड़ पर झरने फूट पड़ते हैं। उन का मस्तिष्क काव्य का एक समुद्र था, जिसकी ऊर्म्मियां असंख्य और अगनित थीं।

चेतन के मन में कभी कभी यह सन्देह अवश्य सिर उठाता कि इतनी सी आयु में उन्होंने इतनी ग़ज़लें कैसे कह डालीं और इतना कुछ कहने पर भी उन का कोई संग्रह क्यों नहीं छपा। पर प्रायः प्रत्येक ग़ज़ल के साथ किसी न किसी कवि-सम्मेलन की जो एक कहानी हुनर साहब सुनाते थे, उसके कारण वह सन्देह ज़ोर न पकड़ पाता और

संग्रह के बारे में जब उस ने झिझकते हुए प्रश्न किया तो उन्होंने कहा कि प्रकाशक तो दयानतदार मिलते नहीं, फिर कोई संग्रह छपवाये भी तो कैसे और क्यों ?

अन्त में एक बजे के लगभग हुनर साहब ने अपनी एक कहानी सुनानी शुरू की, जो उन्होंने हाल ही में लिखी थी। तब चेतन के बड़े भाई जम्हाइयां लेने लगे। दिल ही दिल में अपने इस असाहित्यिक भाई को उन की अरसिकता पर कोसते हुए चेतन ने हुनर साहब से स्वयं अपनी आरम्भिक कोशिशों का ज़िक्र किया और सकुचाते हुए अपने दो एक शेर भी सुनाये और कहा कि कहानी लिखने में उस की रुचि अधिक है।

"तुम कहीं लाहौर होते"—हुनर साहब ने चेतन का उत्साह बढ़ाते हुए कहा, "ऐसी प्रतिभा है तुम में कि कुछ ही दिनों में चमक उठते।"

भाई साहब की जम्हाइयां उत्तरोत्तर बढ़ रही थीं। इसलिए चेतन ने छुट्टी ली और मन ही मन हुनर साहब को अपना गुरु मान लिया और निश्चय कर लिया कि जैसे भी हो वह लाहौर जाकर दम लेगा। जालन्धर में तो उस की प्रतिभा का अंकुर सूख कर रह जायगा। लाहौर में यदि अनुकूल जलवायु मिल गया तो न जाने वह महान विटप बन जाय।

घर आकर उस ने सब से पहले उन पं० दीनबन्धु को चिट्ठी लिखी कि वह लाहौर अवश्य जायगा। विवाह का जुआ वह अपने गले में नहीं डालना चाहता। उस ने लिखा कि वह उन्हें धोखा नहीं देना चाहता। उस की आकांक्षाएँ बड़ी हैं। उस के रोज़गार का भी कोई भरोसा नहीं। उन को या उनकी लड़की को व्यर्थ का कष्ट होगा। और उस ने यह भी लिख दिया कि वें अब उस के पिता के पास जेजों जाने का कष्ट न करें। मन ही मन उस ने यह फैसला भी कर लिया कि दूसरे दिन सुबह ही वह चिट्ठी डाल देगा।

९

दूसरे दिन चेतन अपने बड़े भाई को बताये बिना हुनर साहब को स्टेशन पर छोड़ आया और उस प्रोत्साहन के बदले में, जो उस के इस नये गुरु ने उसे दिया था, पांच रुपये का एक अकिंचन सा नोट भी उन्हें भेंट कर आया।

बात यह थी कि स्टेशन पर जाकर हुनर साहब को अचानक मालूम हुआ कि उन का बटुआ घर ही पर रह गया है। वे वापस चलने को तैयार हो गये थे। पर चेतन की श्रद्धा को गवारा न हुआ कि वे पांच रुपये के लिए वह गाड़ी छोड़ दें, जिस पर जाना उन के कथनानुसार उन के लिए अत्यन्त आवश्यक था।

जब वह स्टेशन से घर वापस आया तो घर के बाहर मुहल्ले ही में उस 'लेक्चर' को सुन कर जो उस के भाई को ऊपर पिलाया जा रहा था, और उन 'मृदु वचनों' से जो एक पुंसत्व भरी आवाज़ में उन पर निरन्तर बरसाये जा रहे थे, चेतन ने जान लिया कि उस के पिता आ गये हैं।

अपने पिता के प्रति चेतन के मन में सदैव एक भय सा वर्तमान रहता था। जब वे अपने जाने धीमे स्वर में बात कर रहे होते तो दूर से ऐसा लगता जैसे लड़ रहे हैं—'मां पेउ दिया गालां, दुद्ध घेउ दिया नालां*—पंजाबी भाषा की इस कहावत को वे सर्वथा सत्य मानते थे। इसलिए पुत्रों से बातें करते समय वे उन्हें निरन्तर दूध घी के ये घूंट पिलाते रहते थे।

---

*मां-बाप की गालियां दूध-घी के घूँट !

हुनर साहब को गाड़ी पर सवार कराने में चेतन को देर हो गई थी पिता की आवाज़ सुनकर चेतन का माथा ठनका ! उस ने कोशिश की कि चुपचाप नीचे अपने कमरे में जाकर कपड़े बदल ले और स्कूल चला जाय। स्नान वह सुबह ही कर गया था। उस ने सोचा कि खाना स्कूल जाकर खा लेगा और चुपचाप आँगन से होकर वह अपने कमरे में चला गया। शलवार, कमीज़ और कोट पहन वह पगड़ी बाँधने ही लगा था कि जल्दी में शीशा उस के हाथ से गिर पड़ा और उसे आया जान कर उस के पिता ने आवाज़ दे दी।

उन की आवाज़ सुनकर चेतन बिना पगड़ी बांधे ऊपर चला गया। आँगन में दीवार के साथ लगी चारपाई पर चेतन के पिता बैठे थे। पीठ उन की दीवार से लगी थी पगड़ी उन की बग़ल में थी और कमीज़ के बटन खुले होने के कारण उनके विशाल सीने के कुछ सफेद बाल दिखाई देते थे। चेतन ने देखा उन के सिर और मूंछों के सब बाल सफेद हो गये हैं, किन्तु इससे उनके चेहरे का रोब और उन छोटी आँखों की कठोरता कुछ भी कम नहीं हुई और न उन की आवाज़ के तीखेपन में ही कमी आई है।

"कहाँ गये हुए थे ?"

उसके पिता ने इस प्रकार चेतन की ओर देखा जैसे वह पाँच छः वर्ष का बच्चा हो जिसे झिड़कना और डांटना अत्यन्त आवश्यक हो।

चेतन के कानों में अपने पिता का यह प्रश्न गूंज गया। उस से उत्तर तुरन्त न बन पड़ा। बात यह है कि छात्र से अध्यापक हो जाने में चेतन अपने बड़प्पन का जो गर्व अनुभव करता था, वह दो अवसरों पर उस का साथ छोड़ देता था—एक तो जब वह अपने किसी लाहौर से डिग्री पाये हुए मित्र से मिलता और दूसरे जब वह अपने आप को अपने पिता के सामने पाता।

ओर लगी हुई टोंटियों से नहाने या दूसरी ओर लगी पत्थर की सिल पर कपड़े धोने या फिर मुहल्ले के चौक में खूंटों से बँधी हुई गायों, भैंसों या उन्हें छोड़ने वाले या उनके द्वारा उठाकर फेंक दिये जाने वाले बच्चों पर; दीवारों पर; उपले पाथने या उन उपलों को चुराकर ले जाने वालों पर; किवाड़ों के आगे घर का कूड़ा करकट फेंकने या उस कूड़े करकट के फैलाये जाने पर और यदि कुछ नहीं तो योंही वे बात की बात पर प्रायः लड़ाई झगड़ा हुआ करता था।

मुहल्ले में सदियों से क्षत्रिय ब्राह्मण बसते आये थे और जब से ब्राह्मणों को अपने आत्म-सम्मान का आभास होने लगा था (दूसरे शब्दों में जब से कुछ ब्राह्मण युवक पढ़ लिख कर अच्छे पदों पर नियुक्त हो गये थे और ब्राह्मण-वृत्ति को घृणा की दृष्टि से देखने लगे थे) इन दोनों जातियों के मध्य एक प्रकार का वैमनस्य भी आरम्भ हो गया था। इसके अतिरिक्त मुहल्ले में कुछ सुनार कुटुम्ब भी आकर बस गये थे। उनकी स्त्रियाँ लड़ाई की कला में विशेषतया निपुण थीं और 'कला कला के लिए है' इस सिद्धान्त में पूरा विश्वास रखती हुई, कला की साधना मात्र के लिए लड़ा करती थीं।

मुहल्ले में जो घराना अधिक सम्पन्न हो जाता, वह लाहौर, अमृतसर अथवा किसी दूसरे बड़े शहर या जालंधर ही के बाहर कोठियों में चला जाता और शेष मुहल्ला अपने उसी लड़ाई-झगड़े, उसी संकुचित वातावरण को लिये हुए पड़ा रहता।

किंतु रोज़ की बात होने पर भी लड़ाई में कुछ ऐसा आकर्षण है कि आदमी अनायास ही अपना काम छोड़ कर उसे देखने लगता है। इस कोलाहल को सुनकर चेतन के पिता और उसके बड़े भाई अचानक उठ कर बैठक में चले गये, और माँ रसोई-घर की खिड़की में जा खड़ी हुई।

चेतन ने अवसर उपयुक्त समझा। स्कूल जाने में पहले ही देर हो गई थी और हेडमास्टर की झिड़कियों का भी उसे डर था, इसलिए वह नीचे को भागा। पगड़ी बाँधना भी उस ने उचित न समझा। खूंटी से टोपी उतार कर सिर पर रखी और चल पड़ा।

बाहर मुहल्ले में खूब लड़ाई हो रही थी। एक ओर अपने मकान की ऊँची खिड़की में बैठी, तीन सम्पन्न पति-विहीना बेटियों वाली धनी विधवा चौधरायन माथे से पसीने को पोंछती हुई नयी नयी गालियों से मुहल्ले की स्त्रियों के कोष भर रही थी। दूसरी ओर ब्राह्मणी जीवी पल्ला पसार कर परमात्मा से, न जाने कैसे शब्दों में, उस के कुटुम्ब की शेष सधवाओं के भी विधवा होने की भयंकर प्रार्थनाएँ कर रही थी। लोग पानी भरना भूल कर उन्हें देखने में व्यस्त थे।

तभी ज्वाली महरी ने अपनी लड़की को कोसते हुए कहा कि वह उधर क्या तकने लगी है, "इन का तो काम ही दिन रात लड़ना है" वह बोली, "घर मे पुरुषों से लड़ती हैं, बाहर पड़ोसियों से!" और उसे डाँटा कि उस के साथ घड़ा जल्दी खिचवाये।

ज्वाली का यह कहना था कि ब्राह्मणी जीवी ने अपनी प्रार्थना के क्षेत्र को विस्तार देने की ठान ली और उस महरी और उस के कुटुम्ब को भी दिल खोल कर 'मधुर वचन' सुनाने में संकोच नहीं किया। इस पर ज्वाली ने घड़े को वहीं छोड़, कृतज्ञता के रूप में उसे कुछ नयी तरह के 'मीठे शब्द' सुनाना अपना कर्त्तव्य समझा। उस की लड़की ने सुख की साँस ली और न केवल यह चाहा कि उस की माँ ही इस वाक-युद्ध में सफल हो, बल्कि उस ने कई बार स्वयं भी इस में पूरा योग देने की कोशिश की। पर हर बार उस की माँ ने दायें हाथ से उसे अलग हटा दिया।

चेतन उपेक्षा की एक दृष्टि उन पशुओं की भांति लड़ने वालियों

पर डाल कर चुपचाप खिसकने लगा कि उपर बैठक के बरामदे से उस के पिता की कड़कती आवाज़ आई।

"स्कूल से सीधे घर आना!"

चेतन ने पीछे मुड़ कर "अच्छा जी" कहा और भाग चला।

रास्ते भर वह कभी अपने पिता की क्रूरता, कभी मुहल्ले वालों की अपढ़ता, कभी हुनर साहब के विशाल अनुभव और कभी अपने सीमित घेरे की बात सोचता रहा। जब उसे ख्याल आया कि उसे तो बस्ती के पं० दीनबन्धु को चिठ्ठी डालनी थी तो वह स्कूल के फाटक पर पहुँच चुका था। उसे देर हो गई थी और उसे विश्वास था कि हैडमास्टर जरूर गुस्सा होंगे और वह घबरा कर मन ही मन हैडमास्टर के प्रश्नों का उत्तर सोचने लगा।

—०—

१०

चेतन के पिता पं० शादी राम गठे हुए शरीर के पाँच फुट तीन इञ्च लम्बे रोबीले आदमी थे—गोल मुख, घुटा हुआ सिर और बड़ी बड़ी ऐंठी मूंछे जिनकी नोकें कानों तक पहुँचती थीं। आँखों में नशे के कारण लाल लाल डोरे और कड़कती हुई कर्कश आवाज़—लड़कपन ही से न केवल परले दर्जे के उद्दंड थे, वरन् पक्के शराबी भी।

चेतन के दादा पं० रूपलाल पटवारी थे। चेतन की दादी उसी समय परलोक सिधार गई थी जब चेतन के पिता केवल तीन वर्ष के थे। तब चेतन के पिता की देखभाल का सब बोझ चेतन की परदादी गंगादेई के सिर आ पड़ा था।

परदादी गंगादेई अत्यन्त पुराने और संकुचित विचारों की, सहस्रों

देवी-देवताओं, पीरों-फ़क़ीरों में विश्वास रखने वाली और पुरोहिताई को प्रत्येक ब्राह्मण का धर्म समझने वाली, उद्दण्ड और कर्कशा ब्राह्मणी थीं। उन के समय का अधिक भाग अपनी पुरोहिताई और धर्म को बनाये रखने में लग जाता था, जो बचता था उस में कुछ लड़ाई-झगड़े और पीरों फ़क़ीरों की भेंट हो जाता।

कोई त्योहार हो, परदादी गंगादेई के लिए उसमें योग देना अनिवार्य था। ठंडड़ी, बाजड़े, बाबा सोडल, दीवाली, विजय दशमी, ईद, मुहर्रम, वैसाखी, गुरुपर्व, टोला-मुहल्ला—हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, किसी भी जाति का कोई त्योहार हो—वे उस में अवश्य योग देतीं। मुहर्रम के दिनों में ताज़ियों के नीचे से गुज़र कर उन पर कौड़ियाँ चढ़ातीं, मेंहदी और घोड़ी पर शक्कर के शर्बत की सबील लगातीं और गुरुपर्व पर गुरुद्वारों में जाकर प्रसाद लेना अपना परम कर्त्तव्य समझतीं। असाढ़ के एक बृहस्पतिवार को मीरासियों को बुला कर दलिया खिलातीं, भादों में गुग्गे नवमी के दिन कथा सुनतीं। वर्ष में एक बार पंडोरी जाकर बाबा मल्ल को नज़र-न्याज़ देतीं, एक बार 'पट्टी पोसी' के झंडों वाले पीर के झंडा और 'धोबड़ी' के घड़े वाले पीर के घड़े चढ़ातीं। इसके अतिरिक्त नित्य चली आने वाली पूर्णिमाएँ, अमावस्याएँ, एकादशियाँ, द्वादशियाँ, तीजें, चौथें, सप्तमियाँ, अष्टमियाँ, साल के सब दिन कोई न कोई त्योहार लगा ही रहता। और फिर चिन्तपुरनी, ज्वाला जी, चंडिका देवी, और न जाने किस किस देवी-देवता, पीर-फ़क़ीर के दर्शन करने जातीं। इन सब झमेलों में अपने पोते की देख भाल के लिए उन्हें जितना समय मिलता होगा, उसकी कल्पना की जा सकती है।

रहे चेतन के दादा पंडित रूपलाल, सो वे भला अपने लड़के की खबरगीरी करते या पटवारीगीरी? अपने हल्के के अतिरिक्त रियासत की

लम्बाई चौड़ाई में उन्हें घूमना पड़ता था। फिर वे अपनी इस रस्मों, रिवाजों, प्रथाओं और परम्पराओं की वेड़ियों में जकड़ी, धर्मपरायणा माँ के अन्ध-भक्त थे। जो त्योहार वह मनाती, वे भी मनाते। वह जिन पीरों-फ़क़ीरों की सेवा करती, वे भी करते। जब असाढ़ महीने के एक बृहस्पतिवार को मीरासियों का न्योता होता और अपने ढोल लिये हुए 'दानी जट्टी पीर मनाया' का गीत गाते, लेरियाँ देते दिलाते और कपड़े तथा अनाज बटोरते वे साँझ को परदादी गंगादेई की ड्योढ़ी में पैर रखते तो पंडित रूपलाल भी चौदह कोस की मंज़िल मार कर, पीठ पर माता दुर्गा के स्तोत्र, नये वर्ष का पत्रा और अन्य आवश्यक कागज-पत्रों की गाँठ के अतिरिक्त कभी गेहूँ और कभी पुरानी मकई की गठरी लादे आ पहुँचते। यदि उन के आगमन से पहले ही कभी मीरासियों को दलिये की थाली परोस दी जाती तो उनके क्रोध का वारपार न रहता। कंधे की गठड़ी धरती पर रखते ही वे आसमान सिर पर उठा लेते और उनकी क्रोध भरी आवाज़ दूसरे मुहल्ले तक सुनाई देती। वे चण्डी के उपासक थे और (उन के अपने कथनानुसार) इसी के फल-स्वरूप उन के स्वर से कर्कशता और स्वभाव में क्रोध की मात्रा कुछ अधिक थी, जो उन से पं० शादीराम और फिर चेतन और उसके भाइयों को पैत्रिक-सम्पत्ति के रूप में मिली थी। किन्तु इस समस्त कर्त्तव्यपरायणता, धर्मनिष्ठा और कर्कशता के होते हुए भी उन के वक्ष में ऐसा भोला-भाला दिल था जिसे संसार के तीन पाँच की कुछ खबर न थी। उन की माँ जो कुछ कह देती, उसे ही वेद-वाक्य समझकर वे मन में रख लेते। इसलिए जब पाँचवें दर्जे ही में पोते को बोर्डिङ्ग-हाऊस में दाखिल कराने के लिए परदादी गंगादेई ने अपने इस आज्ञाकारी पुत्र को आदेश दिया तो किसी प्रकार की आनाकानी किये बिना, पंडित रूपलाल ने उसे मान लिया।

समझा था।
ादमी थे। और
. शिक्षा न दें)

घर में मँगा कर
नन्हे से गिलास में
मुखर होते देखते।
उनके बीमार होने
ने समझा कि यह
कता दिन प्रति दिन
ुशी में उन्हो ने इस
ली। देसराज बोतल
ुबो लगी। उन्हो ने
है कितनी भी क्यो न
फिर इसे न पियेंगे।
पर दूसरे ही दिन जैसे
आधी छुट्टी के समय

और उदारता ने मिल
ो हानि न पहुँचाई थी
ा दी। क्योंकि तीन वर्ष
ाम ने परीक्षा पास की
से वे पक्के शराबी

रहतीं अपने इस उद्दंड पोते के संगी साथियों और उन के घर वालों को गालियाँ देतीं। यदि किसी लड़ाई में वह सिर फोड़वा आता तो मुहल्ले वालों का दिन का चैन और रात की नींद वे हराम कर देतीं। और यदि उन का पोता किसी दूसरे का सिर फोड़ आता तो वे लोग उन्हें चैन न लेने देते।

होस्टल में आकर शादीराम और भी उद्दंड हो गये। परदादी जब भी यजमानों के यहाँ से आतीं, होस्टल में पहुँच कर अपने पोते को कुछ दिनों के लिए घर ले आतीं। शादीराम उन से यह कह कर कि होस्टल जा रहे हैं और होस्टल में यह बहाना बना कर कि घर जा रहा हूँ, जहाँ जी चाहता चले जाते। कई-कई दिन मित्रों के घर रहते। परदादी को तभी पता चलता जब वे फिर होस्टल पहुँचतीं और वहाँ शादीराम को न पातीं। तब वह अपने इस पोते के मित्रों को गालियाँ देतीं, घर घर छान डालतीं और उसे बिगाड़ने वालों के पुरखों की सात सात पीढ़ियों को घोर नरक में भेजने तक की सिफ़ारिश भी अपने समस्त देवी देवताओं से करतीं।

लेकिन परदादी के कठिन शासन के बावजूद शादीराम दूसरे ही दिन भाग जाते। वास्तव में उन्हें इस लुका-छिपी में विशेष आनन्द आने लगा था। जितना ही वे उन के पीछे भागतीं, उतना ही वे उन के हाथ न आने की कोशिश करते। इसका एक कारण शायद यह भी था कि परदादी जब भी अपने इस पोते को पकड़ पातीं, उसे कुछ कहने के बदले उस के मित्रों और मित्रों के घर वालों ही को गालियाँ देतीं।

हार कर परदादी ने आठवें दर्जे ही में पंडित शादीराम का विवाह कर दिया। इससे उन की सरगर्मियों में कमी तो क्या आती, हाँ इस विवाह की खुशी में उन्हों ने अपने घनिष्ठ मित्र देसराज के घर पहली बार मदिरा का भी रसास्वादन किया।

बात यह है कि पहले पहल उन्होंने इसे 'दवा' समझा था। देसराज के पिता रिटायर्ड सब-जज थे। खाने पीने वाले आदमी थे। और खाने पीने वाले पिताओं के पुत्र (यदि उनकी माताएँ उन्हें शिक्षा न दें) सहज ही उन के अनुकरण में खाने पीने लगते हैं।

देसराज के पिता बाज़ार शेखां में जाने के बदले घर में मँगा कर पीते थे। दोनों लड़के उन्हें रोज बोतल से शीशे के नन्हें से गिलास में उँड़ेल कर कुछ पीते और फिर सरूर में आकर कुछ मुखर होते देखते। देसराज के पिता हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ आदमी थे। उनके बीमार होने की कल्पना भी न की जा सकती थी। तब लड़कों ने समझा कि यह कोई स्वादिष्ट शक्ति-वर्द्धक औषधि है। उनकी उत्सुकता दिन प्रति दिन बढ़ती गई। आखिर शादीराम के विवाह की खुशी में उन्हों ने इस शक्ति-वर्द्धक औषधि का रसास्वादन करने की ठान ली। देसराज बोतल ले आये। दोनो ने एक घूँट पिया। अत्यन्त कड़ुवी लगी। उन्हों ने समझा कि दवा मज़ेदार नहीं है, शक्ति-वर्द्धक चाहे कितनी भी क्यों न हो। यह भी निश्चय उन्होंने कर लिया कि फिर इसे न पियेंगे। देसराज उसे वहीं की वहीं रख भी आया था। पर दूसरे ही दिन जैसे किसी पूर्व-निश्चित निर्णय के अनुसार दोनों मित्र आधी छुट्टी के समय घर आये और फिर वही एक एक घूँट!

उन की उद्दण्डता, उछृङ्खलता निर्भीकता और उदारता ने मिल कर चेतन के पिता को अपने जीवन में उतनी हानि न पहुँचाई थी जितनी इस तरल आग के रसास्वादन ने पहुँचा दी। क्योंकि तीन वर्ष मैट्रिक ही में रह कर जब चौथे वर्ष पं० शादीराम ने परीक्षा पास की तो देसराज के उन सब-जज पिता की कृपा से वे पक्के शराबी बन चुके थे।

११

रही चेतन की माँ, सो वह उन पतिव्रता स्त्रियों में से थी, जिनके मस्तिष्क धर्मशास्त्रों, पंडितों और पुरोहितों ने बुरी तरह जकड़ रखे हैं। स्वर्ग पाने के लिए ही वे पति को परमेश्वर समझती हों, यह बात नहीं। बचपन ही से उन्हें बताया जाता है कि पति अंधा, काना, लूला, लँगड़ा, निर्धन, शराबी, जुआरी—कैसा भी क्यों न हो, पत्नी के लिए वह परमेश्वर है, उसकी अवज्ञा करना महापाप है। इसलिए पतिव्रत-धर्म उन के स्वभाव का एक अंग बन जाता है।

उस के पिता पं० शिवराम मिश्र होशयारपुर में पंडिताई करते थे। उनकी पहली पत्नी चेतन की माँ को छोड़ कर तब ही मर गई थी जब वह केवल तीन वर्ष की थी। उस के पिता घर से अत्यन्त विपन्न थे। यजमान भी उन के इतने अधिक न थे। इसलिए दूसरी जगह उन का विवाह शीघ्र न हो सका था। बात तो कई जगह लगी लेकिन हमारे इन प्राचीन मुहल्लों में जहाँ जोड़ने वाले दो हैं, वहाँ तोड़ने वाले चार। इसलिए बात लगने को होकर भी कई बार टूट गई। अन्त में उस की माँ की मृत्यु के पूरे सात वर्ष बाद, जब उस के पिता एक दिन प्रकट किसी दूसरे की बारात में शामिल होने के लिए गये थे और उस के ताऊ ने उस के लिए कई तरह की चीज़ें ला देने का वादा भी किया था तो आश्चर्य-चकित बालिका ने देखा था कि विवाह से मिलने वाली मिठाई आदि की गठरी के स्थान पर वे स्वयं बहू को ही ले आये थे।

उस समय हर्ष-उल्लास और कई हैरान कर देने वाली रस्मों और

बधाइयों के मध्य उसकी बुआ ने उसके बार बार पूछने पर कहा था—"यह तेरी नयी माँ है।"

अपनी सगी माँ के सम्बन्ध में लाजवती को (यही चेतन की माँ का नाम था) कुछ अधिक ज्ञान न था। बहुत हल्का सा, जैसे युगों पहले देखे स्वप्न का सा, अपनी माँ का चित्र उसकी आँखों के सामने आया करता था। शायद पिता के रूखे व्यवहार के कारण स्नेह-विहीना लड़की की कल्पना ने उसकी माता का चित्र उसके मानस-पट पर बना दिया था। उसे कुछ ऐसा आभास था, जैसे उनके अँधेरे आंगन में, जहाँ सील का सदैव राज्य रहता था और ऊपर से खुला रहने पर भी जहाँ प्रकाश की किरणें बड़ी डरी सहमी प्रवेश करती थीं। एक खाट पर मैली सी, कहीं धर्मशांति अथवा शुद्धि में आई हुई, रज़ाई में लिपटी उसकी माँ पड़ी है—पीला ज़र्द चेहरा, पिचके कल्ले, बन्द होती सी आकांक्षा और ख़ुमार से भरी आँखें और कांपता सा हाथ जो उसने उसके सिर पर रखा था। ओंठों पर पपड़ियाँ जमी हुई थीं। उसके सिर पर प्यार का हाथ रखते हुए उन्हीं सूखे ओठों से उसने कुछ कहा भी था। पर वह सब उसे याद नहीं। यह चित्र कई बार चेतन की मां ने देखा था। उसने यह भी देखा था कि जब उसकी माँ ऐसे पड़ी थी और उसके सिर पर हाथ रखे अस्फुट स्वर में कुछ कह रही थी तो उस अँधेरे आंगन के साथ लगी, धुएँ भरी कोठरी में उसके ताऊ चाय आदि पीकर बैठे हुए अपनी कभी न दम लेने वाली गुड़गुड़ी से मन बहला रहे थे।

जब जब कष्ट, उपेक्षा, निरादर, स्नेहाभाव के कारण चेतन की माँ विह्वल हुई, अपनी माँ की यही मूर्ति उसके सामने आती रही और उस के हृदय को शांति मिलती रही।

लेकिन उसकी यह नयी माँ तो उसकी समवयस्क ही थी, बहुत

होगा तो दो एक वर्ष बड़ी होगी। देहात की होने के कारण कुछ बड़ी-बड़ी लगती थी। चौड़े-चौड़े हाथ-पाँव, खुले-खुले बेडौल अंग, लम्बी-मोटी नाक, स्वस्थ शरीर और साँवला रङ्ग! एक दम असभ्य और गँवार थी। न उसे बाल बाँधने का सहूर था न कपड़ा पहनने की तमीज़! नाम था माला (मालिन का संक्षिप्त) और वह प्रयत्न करने पर भी इस नाम के अतिरिक्त 'माँ' या 'भाभी' या 'बीबी' कहकर उसे न बुला सकी थी।

दबे-दबे, घुटे-घुटे, माँ-बाप के स्नेह से वंचित, बच्चों की बुद्धि या तो बिलकुल जड़ हो जाती है या फिर उसमें एक असाधारण प्रखरता आ जाती है। बचपन में चेतन की माँ की बुद्धि भी तीक्ष्ण थी, अल्प वयस ही में वह बहुत कुछ समझने सोचने लगी थी। उसकी सहेलियाँ पास के मुहल्ले की पाठशाला में जातीं, पर उसे स्कूल जाने की मनाही थी। आज कल की तरह शिक्षा व्यापक न हुई थी और पुराने विचारों के उसके पिता और ताऊ इतनी बड़ी लड़की का घर से बाहर निकलना अच्छा न समझते थे। लेकिन चेतन की माँ ने अपनी सहेलियों की पुस्तकों ही से उनका पढ़ा हुआ पाठ पूछ-पूछ कर बहुत कुछ सीख लिया था, यहाँ तक कि एक दिन उसने जगदीश के सारे किस्से लेकर पढ़ डाले थे।

जगदीश उसके फूफा का लड़का था। वहीं रहा करता था। पढ़ता-पढ़ाता तो कुछ न था, पर किस्सा जो भी नया छपता, खरीद कर घर ले आता। एक दिन उन्हीं किस्सों में से एक को पं० शिवराम ने अपनी लड़की के हाथ में देख लिया। तब ढूंढ़ ढूंढ़ कर सब किस्सों को तो उन्होंने आग लगा दी और साथ ही लड़के को भी पिता के घर भेज दिया, और चेतन की माँ को इतना फटकारा कि वह रो दी। उन किस्सों में क्या बुराई है, यह तब उस सरल, निरीह, भोली-भाली बालिका को

मालूम न था ।

अपने लड़के का यह अपमान देख कर बुआ ने पहले तो ताने दिये कि अब जब नयी बहू आ गई है तो उसकी क्या आवश्यकता है, फिर अभिशाप दिया कि इस गँवार बहू के हाथों उस का घर चौपट हो जायगा, फिर रोई और अपने घर चली गई ।

तब पढ़ाई छोड़ कर चेतन की मां ने अपना ध्यान सीने पीरोने और कशीदे की ओर लगाया था । अपनी सहेलियों ही से पूछ पूछ कर उसने बहुत कुछ सीख लिया था । तब यह बुद्धि और यह सुघड़ता वह अपनी इस समवयस्क विमाता को सुसंस्कृत बनाने में लगाने लगी थी । उस के बाल वही गूँधती, उसे कपड़े वही पहनाती, उसे सीना-पिरोना वही सिखाती और इस तरह अपनी 'माँ' को योग्य बनाने का प्रयास करती । लेकिन न पिता ने इस काम के लिए उस की प्रशंसा की और न माता बन कर आने वाली इस समवयस्क लड़की ने । पिता कठोर थे और माता को प्रशंसा करने का सहूर ही न था ।

लेकिन चेतन की माँ इतने ही से प्रसन्न थी कि एक दिन पंडित शादीराम से उसका विवाह हो गया ।

यह ठीक है कि ब्याह के बाद तत्काल वह ससुराल न गई और पुरानी प्रथा के अनुसार तीन बरस और अपने मायके में रही । किन्तु इन तीन वर्षों में लड़की से वधू बन जाने पर भी उसके दैनिक जीवन में कोई अन्तर नहीं आया । हुआ केवल इतना कि घर में उस का जो थोड़ा बहुत मान था, वह भी कम हो गया ।

बात यह हुई कि उस के चाचा का विवाह भी इस बीच में अमृतसर में हो गया और उस की चतुर चची ने आते ही उस की विमाता को अपने वश में कर लिया । इसलिए जब तीन वर्ष बाद एक दिन

अचानक पं० शादीराम उसे लेने पहुँचे तो उसे दुःख नहीं हुआ। उस की आँखें भर आईं थीं, और चलते समय वह रोई भी खूब थी। पर यह रोना उस खुशी के लिए न था जो मायके में लड़कियों को प्राप्त होती है, बल्कि उस खुशी के अभाव के लिए था।

तभी जब वह ताँगे में बैठी थी और पिता ने ठण्डे प्यार का हाथ उस के सिर पर फेरा था तो चेतन की माँ के सामने सीलदार आँगन के अँधेरे में पड़ी अपनी उस रोगिनी माँ का चित्र घूम गया था और उसने दुपट्टे से मुँह ढाँप लिया था।

जिस मकान में लाकर पं० शादीराम ने उसे ठहराया था, वह उन का अपना मकान न था। सहज-ज्ञान ही से चेतन की माँ ने यह जान लिया था। क्योंकि मायके में अपनी सुसुराल के पुराने जीर्ण-शीर्ण घर के सम्बन्ध में कुछ न कुछ भनक उस के कान में पड़ चुकी थी और मन ही मन उस ने निश्चय भी कर लिया था कि बुरा तो, भला तो, जो भी हो, वह उसे ही स्वर्ग समझेगी। इसलिए उसने अपने पति से इच्छा प्रकट की थी कि जैसा भी हो, वह अपने ही घर जायगी। जब सदा दूसरे के घर नहीं रहा जा सकता और एक दिन अपने घर जाना ही है तो क्यों न अभी से वहाँ रहने का स्वभाव डाला जाय।

और जब जीर्ण-शीर्ण ड्योढ़ी से गुज़र कर (पैरों की आहट ही से जिसकी छत और दीवारों की मिट्टी गिरती थी) वह आँगन में गई तो कुछ क्षण मूक मर्माहत सी खड़ी रह गयी थी। मायके में उस के पिता का घर भी पुराना ही था, अँधेरा भी था और सील भरा भी। सुन्दर भी वह कभी भी न था। लेकिन वह घर तो था। यह—यह तो खंडहर था।

आँगन कूड़े-करकट से अटा पड़ा था। कहीं कोयले बिखरे थे, और कहीं-कहीं कौवों तथा चीलों द्वारा आकाश से फेंकी हुई हड्डियाँ। सामने के दालान की दीवार में छोटी ईंटें साफ़ दिखाई दे रही थीं—मिट्टी शायद वर्षा से धुल गई थी। रसोई घर के किवाड़ जर्जर थे और कुंडी लगी रहने पर भी दोनों किवाड़ों के बीच इतनी जगह बन जाती थी कि पूरी की पूरी बाँह अन्दर बड़ी सुगमता से जा सकती थी। चूहे तो क्या बिल्ली भी चाहे तो तनिक सिकुड़ कर घुस सकती थी। इसी दरवाज़े से निकल कर धुएँ ने रसोई घर के बाहर की दीवार को बिलकुल काला कर दिया था। बायीं ओर का दालान जला पड़ा था और गिरी हुई छत को मलवा और कोयले दरवाजे से बाहर तक आ गये थे। इसके साथ ही ड्योढ़ी की ओर को एक बिना किवाड़ों का खुला रसोई घर और था। आँगन की मुँडेर निरतंर वर्षा और लिपाई-पुताई के अभाव के कारण नंगी हो गयी थी और सामने दालान की मुँडेर पर एक बिलकुल नंग धड़ङ्ग व्यक्ति एक टांग इधर और एक टाँग उधर किये बैठा शून्य ही से बातें कर रहा था। हाथों को एक दूसरे के पास लाकर उनसे हवा में आदमी बनाता हुआ दाँत किटकिटा कर 'लोहे का आदमी, लकड़ी का आदमी, जा!' कहता हुआ वह शून्य में बने हुए उन आदमियों को न जाने किधर उड़ा रहा था।

क्षण भर के लिए चेतन की माँ उस मिट्टी-सने, जैसे वर्षों से स्नान-वंचित उस व्यक्ति को देखती रही। उस ने पति के यह शब्द, 'चुन्नी है पागल' नहीं सुने। तभी उस पागल ने उन की ओर देखा और दाँत किटकिटा कर लोहे तथा लकड़ी के दो आदमी बना कर उन की ओर छोड़ दिये। चौड़ा मस्तक, चपटी मोटी नाक, ओंठ कटे होने के कारण बाहर दिखाई देते दाँत, खड़े खड़े रूखे बाल, काली नंगी स्वस्थ देह!—डर कर चेतन की माँ दो कदम पीछे हट

गई थी।

तब उसके पति ने छत पर जाकर उस पागल को भगा दिया और आकर तनिक उल्लास से बताया कि वह उन का पागल चचा है और यह जला दालान और खुला रसोई घर भी उसी का है, और उसी ने पागलपन की झोंक में इस दालान को आग लगा दी थी। फिर कुछ गर्व के साथ उस के पति ने कहा था—"बस डरता है तो मुझी से। यह नाक इसकी मैंने ही तोड़ी है। एक दिन यह घर से जाता न था, दादी को तंग करता था। मैंने जाने को कहा तो मुझ पर भी झपटा। पटक कर मैंने इसे उस किवाड़ की चौखट पर दे मारा। मेरा बाँया हाथ इसके हाथ में आ गया। किचकिचा कर दाँतों में इसने पकड़ लिया। मैंने कहा—'छोड़!' इसने और भी दाँत गड़ा दिये। तब पूरे ज़ोर से तान कर दो घूंसे मैंने इसके रसीद किये। नाक की कांटी टूट गई और ओंठ फट गये। दादी को सब से अधिक इसी पागल से प्यार है। वह बहुत रोई पीटी, किन्तु जो भी हो, फिर यह कभी मेरे सामने नहीं हुआ।"

और यह कह कर प्रशंसा पाने की इच्छा से पंडित शादीराम ने अपनी इन नव परिणीता पत्नी की ओर देखा। लेकिन चेतन की माँ का मुख पीला पड़ गया और वह सहमी हुई सी अपने इस क्रूर पति को देखती रह गई।

तब कुछ अप्रतिभ से होकर पंडित शादीराम ने कन्धे झाड़े थे और चारों ओर निगाह दौड़ा कर कहा था, "मैंने तुम्हें बताया था न कि घर तो बस खंडहर ही है।"

और वे खिसियानी सी हँसी हँसे थे।

चेतन की माँ के चेहरे का रंग लौट आया। अपना निश्चय भी उसे स्मरण हो आया।

"मेरे लिए यही स्वर्ग है।" यह कह कर वह आगे बढ़ी।

और फिर कपड़े बदल कर आँगन को झाड़ बुहार, कोयलों, हड्डियों और कूड़े करकट का अम्बार उस ने एक कोने में लगा दिया था, और दालान में भी सफाई करके एक चारपाई के लिए थोड़ी सी जगह बना ली थी।

वहीं उस की सुहागरात बीती थी।

इसके बाद अब तक उसके दिन कैसे गुज़रे थे? इस प्रश्न के उत्तर में केवल इतना कहना पर्य्याप्त है कि पहले दिनों से वे कुछ भिन्न न थे। और पहले दिनों का विवरण कुछ यों है :

आठवीं श्रेणी में ही शराब पीना शुरू करके उस के पति ने अपने विवाह तक, सब तरह के कर्म कर देखे थे। और उन लोगों में, जो स्वयं उतने शुद्ध-चरित नहीं होते दूसरों के चरित्र के प्रति जो एक तरह का सन्देह सा होता है, वह पंडित शादीराम के मन में भी था। दसवीं श्रेणी तक वे पढ़े थे। वास्तव में उन दिनों बी० ए० तक कोई विरला ही जाता था। साहित्य के नाम पर भी (अपने समय के अधिकांश युवकों की भाँति) उन्हों ने 'अलिफ़ लेला', 'क़िस्सा तूतो-मैना', 'इसरारे दरबारे हरामपुर' के ढङ्ग के उपन्यास पढ़े थे, जिनमें तिरिया चरित्र के विशद-वर्णन और काम को उद्दीप्त करने वाले किस्सों के सिवा कुछ न था। इसलिए नारी के प्रति उन का सन्देह और भी गहरा था। चेतन की परदादी उन दिनों यजमानों के यहाँ दौरे पर गई हुई थी और स्वयं उन्हें स्कूल जाना होता था, जहाँ मैट्रिक की परीक्षा पास करते ही वे अध्यापक हो गये थे। इसलिए वे उसे उस खंडहर में बन्द करके बाहर से ताला लगा जाया करते थे।

उस खंडहर-से मकान में उस का दिन कैसे कटता था। इसके

सम्बन्ध में जिज्ञासु को इतना बता देना ही यथेष्ठ है कि वह किसी भारी बेचैनी अथवा उद्विग्नता से न गुज़रता था। अपने पति के इस क्रूर-व्यवहार' के प्रति भी उस के मन में किसी प्रकार का असन्तोष न था। अपने कर्मफल को (क्योंकि वह इस जन्म के दुःखों तथा कष्टों को पूर्व-जन्म के कर्मों का फल ही समझती थी।) उस ने सन्तोष के साथ भोगना बहुत पहले सीख लिया था। अपनी ददिया सास (परदादी गङ्गादेई) के हाथों दालान के एक कोने में जमाई हुई चक्की को उस ने अपने इस एकान्त की संगिनी बना लिया था। सुबह खाना बना कर अपने पति को खिला पिला कर, उन्हें काम पर भेज कर, (बाहर से उन के ताला लगा देने पर भी) अन्दर से कुण्डी लगा कर, वह चक्की के पास आ बैठती और दूसरे दिन के लिए आटा पीसती। कभी दायें, कभी बायें और कभी दोनों हाथों से चक्की के दस्ते को घुमाते हुए वह मीठे तरल, लगभग आर्द्र-स्वर से गाया भी करती थी। मायके में अपने उसी फूफा के लड़के से उस ने एक बार ब्रह्मानन्द के बिसुनपदों की पुस्तक मँगाई थी। बार बार उसे पढ़ने से बहुत से भजन उसे कंठस्थ हो गये थे। उन्हें गाते गाते वह भक्तिरस में विभोर हो जाती और भूल जाती कि वह एकाकिनी है, उस के पति बाहर से ताला लगा गये हैं, उसका घर खंडहर है, उस का वर्तमान दुखद है और भविष्य भी उज्ज्वल नहीं। एक अनिर्वचनीय सन्तोष से उस के मन-प्राण प्लावित हो जाते थे। ब्रह्मानन्द के भजनों के अतिरिक्त वह दूसरे भी भजन गाया करती थी। जैसे :

> कहो जी कैसे तारोगे ?
> रंका तारो बंका तारो तारयो सदन कसाई।
> सुआ पढ़ावत गनिका तारी, तारी मीराबाई!
> प्रभु जी कैसे तारोगे ?

भजन गाते गाते वह तन्मय हो जाती और प्रायः उस का स्वर भी सानुनासिक हो जाता (जैसे तारोगे को तारोंगे) किन्तु वह उस आदर का सूचक होता जिससे वह सर्वशक्तिमान को सम्बोधित करती।

कर्म गति टारे नाहिं टरे।

दूसरा गीत था जो वह चक्की पर गाया करती थी।

चक्की के बाद प्रायः वह चर्खा ले बैठती और अपने समस्त एकान्त को, अभाव को, दुःख को कात कात कर टोकरी में बन्द कर देती। 'हीर रांझा' या 'माही' अथवा 'ढोल' का कोई गीत गाने के बदले चर्खा कातते समय भी वह ऐसे ही गीत गाती जैसे :

हरी जी जो गुज़रे सहिए।
छोड़ खुदी का राह राजा जी
जो गुज़रे सहिए!

अपनी सहेलियों से पूछ पूछ कर उसने जो थोड़ा बहुत पढ़ना सीख लिया था, इस एकान्त में वह भी उस के कम काम नहीं आया। कभी जब घर में रुई अथवा लोगड़*कुछ भी न होता, वह भगवद्गीता ले बैठती। उसके दर्शन को वह ठीक तरह समझ पाती हो, यह बात नहीं, उन श्लोकों को वह ठीक तरह पढ़ पाती हो, यह भी नहीं, वह तो पाठ के तौर पर उसे पढा करती। इस पुस्तक के श्लोक तोते के मुँह से सुनने पर जब गणिका तर गई तो वह पापिन क्यों न तर जायगी। उसने वास्तव में कोई पाप किया हो, यह बात न थी। किन्तु उसने सीखा था कि न जाने दिन में मनुष्य से कितने पाप बन आते हैं, इस लिए जहाँ तक हो डर कर करना चाहिए।

इसी तरह उसका दिन बीत जाता था और कभी वह खाना पका

* लोगड़ रूहड़ = लिहाफ़ की पुरानी रुई।

रही होती और कभी खाना पक चुका होता, जब पंडित शादीराम आते। उनका समय पर आ जाना कुछ निश्चित न था। उस के इस आरम्भिक जीवन में (और बदली हुई पार्श्वभूमि के साथ बाद में भी) ऐसे बहुत से दिन आये जब वह खाना पका कर अपने पति की प्रतीक्षा में भूखी प्यासी बैठी रही और वे रात रात भर नहीं आये।

अभी उसे इस कैदखाने में बन्दी हुए अधिक दिन नहीं बीते थे कि संकट चौथ का व्रत आ गया। चेतन की माँ के लिए यह बड़ा महत्व-पूर्ण व्रत था। जब सन्ध्या को आकर पं० शादीराम ने किवाड़ खोले तो दिन भर की भूखी प्यासी लाजवती ने अपने पति से कहा कि वह व्रत से है और वे तिल और गुड़ ला दें ताकि वह भुग्गा (गज़क) बना कर गणेश की पूजा करके व्रत उपार ले और फिर उसने यह भी प्रार्थना की कि संध्या को कम से कम आज वे कहीं न जायँ।

पं० शादीराम ने उसे विश्वास दिलाया कि वे ऐसा ही करेंगे और जल्दी ही आने का वादा करके प्रकट उस के लिए तिल लेने चले गये। लाजवती ने उन के लिए खाना आदि पका लिया और फिर वह वहीं रसोई घर के बाहर आँगन में बैठी, उन की प्रतीक्षा करने लगी। धीरे धीरे संध्या का अँधेरा आँगन में छा गया। सामने के मकान की ऊँची और निरन्तर वर्षा के कारण काली पड़ जाने वाली दीवार साँझ के अँधेरे में और भी काली दिखाई देने लगी और उस दीवार की छत पर लगी हुई कौवों की सभा भी विसर्जित हो गई। ऊपर निर्मल आकाश पर एक दो तारे निकल आये। लाजवती ने उठ कर सरसों के तेल का दिया जलाया और उसे रसोई घर में रखकर नमस्कार किया। फिर वह प्रतीक्षा में मोढ़े पर बैठ गई।

वहीं बैठे बैठे तब उसने संकटमोचन दुःखहरन श्री गणेश की आराधना आरम्भ कर दी और अगणित बार :

जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा

का पाठ भी कर लिया। जब फिर भी पंडित जी न आये तो वह मन ही मन उस कहानी* को दुहराने लगी जो संकट चौथ के दिन ब्राह्मणी सुनाया करती थी। वहाँ ब्रह्मणी तो क्या आती, मन ही मन स्वयं उसने वह कहानी दुहराई।

चुप चाप दिल में इस कहानी को दुहराते हुए, अन्त पर पहुँच कर चेतन की माँ ने श्रद्धा से गणेश भगवान का ध्यान कर सिर झुकाया और एक चित्त होकर प्रार्थना की उसके समस्त संकट दूर हो जायँ।

---

*एक बार भगवती पार्वती नहाने गईं। भगवान शंकर कहीं बाहर गये थे। देवी पार्वती ने अपने पुत्र को स्नानगृह के दरवाजे पर खड़ा किया और कहा कि किसी को आने न देना। तब ऐसा हुआ कि भगवान शिव बाहर से आये। पुत्र ने पिता को रोक दिया। भगवान ने समझाया कि बेटा मैं तेरा पिता हूँ, तेरी माता का पति हूँ, मेरे जाने से कुछ हानि नहीं, पति-पत्नि में कोई पर्दा नहीं होता, आदि आदि, पर पुत्र न माना। इस पर भगवान शिव ने क्रोध में आकर उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। जब देवी पार्वती बाहर आईं तो अपने प्रिय पुत्र को मृत देख कर विलाप करने लगीं। तब उन्हें इस तरह कातर होते देख कर भगवान शिव को उन पर दया हो आई और उन्होंने वचन दिया कि अच्छा हम इसे जीवित कर देंगे। पार्वती को यों ढाढ़स बँधा, भगवान ने अनुचरों को आज्ञा दी कि रात के समय जिस पुत्र की ओर माता पीठ करके सोई हुई हो, उसका सिर काट लें। अनुचर समस्त मर्त्यलोक में घूमे, पर कोई भी ऐसी-माता न मिली जो अपने पुत्र की ओर पीठ करके लेटी हो। अंत में उन्हें एक ऐसी हथिनी मिल गई, जिसकी पीठ अपने शिशु की ओर थी। अनुचर उसके बच्चे का सिर काट लाये। भगवान शिव ने अपने मृत पुत्र के धड़ पर वह सिर लगाकर मन्त्र पढ़ा और उसमें जान पड़ गई।

पार्वती जी ने इस लम्बी सूंड वाले गजानन को देखा तो वे और भी दुखी हुईं। तब फिर भगवान शिव ने उन्हें सान्त्वना दी और वर दिया कि जो इस दिन गणेश पूजा करेगा उसके सब संकट दूर हो जायेंगे।

वहीं बैठे बैठे उसने व्रत के महात्म्य के सम्बन्ध में भी सर्व कहानियाँ मन में दुहरा डालीं। किन्तु पं० शादीराम न आये। उधर अर्घ्य का समय हो गया। अब घर में स्वच्छ पवित्र जल न था, जिससे चन्द्रमा को अर्घ्य दिया जाय। डरते डरते वह ड्योढ़ी में गई कि दरवाजे में खड़ी होकर सामने के मकान में रहने वाली ब्रह्मणी मलावी को आवाज़ दे। अन्दर से कुण्डी खोलकर दरवाजे से सिर लगाये कितनी देर तक खड़ी रही, किन्तु उसे आवाज़ देने का साहस न हुआ। आखिर उसने सिर हटाया, किवाड़ अन्दर को खुल गया, क्योंकि पंडित जी का ख्याल था कि वे शीघ्र आ जायेंगे, इसलिए वे ताला लगा कर न गये थे।

सामने के मकान का दरवाज़ा बन्द था। मुहल्ले के सिरे पर म्यूनिसिपेलिटी का जो लैम्प जलता था, उसका प्रकाश उनके दरवाजे तक न पहुँचता था। उस अँधेरे में खड़े खड़े उसने कई स्त्रियों को आते जाते देखा, पर जान पहचान न होने के कारण वह किसी को बुलाने का साहस न कर सकी—सूखे ओठ, सूखा कंठ और शिथिल शरीर लिये हुए वह वहीं खड़ी रही। तभी मलावी अपने घर आई, किवाड़ खोल कर उसने दिया जलाया और बहू को अपने घर की चौखट से लगी खड़ी देखा। पास आकर उसने कहा।

"शादी की बहू है, क्या बात है बच्ची, तू ऐसे क्यों खड़ी है?"

चेतन की माँ पहले कुछ न कह सकी थी। पुनः पूछने पर रुँधे गले से उसने कहा कि उसे कुछ जल चाहिए ताकि वह व्रत उपार सके।✓

मलावी ने उसे सहर्ष पानी ला दिया था और यह भी बता दिया था कि वह (पं० शादीराम) तो देसराज के यहां बेहोश पड़ा है। उसके आने की बाट वह कब तक जोहेगी? अपनी ओर से उसने यह

प्रस्ताव भी किया था कि यदि भुग्गा न बना हो तो वह बाज़ार से उसे दूध ही ला देती है। पर चेतन की माँ का मन ऐसा खिन्न था कि चन्द्रमा को अर्घ्य दे, पानी के दो घूंट पी कर ही उसने व्रत उपार लिया, मलावी को विदा दी और ड्योढ़ी का दरवाजा लगा कर रसोई घर में आ बैठी। समय काटने के लिए उस ने संकटमोचन दुःखहरन कुम्भोदर भगवान गजानन का जाप आरम्भ कर दिया था।

जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा

न जाने कब वहीं बैठे बैठे, जाप करते करते वह ऊँघ गई थी। आधी रात के लगभग पं० शादीराम ने नशे में चूर थरथराती आवाज़ में पुकारा था—'दरवाज़ा' !

चौंक कर चेतन की माँ ने लपक कर दरवाज़ा खोला था और उनके अन्दर आने पर बन्द कर दिया था। तब वे उसे बग़ल में लिये नशे से लड़खड़ाते, अन्दर अँधेरे दालान में आये थे। सरसों के तेल का एक दिया ताक़ में पड़ा टिमटिमा रहा था। कच्ची मिट्टी और सील की बू आ रही थी। उसी दिये के प्रकाश में जब उस ने अपने पति की आँखों में वासना और मद की झलक देखी तो उपवास, भूख और उनींदे से थकी उस की आत्मा काँप उठी थी।

लेकिन दूसरी सुबह जब उस ने शिकायत के स्वर में पंडित जी से कहा कि वे उसे अकेली छोड़ कर तिल लेने का बहाना करके चले गये और वह बैठी प्रतीक्षा करती रही और उस ने बताया कि किस तरह उसे मलावी की सहायता लेनी पड़ी...तो वह बात पूरी भी न कर पाई थी कि उस के पति ने सहसा उसके मुंह पर एक थप्पड़ जमा दिया था। ऐसी गालियाँ देते हुए, जो उस ने पहली बार ही सुनी थीं, उसे डाँटा कि यदि वह एक दिन भूखी रह लेती तो मर न जाती उन के आने की प्रतीक्षा उस ने क्यों न की ? और क्यों उस ने मलावी को

बुलाया ? तब चेतन की मां ने अपने पति के पाँवों पर झुक कर क्षमा माँग ली थी।

लेकिन उस के इस अपराध का दंड यहीं समाप्त न हो गया था। परदादी गंगादेई जब आई और उसे मालूम हुआ कि उस की अनुपस्थिति में मलावी उस के घर आई थी तो बहू को दिन भर डाँटने-डपटने के बाद उस ने मलावी और उस के घर वालों की सात पुश्तों का नाम लेकर अत्यन्त 'मीठे वचनों' की वर्षा की थी—और सहमी हुई बहू ने देखा था कि उस की ददिया सास जब नहाने लगती है तो मलावी और उस के मृत पति का नाम लेकर दुराशीषें देती है—चेतन की परदादी गंगादेई का विश्वास था कि नहाते समय की दुराशीश ऐन निशाने पर बैठती है।

अपनी ददिया सास से लाजवती की यह पहली भेंट थी।

बाद के इन लम्बे तीस वर्षों में पहले परदादी गंगादेई और फिर चेतन के पिता के हाथों चेतन की माँ ने अगणित ऐसी ही यातनाएँ सहीं। इच्छा न होने पर भी वह अपनी ददिया सास के समस्त पूजा-पाठ, व्रत-नियम, पीर-फ़क़ीर, रस्म-रिवाज मानती रही, उन की डाँट-फटकार सुनती रही, मानसिक और शारीरिक यातनाएँ सहती रही, और यह क्रम तब तक जारी रहा जब तक इस क्रूर ददिया सास की मृत्यु ने चेतन की माँ को इन सब यातनाओं से मुक्त न कर दिया।

रहे उन के पति, तो बचपन में अपनी माँ की मृत्यु पर उन्हों ने अपनी इसी दादी का दूध पिया था (कम से कम परदादी गंगादेई यही कहा करती थीं कि उन के स्तनों में तब दूध उतर आया था) फिर यह कब सम्भव था कि स्वभाव की क्रूरता उन में न होती। इसके अतिरिक्त कोई ऐसा व्यसन न था जो उनमें न हो। शराब वे रोज़ पीते, दीवाली के दिनों में जुआ खेलते (और शराब पीकर खेलने के

कारण सदैव हारते), सट्टा वे लगाते और दूसरे बीसियों तरीकों से रुपया लुटाते। फिर ऐसे अवसरों की कमी न थी जब वे दूसरी स्त्रियों को घर ले आये और उनके सामने (उन के कहने पर अथवा उन्हें प्रसन्न करने हेतु) उन्होंने चेतन की माँ को निर्दयता से पीटा। आयु भर (स्कूल की मास्टरी छोड़ रेलवे में तार बाबू, असिस्टेंट और फिर स्टेशन मास्टर होने पर भी) कभी उसे भड़कीला कपड़ा नहीं पहनने दिया। कभी भूल से वह छत पर चली गई तो चरित्रहीनता के बीस ताने उसे दिये, कभी घूंघट ऊँचा किया तो बीस गालियाँ दीं और एक बार उसे गली में देख लिया तो वहीं से घसीटते हुए अन्दर ले गये।

लेकिन इतने पर भी चेतन की माँ ने अपने इस क्रूर, निर्दय पति को अपना समस्त प्रेम, समस्त श्रद्धा, और समस्त आदर-सत्कार दिया। स्वप्न में भी उन का बुरा न सोचा (यह अत्युक्ति नहीं, धर्म और कर्म की ज़ंजीरों में जकड़ी ऐसी अनेक स्त्रियाँ इस पुण्य भूमि भारत में मिल जायँगी।) सदैव उन की समृद्धि और उन्नति के लिए अनुष्ठान कराये; प्रति वर्ष जालन्धर के प्रसिद्ध ज्योतिषी पंडित आत्माराम से वर्ष-फल बनवा कर जप करवाये; सत्यनारायण की कथाएँ कराईं; पति की दीर्घायु की कामना से सब व्रत रखे; समय-कुसमय आत्माभिमान को तज उन की सहायता की; उन के कारण चौदह वर्ष अपने पिता का मुँह न देखा (जिसने एक बार उन की निन्दा की थी) और अन्य लोग तो दूर रहे, कभी अपने बच्चों से भी अपने पति की बुराई नहीं सुनी।

१२

स्कूल में उस दिन चेतन लड़कों को ठीक तरह पढ़ा न सका था। देर से पहुँचने के लिए हैडमास्टर ने उसे डाँटा न था। अंग्रेज़ी और इतिहास के अध्यापक आये न थे और उनके स्थान पर भी हैडमास्टर चेतन को भेजना चाहते थे, इस लिए उसे डाँटने के बदले उन्होंने केवल इतना कहा था कि इतनी देर उस जैसे ज़िम्मेदार व्यक्ति को न करनी चाहिए और जब दूसरी सांस में हैडमास्टर ने उसे अंग्रेज़ी और इतिहास की घंटियाँ भी लेने का आदेश दिया था तो वह आपत्ति न कर सका था।

एक प्रश्न लिखा कर, लड़कों को चुपचाप उसे करने का आदेश दे। अथवा मानीटर से लड़कों का पिछला पाठ सुनने को कह; या फिर लड़कों को चुपचाप अपना पाठ याद करने की आज्ञा दे कर स्वयं मौन रूप से अपनी कुर्सी पर बैठ, अपनी वैवाहिक समस्या को सुलझाने उलझाने में चेतन ने अधिकांश समय काट दिया था।—एक लड़की थी कुंती! पं० शादीराम के एक परिचित की दौहित्री थी, इसका चेतन ने पता लगा लिया था। चेतन ने एक बार उसे 'बाजड़े' के मेले में देखा था और अपने अन्तर की गहराइयों में कहीं वह उसे चाहने लगा था। उसी प्रकार जैसे निम्न मध्यवर्ग के सहस्रों युवक चुपचाप सिनेमा की अभिनेत्रियों को चाहने लगते हैं। उसने कुन्ती से कभी बात भी न की थी। अनन्त के अतिरिक्त अपने इस मूक प्रेम की भनक भी किसी के कान में न पड़ने दी थी। वह गत दो तीन वर्ष से सांझ को सैर के लिए जाते समय चुपचाप पुरियां मुहल्ले से गुज़र जाता और बस।

इससे अधिक अपनी प्रेमिका को पाने के लिए उसने कुछ न किया था। वह भी कदाचित उसके प्रेम की बात जानती थी। पर चेतन ने कभी यह जानने का प्रयास नहीं किया। दृष्टि विनिमय ही उसे इस बात का आभास मिलता—उस दिन स्कूल में इस या उस क्लास में लड़कों को पढ़ाते पढ़ाते वह अपनी इस असमर्थता पर विचार करता रहा था और अन्त में उसने तय किया था कि यदि उसके पिता ने उस पर पं० दीनबंधु की लड़की से विवाह करने के लिए ज़ोर दिया तो वह उन्हें कुन्ती के सम्बन्ध में अपनी चाहत की बात बता देगा। उसे पूरा विश्वास था कि उसके पिता कुन्ती के साथ उसकी सगाई कर देंगे। वह उनके मित्र की दौहित्री तो थी ही।

स्कूल से आते आते मार्ग ही में अपने मित्र अनन्त को कुन्ती के सम्बन्ध में अपने निर्णय की बात बता कर, जब चेतन घर आया तो उसे पता चला कि उसके स्कूल जाने के कुछ ही देर बाद देसराज आया था और उसके पिता तभी से उसके साथ गये हुए हैं और माँ प्रतीक्षा में बैठी है कि वे आयें तो उन्हें खिला कर स्वयं भी दो कौर खाये।

"न जाने यह कमीना देसराज कब हमारा पीछा छोड़ेगा।" चेतन कहना चाहता था। पर शब्द उसके ओठों तक ही आकर रुक गये क्योंकि जहाँ तक उसके पिता अथवा उनके मित्रों का संबंध था, उनके बारे में किसी प्रकार कटु बात सुनना चेतन की माँ पाप समझती थी।

तब दिल ही दिल में अपने पिता के उस मित्र को कोस कर चेतन साँझ को नाश्ता करने बैठ गया था। पर इस बात का ध्यान आते ही कि माँ ने अभी सुबह का खाना भी नहीं खाया, वह पूरी तरह नाश्ता न कर सका था। किसी न किसी तरह चार कौर निगल कर वह नीचे अपने कमरे में चला गया था और अपने ध्यान को उसने साहित्य-सृजन में

लगाने का प्रयास किया था।

सन्ध्या को मुहल्ले में अभी म्यूनिसिपेलिटि का आदमी लैम्प में तेल डाल कर गया ही था (सारे जालंधर में बिजली का प्रकाश हो जाने पर भी कल्लोवानी में १९४० तक मिट्टी के तेल का लैम्प ही धुँधला प्रकाश देता रहा है) कि चेतन ने थक कर क़लम दवात और कापी अलमारी में रख कर किवाड़ लगाये। घंटों से वह कविता लिखने का प्रयास करता रहा था और जब असफल रहा था तो उसने एक कहानी भी लिखनी शुरू की थी, पर कभी बस्ती वाली उस चन्दा का और कभी पुरियाँ मुहल्ले वाली उस कुन्ती का, कभी अपने पिता की क्रूरता का और माँ की विवशता का ध्यान आ जाने से उसकी विचार-धारा टूट जाती थी। इसलिए कविता तथा कहानी लिखने में उसे जो सफलता मिली थी, उसकी गवाही कापी के कटे फटे पृष्ठ देते थे।

ज्योंही कापी, कलम और दवात अलमारी में बन्द करके वह ऊपर पहुँचा और उसने देखा कि सारा दिन प्रतीक्षा करके अब दो कौर खाकर माँ बर्तन मल रही है कि उसी समय बाहर से उसके पिता की कड़कती आवाज़ आई, "चेतन!"

आँगन के एक ओर जो थोड़ी सी जगह छती हुई थी वहाँ चिड़ियों ने एक घोंसला बनाया था और बच्चे भी दिये थे। उस कर्कश आवाज़ को सुनकर वे फुर से उड़ गईं और घोंसले में 'बच्चे चीं चीं' करने लगे। माँ के हाथ से बर्तन छूट गया और उसने (हाथ राख से सने होने के कारण) अँगुलियों के जोड़ों से धोती घुटनों पर कर ली और चेतन ने समझ लिया कि आज बाज़ार शेखाँ के ठेकेदार की जेब खूब

गर्म हुई है ।

तभी फिर आवाज़ आई—"चेतन !"

नशे के कारण कुछ काँपती हुई, पर खूब ऊँची कड़ी थरथराती आवाज़! चेतन नीचे भागा और माँ जल्दी से उठकर लैम्प जलाने लगी।

ऐसे अवसरों पर सदैव माँ के हाथ पाँव फूल जाते थे और पास पड़ी हुई चीज़ भी उसे दिखाई न देती थी। उस समय भी माँ को दियासलाई की डिबिया न मिल रही थी। आखिर जब वहीं.ताक में पड़ी वह मिल गई और उस ने लैम्प जलाना आरम्भ किया तो सीढ़ियों पर भारी भारी क़दम रखते हुए पं० शादीराम ऊपर आ पहुँचे। शलवार जो सुबह ही पहनी थी, बेढङ्गी और मैली कुचैली हो गई थी। कमीज़ के बटन खुले थे। छाती के दो चार श्वेत बाल दिखाई रहे थे और पगड़ी बग़ल में दबी थी।

मूछों को तनिक ऊपर चढ़ाते हुए उन्होंने स्निग्ध-कोमल-दृष्टि से अपनी पत्नी की ओर देखा।

"ऐ जी.....!"

पत्नी वहीं लैम्प छोड़ कर उठ खड़ी हुई।

"ज़रा चारपाई बिछा दो!"

चेतन की माँ का दिल और भी धक धक करने लगा। पंडित शादीराम जितने दिन घर आकर बिताते थे, माँ का दिल धड़कता रहता था। नशे में उन के चित्त की अस्थिरता की हद न रहती—अभी हँस रहे होते कि अभी सिर फोड़ने फोड़वाने पर तुल जाते। वह डर रही थी और मन ही मन में संकटमोचन, दुःखहरन भगवान गजानन से प्रार्थना कर रही थी कि रात कुशल पूर्वक बीत जाय। लेकिन जब उन्होंने अपेक्षाकृत कोमल स्वर में चारपाई बिछाने को कहा तब

डर तथा आशंका से माँ का दिल धक धक करने लगा ।

कारण यह कि साधारणतया जब वे बाज़ार शेखाँ से होकर घ
आते तो सीढ़ियों ही से उन की गालियों की बौछार शुरू हो जाती—य
दिया क्यों नहीं जलाया ?... ... बीस बार कहा है सीढ़ियों में दिय
जलाया करो ! .... मेरी टाँग की हड्डी टूट गई... चारपाई कह
है ?.. ...मैं क्या तुम्हारे सिर पर बैठूं ?—इन वाक्यों में अर्ध
विरामों के स्थान पर गालियाँ होती थीं । इस प्रकार धीरज से वे तभ
बात करते थे, जब वे खुश होते या उन्हें जुए के लिए, किसी क
देने के लिए या किसी और काम के लिए रुपये की ज़रूरत होती ।

जब चारपाई बिछा दी गई और पगड़ी को दीवार के साथ सि
के नीचे रख कर वे लेट गये और माँ ने लैम्प जलाकर खूंटी पर टां
दी तो उन्होंने चेतन की माँ से कहा कि ज़रा उन की बात सुने ।

जब वह सहमी हुई सी पायंते के पास आकर धरती पर बैठ ग
तो उन्होंने कहा कि नीचे बस्ती से पंडित वेणीप्रसाद अपने भा
पंडित दीनबन्धु के साथ आये हुए हैं । मुझे सूदां के चौक में मिल गये
थे, मैंने तो 'हाँ' कर दी है ।

माँ के दिल की धड़कन कुछ कम हुई और उसने कुछ और आगे
खसक कर कहा, "ज्वाली महरी की लड़की तो कहती थी कि लड़की
सुन्दर है, पर चेतन को पसन्द नहीं ।"

तब पंडित जी ने पूरे ज़ोर से अपने लड़के को आवाज़ दी ।

चेतन पं० दीनबन्धु और पक्षाघात के रोगी उन के भाई को नीचे
बैठक में बैठा कर साहस बटोरता और मन ही मन बीसियों तरह के
प्रश्नोत्तर दोहराता आ रहा था ।

पंडित जी ने कहा, "इधर बैठो ।"

सहमा हुआ वह पायंते पर बैठ गया ।

"तुमने लड़की देखी है ।

"जी हाँ !"

"उसमें क्या दोष है ?"

चेतन अब क्या उत्तर दे—पिता के सामने वह कभी न हुआ था। किसी लड़की के गुण दोषों की विवेचना करना तो दूर रहा, उस ने तो कभी उन के सामने खुल कर बात तक न की थी। उस के मुँह से केवल इतना निकला, "मोटी है।"

"तो क्या सब तुम्हारे जैसे पतले दुबले हो जायँ ?"

चेतन चुप।

"कल अपनी माँ के साथ जाकर लड़की को देख आओ।"

चेतन ने जैसे रोते हुए कहा, "देख कर मैं क्या करूँगा ?"

"मैं जो कहता हूँ देख आओ" ! पंडित शादीराम गरजे।

फिर कुछ क्षण ठहर कर उन्होंने तनिक गम्भीर होकर कहा, "देखो मैं उन भले आदमियों को वचन दे आया हूँ, यदि लड़की में कोई दोष न हो तो साड़ी देते आना। सगुन का रुपया मैंने ले लिया है।"

फिर अचानक अपने इस इक्कीस बाइस वर्ष के 'बच्चे' को गोद में लेकर और उस का मुँह चूम कर पिता ने सहसा विनीत स्वर में कहा, 'देखो बेटा मैंने सदा तुम्हें आदेश दिया है, आज मैं तुमसे विनय करता हूँ, यदि उस लड़की में कोई दोष न हो तो तुम मान लेना।"

इसके बाद उसे अपनी बाहों में कस कर और फिर एक बार चूम कर मुक्त करते हुए उन्हों ने अपनी पत्नी से कहा, "मैं इसे डाँटता हूँ, लेकिन इसकी इज़्ज़त भी करता हूँ।"

शराब के बदबूदार सांस को जैसे रूमाल से पोंछने का प्रयास करते हुए चेतन ने 'जिन्दा शहीदों' के से भाव में कहा, "जब आपने शगुन ले लिया तो ठीक है। मैं देखने क्या जाऊँगा ?"

डर तथा आशंका से माँ का दिल धक धक करने लगा।

कारण यह कि साधारणतया जब वे बाज़ार शेखाँ से होकर घर आते तो सीढ़ियों ही से उन की गालियों की बौछार शुरू हो जाती—यह दिया क्यों नहीं जलाया ?.. ... बीस बार कहा है सीढ़ियों में दिया जलाया करो ! .... मेरी टाँग की हड्डी टूट गई... चारपाई कहाँ है ?.. ...मैं क्या तुम्हारे सिर पर बैठूँ ?—इन वाक्यों में अर्ध-विरामों के स्थान पर गालियाँ होती थीं। इस प्रकार धीरज से वे तभी बात करते थे, जब वे खुश होते या उन्हें जुए के लिए, किसी को देने के लिए या किसी और काम के लिए रुपये की ज़रूरत होती।

जब चारपाई बिछा दी गई और पगड़ी को दीवार के साथ सिर के नीचे रख कर वे लेट गये और माँ ने लैम्प जलाकर खूंटी पर टांग दी तो उन्होंने चेतन की माँ से कहा कि ज़रा उन की बात सुने।

जब वह सहमी हुई सी पायंते के पास आकर धरती पर बैठ गई तो उन्होंने कहा कि नीचे बस्ती से पंडित वेणीप्रसाद अपने भाई पंडित दीनबन्धु के साथ आये हुए हैं। मुझे सूदां के चौक में मिल गये थे, मैंने तो 'हाँ' कर दी है।

माँ के दिल की धड़कन कुछ कम हुई और उसने कुछ और आगे खसक कर कहा, "ज्वाली महरी की लड़की तो कहती थी कि लड़की सुन्दर है, पर चेतन को पसन्द नहीं।"

तब पंडित जी ने पूरे ज़ोर से अपने लड़के को आवाज़ दी।

चेतन पं० दीनबन्धु और पक्षाघात के रोगी उन के भाई को नीचे बैठक में बैठा कर साहस बटोरता और मन ही मन बीसियों तरह के प्रश्नोत्तर दोहराता आ रहा था।

पंडित जी ने कहा, "इधर बैठो।"

सहमा हुआ वह पायंते पर बैठ गया।

बड़ी मुश्किल से रज़ाई से पाँव निकाल उसे कन्धों पर ही लिये हुए अनन्त उठ कर दरवाज़े तक आया और पत्र खोल कर सुबह के शीतल निर्मल प्रकाश में पढ़ने लगा।

ऊपर आकाश में 'बाल कुटारे' उड़ानें भर रहे थे। एक गौरैया दायीं ओर की मुँडेरे पर बैठी 'चीं' 'चीं' करती फुदक रही थी और ऊषा की लाली का प्रतिबिम्ब सामने के मकान की छत को हलकी सी ललाई प्रदान कर रहा था।

अनन्त ने देखा—जल्दी जल्दी लिखे, टेढ़े मेढ़े अक्षरों से तीन चार पृष्ठ रँगे हुए हैं:—

"अनन्त मैं लाहोर जा रहा हूँ। मेरी सगाई आज हो गई। उन्हीं दीनबन्धु की लड़की चन्दा से। उस पहले दिन, जब बस्ती से वापस आकर मैंने 'ना' कर दी थी, माँ ने एक सपना देखा था। एक सुन्दर लक्ष्मी सी लड़की वस्त्राभूषणों से सजी उस के चरण छूने आ रही थी कि रास्ते ही से मुड़ गई। अब माँ के सपने वैसे नहीं होंगे, पर मेरे स्वप्न......!

रात भर मैं सो नहीं सका। यहाँ मेरी आत्मा घुटी जा रही है। कुन्ती के सम्बन्ध में मैंने जो प्रोग्राम बनाये थे, वे मेरे मन ही में रह गये। पिता जी जब बाज़ार शेखाँ से होते हुए घर आयें तो फ़िर उन के सामने बैठ कर ऐसी बात करना मेरे बस में नहीं। उसी शाम जब मैं तुमसे मिलकर घर पहुँचा तो दुर्भाग्य से पिता जी भी आ गये थे। उनके साथ पं० दीनबन्धु और लकवे की बीमारी में ग्रसित उन के बड़े भाई भी थे। उन को पिता जी ने वचन दे दिया और उन से शगुन का एक रुपया भी ले लिया। फिर पिता जी का वचन, विशेष कर बाहर वालों को दिया हुआ, कभी किसी ने टूटते नहीं

"मैं जो कहता हूँ मेरी खुशी है!" चेतन के पिता ने फिर कड़क कर कहा, "तुम कल देख आओ।"

"अच्छा जी!" भरे हुए गले से इतना कह कर चेतन नीचे उतर आया। ऐसे समय में तनिक सा इनकार भी प्रलय मचा सकता था, इस बात को वह भली भाँति जानता था।

सीढ़ियाँ उतरते उतरते एक दीर्घ-निश्वास उस के हृदय से निकल गया। उसका वह निश्चय, बस्ती में विवाह न करने की उसकी प्रतिज्ञा उसके बार बार दोहराये हुए प्रश्नोत्तर......कुन्ती........



१२

इस घटना के तीन दिन बाद जब चेतन का अभिन्न-हृदय मित्र अनन्त सुबह आँखें मलता हुआ उठा (उठने का मतलब यह कि बिस्तर से उठ कर चारपाई के नीचे पाँव रखने के बदले वह रज़ाई को अपने इर्द-गिर्द लपेट कर बिस्तर ही पर पाँव सिकोड़ कर बैठ गया, क्योंकि इसी को वह सुबह उठना कहा करता था और इसी प्रकार एक-दो घण्टे बैठे रहना सभ्यता का प्रथम लक्षण मानता था) तो उसकी माँ ने आकर उसके हाथ में एक चिट्ठी रक्खी और कहा, "सांझ को चेतन आकर दे गया था। तुम तो आये रात के ग्यारह बजे, इस बीच में वह तीन बार आया, पहली दो बार केवल पूछ गया, तीसरी बार यह चिटी दे गया।"

बड़ी मुश्किल से रज़ाई से पाँव निकाल उसे कन्धों पर ही लिये हुए अनन्त उठ कर दरवाज़े तक आया और पत्र खोल कर सुबह के शीतल निर्मल प्रकाश में पढ़ने लगा।

ऊपर आकाश में 'बाल कुटारे' उड़ानें भर रहे थे। एक गौरैया दायीं ओर की मुँडेरे पर बैठी 'चीं' 'चीं' करती फुदक रही थी और ऊषा की लाली का प्रतिबिम्ब सामने के मकान की छत को हलकी सी ललाई प्रदान कर रहा था।

अनन्त ने देखा—जल्दी जल्दी लिखे, टेढ़े मेढ़े अक्षरों से तीन चार पृष्ठ रँगे हुए हैं:—

"अनन्त मैं लाहौर जा रहा हूँ। मेरी सगाई आज हो गई। उन्हीं दीनबन्धु की लड़की चन्दा से। उस पहले दिन, जब बस्ती से वापस आकर मैंने 'ना' कर दी थी, माँ ने एक सपना देखा था। एक सुन्दर लक्ष्मी सी लड़की वस्त्राभूषणों से सजी उस के चरण छूने आ रही थी कि रास्ते ही से मुड़ गई। अब माँ के सपने वैसे नहीं होंगे, पर मेरे स्वप्न......?

रात भर मैं सो नहीं सका। यहाँ मेरी आत्मा घुटी जा रही है। कुन्ती के सम्बन्ध में मैंने जो प्रोग्राम बनाये थे, वे मेरे मन ही में रह गये। पिता जी जब बाज़ार शेखाँ से होते हुए घर आयें तो फ़िर उन के सामने बैठ कर ऐसी बात करना मेरे बस में नहीं। उसी शाम जब मैं तुमसे मिलकर घर पहुँचा तो दुर्भाग्य से पिता जी भी आ गये थे। उनके साथ पं० दीनबन्धु और लकवे की बीमारी में ग्रसित उन के बड़े भाई भी थे। उन को पिता जी ने वचन दे दिया और उन से शगुन का एक रुपया भी ले लिया। फिर पिता जी का वचन, विशेष कर बाहर वालों को दिया हुआ, कभी किसी ने टूटते नहीं

देखा। बहरहाल सगाई तो हो गई। विडम्बना देखो कि उसी एक बार देखी हुई लड़की को फिर देखने गया। वहाँ क्या हुआ, यह सब तुम्हें बाद में मालूम होता रहेगा।.........

वहाँ जो कुछ हुआ, उसका विवरण यद्यपि चेतन ने उस पत्र में नहीं दिया पर वह कुछ यों है :

उस रात जब चेतन के पिता ने उसे डाँट कर कहा था कि सुबह वह माँ को लेकर लड़की देखने जाय, उस ने सोचा था कि सुबह जब उस के पिता शान्त होंगे और शराब का असर भी उन पर न होगा तो वह उन्हें समझा बुझा कर सब बात कहेगा और यदि हो सका तो कुन्ती की चर्चा भी चलायेगा।

लेकिन दूसरे दिन उस के पिता रात को अधिक पी जाने के कारण नशे की खुमारी ही में पड़े रहे और उस की माँ ने इस बीच में सेर-सेर गरी, छुहारे, बादाम, किशमिश, तालमखाने डाल कर दन्दासा (रंगली दातुन) मेंहदी और मंगल सूत्र के साथ सवा छः सेर की गुथली तैयार कर ली। बनारसी साड़ी और जम्पर और उसी रंग की जुराबें और रूमाल उस ने पहले से मंगा रखे थे। अपनी दो सुनहली अँगूठियाँ तुड़वा कर सिर की सुई भी तैयार करा रक्खी थी। गुथली सी-सिला कर वह हर तरह से तैयार हो गई। फल और मिठाई भी उस ने मँगा ली। जब चेतन के पिता दोपहर के लगभग उठे तो उन का मुँह-हाथ धुलवाते समय उसने उन्हें अपनी सब कारगुज़री सुना दी। तब चेतन के पिता ने आवाज़ देकर चेतन को आदेश दिया कि वह खाना खा कर अपनी माँ के साथ बस्ती जाय, अपने स्कूल के अध्यापक नन्दलाल से मिले और जाकर लड़की देख आये (वे शगुन वहीं

दे देंगे) और इधर से साड़ी और गुथली देकर सगाई पक्की कर आये। विवाह के बारे में पूछें तो कह दे कि दो वर्ष बाद होगा। यह कह कर वे पगड़ी बगल में दबाये हुए सीढ़ियां उतर गये थे। चेतन की माँ से उन्होंने इतना कहा कि खाना वे देसराज के यहाँ खायेंगे।

ये अध्यापक नन्दलाल चेतन के स्कूल ही में छठी श्रेणी को पढ़ाते थे। विचारों से आर्य समाजी थे। उनके घर ही चेतन की भावी पत्नी को देखने का प्रबंध किया गया था।

बस्ती पहुँच कर चेतन ने अपनी माँ और आध्यापक नन्दलाल दोनों से फिर एक बार कहा कि मैं लड़की देख चुका हूँ, आप गुथली दे दीजिए, मैं अब फिर देख कर क्या करूँगा ! लेकिन एक तो माँ अपनी इस लक्ष्मी बहू का मुँह देखने को आतुर थीं, दूसरे वे आर्य समाजी अध्यापक लगे हाथों सुधार का यह शुभ काम करके बस्ती भर में अपने सुधार-कार्य का डंका बजा देना चाहते थे। लड़की को भली-भांति देखने के गुण उन्होंने बड़े उत्साह के साथ चेतन को समझाये। बताया कि समस्त रिश्तेदारों के विरोध के होते भी उन्होंने लड़की को देखकर विवाह किया था। इसके बाद उन्होंने चेतन से अनुरोध किया कि अब जब वह आ ही गया है तो संकोच छोड़ कर एक बार फिर अच्छी तरह लड़की को देख ले।

अब चेतन के लिए कोई चारा न रहा। विवश होकर उसने इस प्रहसन में भाग लेना स्वीकार कर लिया।

उन्हें बस्ती में उन अध्यापक महोदय के मकान के समीप ही एक जगह ठहराया गया। चेतन की माँ अध्यापक महोदय की लड़की के साथ उनके घर चली गई। चेतन इस बात की प्रतीक्षा करता रहा कि कब उसे बुलाया जाता है और कब उसके सिर से यह विपत्ति टलती है।

देखा। बहरहाल सगाई तो हो गई। विडम्बना देखो कि उसी एक बार देखी हुई लड़की को फिर देखने गया। वहाँ क्या हुआ, यह सब तुम्हें बाद में मालूम होता रहेगा।.........

वहाँ जो कुछ हुआ, उसका विवरण यद्यपि चेतन ने उस पत्र में नहीं दिया पर वह कुछ यों है :

उस रात जब चेतन के पिता ने उसे डाँट कर कहा था कि सुबह वह माँ को लेकर लड़की देखने जाय, उस ने सोचा था कि सुबह जब उस के पिता शान्त होंगे और शराब का असर भी उन पर न होगा तो वह उन्हें समझा बुझा कर सब बात कहेगा और यदि हो सका तो कुन्ती की चर्चा भी चलायेगा।

लेकिन दूसरे दिन उस के पिता रात को अधिक पी जाने के कारण नशे की खुमारी ही में पड़े रहे और उस की माँ ने इस बीच में सेर-सेर गरी, छुहारे, बादाम, किशमिश, तालमखाने डाल कर दन्दासा (रंगली दातुन) मेंहदी और मंगल सूत्र के साथ सवा छः सेर की गुथली तैयार कर ली। बनारसी साड़ी और जम्पर और उसी रंग की जुराबें और रूमाल उस ने पहले से मंगा रखे थे। अपनी दो सुनहली अँगूठियाँ तुड़वा कर सिर की सुई भी तैयार करा रक्खी थी। गुथली सी-सिला कर वह हर तरह से तैयार हो गई। फल और मिठाई भी उस ने मँगा ली। जब चेतन के पिता दोपहर के लगभग उठे तो उन का मुँह-हाथ धुलवाते समय उसने उन्हें अपनी सब कारगुज़ारी सुना दी। तब चेतन के पिता ने आवाज़ देकर चेतन को आदेश दिया कि वह खाना खा कर अपनी माँ के साथ बस्ती जाय, अपने स्कूल के अध्यापक नन्दलाल से मिले और जाकर लड़की देख आये (वे शगुन वहीं

उसकी घबराहट बौखलाहट की हद को पहुँच गई।

यह सब कुछ पलक झपकते हो गया था अध्यापक महोदय ने अपनी पत्नी से कहा कि चेतन जी आये हैं और चेतन ने शायद यह कहा था कि उसे प्यास लगी है और फिर शायद पानी पीकर या बिना पानी पिये ही वह वहाँ से चला आया था।

यही वह भेंट थी जिसकी ओर अपने उस पत्र में चेतन ने संकेत किया था। आगे उसने लिखा था।

"अभी तो मैं जा रहा हूँ—लाहौर! फिर कहाँ जाऊँगा, क्या करूँगा, इसका कोई ठिकाना नहीं। 'देश सेवक' लाहौर के सम्पादक पंडित दीनानाथ स्थानीय हिन्दू सभा के दफ़्तर में आये थे। मैंने उन से अपनी साहित्यिक आकांक्षाओं का ज़िक्र किया और बताया कि मैं अपनी वर्तमान नौकरी से ऊब गया हूँ! बस, उन्होंने वादा किया और कहा कि मेरे साथ लाहौर चलो और कोई न कोई प्रबन्ध कर दिया जायगा।

दैनिक पत्र में अनुवाद का काम अधिक होता है, मुझे वह आता नहीं। लेकिन उन्होंने साहस दिलाया है कि ज़रा सा परिश्रम करने से मैं शीघ्र ही अच्छा अनुवादक बन सकता हूँ। जब तक मैं काम न सीख जाऊँ, समाचार पत्र के सप्ताहिक संस्करण के लिए हर सप्ताह एक कहानी लिख दिया करूँ। उस समय तक मेरे खाने-पहनने का प्रबन्ध वे कर देंगे। यदि भली-भाँति काम सीख गया तो कुछ वेतन भी मिलने लगेगा। और फिर हुनर साहब तो वहाँ है ही......

तुम्हारा

चेतन

उसका हृदय प्रति क्षण तीव्रतर गति से धड़क रहा था और उसके चेहरे का रङ्ग भी कुछ फीका सा पड़ता जा रहा था। तभी अध्यापक महोदय उसे लेने आ गये।

एक तंग सी ड्योढ़ी से गुज़र कर आँगन तक जाते जाते चेतन का गला सूख गया। रङ्ग शायद और भी फीका पड़ गया। आँगन में पहुँच कर उसने देखा कि सामने (उन अध्यापक की उपस्थिति के कारण) डेढ़ बालिश्त का घूंघट निकाले उसकी माँ बैठी है। पास ही तन कर (सुधारक की पत्नी होने के गर्व से या इस लिए कि पर्दे की रस्म उसने छोड़ रखी थी और बस्ती में शायद वही पहली स्त्री थी जिसने इतना साहस किया था) उन अध्यापक महोदय की पत्नी बैठी थी। तब चेतन को कुछ ऐसा आभास हुआ कि दायीं ओर एक चटाई पर वही मोटी मुटल्ली लड़की बैठी है। अपनी झुकी हुई निगाहें उठा कर उसने अपने इस भावी मँगेतर को देखने का प्रयास भी किया, पर चेतन उसे आँख भर कर न देख सका। उसकी आँखों के आगे जैसे अँधेरा सा छा गया। उसकी दृष्टि इस बरबस गले मढ़ी जाने वाली मँगेतर पर से फिसलती हुई उसके बराबर ही बैठी हुई एक दूसरी लड़की पर गई। क्षण भर के लिए जैसे वह अँधेरा मिट गया। उसका हृदय और जोर से धड़क उठा। उसे लगा जैसे इस लड़की को उसने पहले भी कभी देखा है। उसे याद आ गया कि जब वह बस्ती के अड्डे पर अपनी इस भावी पत्नी को देखने आया था तो माप माप कर पग रखने वाली जिस सुन्दर लड़की को देख कर वह चौंका था, वह यही तो थी। उस निमिष मात्र की झलक में चेतन को उस किशोरी के मुख का एक भाग, उस भाग को जगमगाता सा मोतियों का कर्णफूल और उसकी चञ्चल आँखों की एक रसीली चितवन ही दिखाई दी। इसके बाद जैसे अँधेरा फिर छा गया और

आभास हुआ जैसे उस ने चेतन को देखा है।

भागता भागता और पुल की दो तीन सीढ़ियाँ एक ही बार चढ़ता हुआ, वह नम्बर एक प्लेटफ़ार्म पर पहुँचा और इससे पहले कि चेतन गेट पर टिकट देकर बाहर निकल जाता, उस ने उसे पा लिया।

"चेतन !" पीछे से उसके कंधे पर उसने थपकी दी।

चेतन मुड़ा—"ओह अनन्त !" और दोनों मित्र एक दूसरे से लिपट गये ! अनन्त उसे गेट में से वापस खींच लाया।

अभी कपूर्थला जाने वाली गाड़ी का इंजन भी नहीं लगा था, इस लिए दोनों मित्र उसी प्लेटफार्म पर घूमने लगे।

"तुमने तो यार एक पंक्ति तक नहीं लिखी, ऐसे लाहौर गये तुम !" अनन्त ने बात शुरू करते हुए कहा "कौन सी गुफा में समा गये वहाँ ?"

चेतन ने बताया कि वे सम्पादक महोदय जिन के साथ वह लाहौर गया था, अजीब शिकारी आदमी थे। सब्ज़ी मण्डी के पास एक सस्ते से होटल में उन्होंने उसके भोजन और निवास का प्रबन्ध कर दिया; दूध वाले से कह दिया कि वह डेढ़ पाव दूध उसे रोज़ दे दिया करे; नाई को हजामत के लिए कह दिया और धोबी को कपड़ों के लिए। चेतन को आश्वासन दिलाया कि वे स्वयं इन सब का बिल दे देंगे और इस प्रकार कुल मिलाकर बाईस रुपये पर उन्होंने उसे अपने समाचार पत्र में अनुवादक रख लिया।

इस विचित्र व्यवस्था पर अनन्त ज़ोर से हँसा और उस ने पूछा, "वे बिल उन्होंने चुकाये भी ?"

"अरे, राम का नाम लो !" चेतन ने कहा, "यह सोच कर कि समाचार पत्र में नौकरी मिल गई है और उन्नति का भी अवसर है, मैंने अपनी साइकिल और कुछ सामान लाहौर मँगा लिया। लेकिन दो

महीने के बाद जब उन सम्पादक महोदय के चंगुल से मैंने मुक्ति पाई तो बिल न चुका सकने के कारण होटल के मैनेजर ने मेरी साइकिल ही रख ली। बाद में दूसरी जगह नौकरी करके पहले महीने का वेतन उन मैनेजर साहब की भेंट चढ़ा कर, बड़ी कठिनाई से मैं उसे लाया।"

अनन्त फिर ज़ोर से हँसा। तब चेतन ने अपने उन अनुभवों की बात की जो उसे पहले पहल समाचार पत्र के दफ्तर में प्राप्त हुए थे।

वे सम्पादक महोदय जो उसे ले गये थे, सारा दिन हुक्के की नली मुह से लगाये रखते थे। कुछ नवयुवक उन्हों ने अपने समाचार पत्र में भरती कर रखे थे, जिन्हें ज़रा सी भी ग़लती हो जाने पर, अपने कमरे में बुला कर वे "क्यों बे गूंगे" कहते हुए उन के हलकी चपतें लगाया करते थे।

उन्हीं में से एक जो कुछ अधिक वयस्क था, 'महात्मा' कहलाता था। वह समाचार पत्र का सम्पादक था।

"आज कल", चेतन ने कहा, "जब लाहौर में कड़ी गर्मी पड़ती है, ये महात्मा रात के समय कमीज़ और बनियाइन आदि उतार कर पंखे के नीचे बैठ जाते हैं और सम्पादकी करते हैं और कभी अपने कमरे से वे सम्पादक महोदय (जो समाचार पत्र के मालिक भी हैं) उधर आ निकलते हैं और 'क्यों बे महात्मा' कहते हुए उसकी पीठ को चपतिया देते हैं।

"गूंगे और महात्मा" अनन्त फिर ठहाका मार कर हँसा और उस ने पूछा "लेकिन उन दोनों में सम्पादक कौन है?"

"नाम उन का जाता है और काम 'महात्मा' करते हैं।" चेतन ने उत्तर दिया।

फिर उस ने बताया कि वहीं पहले पहल उसे इस बात का पता चला कि जिस सम्पादकी के स्वप्न वह देखा करता था, वह वास्तव में कितनी

नारकीय है। दिन को बारह से छः बजे तक और रात को नौ बजे से दो बजे तक दैनिक पत्रों के सम्पादक कोल्हू के बैल की तरह जुटे रहते हैं। जब थक जाते हैं तो आपस में अश्लील और गन्दे मज़ाक करते हैं। चरित्रहीन, विवर्ण मुख, उनींदी खुमारभरी आँखें, अत्यधिक मोटे या बिलकुल मरियल और हर तरह से भूखे—लाहौर के देशी भाषीय पत्रों में काम करने वालों में से अधिकाँश को उस ने ऐसा ही पाया।

उस दैनिक में वह अनुवाद के साथ साथ उस पत्र का 'अपना कहानी लेखक' भी था। बात यह थी कि अनुवाद करना उसे आता न था, इसलिए वह पत्र के साप्ताहिक संस्करण में एक कहानी दिया करता था। इन्हीं कहानियों के बल पर उसे एक दूसरे दैनिक पत्र में जगह मिल गई। एक की देखादेखी लाहौर के सभी दैनिकों ने साप्ताहिक-संस्करण निकालने आरम्भ कर दिये थे। इस दूसरे पत्र में एक अनुवादक का स्थान खाली था। वहाँ वह ले लिया गया, इस शर्त पर कि वह प्रति सप्ताह पत्र में एक कहानी लिखेगा और अनुवाद शीघ्रातिशीघ्र सीख लेगा।

और चेतन ने बताया कि अब वह उस पत्र में सहकारी सम्पादक है, चालीस रुपये पाता है और चंगड़ मुहल्ले में रहता है।

"वे हुनर साहब कभी मिले?" अनन्त ने पूछा।

चेतन ने ज़ोरदार ठहाका मारा। लेकिन इससे पहले कि वह कुछ बताता अनन्त को भाग कर पुल पर से जाने की अपेक्षा लाइनें पार करके अपने डिब्बे में सवार होना पड़ा, क्योंकि इस बीच में इंजन भी आ लगा था, लाइन क्लियर भी मिल चुका था, गार्ड ने सीटी भी दे दी थी और गाड़ी चलने भी लगी थी।

इसके बाद कई महीने अनन्त को चेतन की कोई खबर नहीं मिली फिर सहसा एक पत्र आया। इधर उधर की बातों का उल्लेख कर चेतन ने लिखा था :

"......यह भी कोई जीवन है ? मैं सोचता हूँ, क्या मैं इसीलिए घर से भागा था ? मैंने अनुवाद सीख लिया है और आठ घंटे बिना सिर उठाये अंग्रेजी तारों का अनुवाद करता हूँ, प्रूफ़ पढ़ता हूँ और फिर जुल्म यह है कि इतने काम के बावजूद सम्पादक साहब चाहते हैं कि मैं अब भी प्रति-सप्ताह एक कहानी साप्ताहिक अंक के लिए लिखा करूँ। असहयोग अन्दोलन के दिनों में स्वर्गीय लाला लाजपत राय द्वारा स्थापित नेशनल कालेज जब टूटा तो कुछ लड़के एफ़० ए० ही में पढ़ते थे। कालेज टूटने के बाद, पूछने वाला तो कोई था ही नहीं, इसलिए वे भी बी० ए० (नेशनल) बन गये। हमारे सम्पादक भी वैसे ही बी० ए० (नेशनल) हैं। आर्डिनेन्सों का ज़ोर है. सम्पादक बनने के लिए कोई तैयार नहीं होता, वर्तमान सम्पादकों को बदलने में ज़मानत के माँगे जाने का डर है, इसी परिस्थिति की बदौलत ये साहब १०० रुपया महीना वेतन पा रहे हैं। स्वयं कुछ करते धरते नहीं, व्यर्थ का रोब गाँठा करते हैं। जानते हैं क़ैद के भय से कोई दूसरा व्यक्ति नाम देने को तैयार न होगा, और हुआ भी तो सरकार ज़मानत माँग लेगी।"

"जब से मैंने कहानी लिखने से इनकार किया है, इनका पारा और भी चढ़ा रहता है। कहानी लिखना न हुआ घास छीलना हुआ। पहले तो मेरे पास कुछ लिखा मसाला पड़ा था अब प्रति-सप्ताह नयी कहानी कहाँ से लाऊँ ?

"दिन भर बक बक झख झख रहती है। अखबार में जो ग़लती होती है, वह चाहे उनकी अपनी हो या किसी दूसरे की, ये हज़रत मेरे नाम मढ़ देते हैं।

"और मैं सोचता हूँ क्या जीवन में मेरा यही उद्देश्य था !........"



१४

चेतन को लाहौर गये साल भर हो चुका था जब एक दिन उसके भाई रामानन्द (जो इस बीच में आवारा और निकम्मा रामानन्द के बदले डा० रामानन्द कहलाने या कम से कम अपने आप को कहने लगे थे) उसका पता पूछते पूछते पीपल वेहड़ा चंगड़ मुहल्ला जा पहुँचे।

सुबह का समय था, और चाहे म्यूनिसिपेल कमेटी के भंगी और भिश्ती अपना काम पूरा कर गये थे, लेकिन गन्दगी की गाड़ियाँ भी अपना कर्तव्य पालन कर रही थीं। वास्तव में घोड़ों के अस्तबलों, गन्दी गाड़ियों के अहातों और गूजरों, चंगड़ों, भंगी और चमारों के घरों का सामीप्य होने के कारण भिश्ती चाहे लाख छिड़काव कर जायँ और भंगी चाहे लाख सफ़ाई कर जायँ, चंगड़ मुहल्ले की दशा में कभी कोई अन्तर नहीं आता। अनारकली के समीप ही इतना वेरौनक, गन्दा और ग़रीब इलाक़ा हो सकता है, चेतन के भाई को इसकी कल्पना भी न थी। इधर चंगड़ मुहल्ले में कुछ नयी दुकानें बन गई हैं। पर तब तो सारे

बाज़ार में दो तीन लाँडरियों, एक मैले कुचैले बनिये और दो एक हलवाइयों की दुकानों के अतिरिक्त कुछ भी न था। मोहन लाल रोड की ओर से प्रवेश करके किसी न किसी तरह नाक पर रूमाल रखे रामानन्द 'पीपल वेहड़ा' को जाने वाली गली के सिरे तक पहुँचे। पक्की ईंटों की दो सीढ़ियों के साथ बाज़ार से तनिक ऊँची, पक्की ईंटों ही की गली बनी थी। सामने एक ऊँचा पक्का मकान था, जिसकी खिड़कियों पर गहरे सरदई रंग का वार्निश भी था। रामानन्द ने सुख की साँस ली कि आख़िर वे साफ़ स्वच्छ जगह पहुँच गये। किन्तु जब लाला भगवानदास का मकान पूछते हुए, वे कुछेक पग चल कर, उस नये मकान के पास से दायीं ओर की गली में मुड़े तो सहसा उन्हें नाक पर रूमाल रखना पड़ा—गोबर की एक तीखी बू उन की नाक में घुस गई और इसके साथ ही किसी नारी का कर्कश स्वर उन के कान में पड़ा जिस के एक वाक्य में लगभग सब की सब गालियाँ थीं। (कदाचित पहले कभी वे यह सावधानी न बर्तते, पर अब तो वे डाक्टर हो गये थे और दुर्गंध से उन्हें नयी नयी उपेक्षा हो गयी थी) एक दो पक्के मकानों के अतिरिक्त इस गली में सब कच्चे मकान थे। इन में चंगड़ रहते थे। इसी गली का नाम वास्तव में 'पीपल वेहड़ा' था। लाला भगवानदास ने अपनी वैश्यवृत्ति के कारण असल और सूद मिला कर इन्हीं चंगड़ों में से कुछ की झोपड़ियाँ हथिया ली थीं और दो तीन पक्के मकान खड़े कर लिये थे।

गली के सिरे पर ही अपने कच्चे मकान की देहरी पर एक काला भुजंग चंगड़ नंगे बदन तहमद लगाये मज़े से बैठा हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। उसी से चेतन के भाई ने लाला भगवानदास का पता पूछा और जब उस ने पास ही के पक्के तीन मंज़िले मकान की ओर संकेत कर दिया तो मकान के पास जाकर रामानन्द ने चेतन का नाम लेकर आवाज़ दी।

किसी ज़माने में शायद यहाँ खुली जगह होगी और यह स्थान वेहड़ा अर्थात् आँगन कहलाता होगा। हो सकता है पीपल का कोई पेड़ भी यहाँ कहीं हो, किन्तु उस समय तो दोनों में से एक चीज़ भी वहाँ न थी। मकान के साथ छः सात फुट जगह खाली थी जिसे पक्की, कंधों तक ऊँची दीवार गली से अलग कर रही थी। यह जगह पक्की बनी हुई थी। इस के बीचोंबीच एक बड़ी नाली थी, जो सारे मकान का गन्दा पानी लाकर गली की नाली में मिला देती थी। नाली की जो दशा थी उसे देख कर चेतन के भाई ने मकान के निवासियों के रहन-सहन का अनुमान लगा लिया।

रहा मकान, सो वह उन सहस्रों मकानों में से एक था जो लाहौर में सिर्फ किरायेदारों के लिए बनवाये जाते हैं।

आवाज़ सुनकर ड्योढ़ी के दायीं ओर के निचले कमरे से (जिस के दोनों किवाड़ों पर नीली नयी चिकें लटक रही थीं) चेतन निकला। कमर तक बदन नंगा था और कमर के नीचे तहमद लटक रहा था। अपने बड़े भाई को देख कर खुशी की एक 'ओह' चेतन के मुँह से निकल गई और वह एक दम उनके चरणों पर झुक गया। फिर वह उन्हें अन्दर ले गया।

अँधेरा, सील-भरा कमरा, दीवारों पर पलस्तर ऐसा मालूम होता था कि गिरा-ही चाहता है। खिड़की अथवा रोशनदान एक भी न था। बस एक दरवाज़ा एक अँधेरे से आँगन में खुलता था। इस दरवाज़े को चेतन प्रायः बन्द ही रखता था और बन्द सील भरे कमरों से जैसी बू सी आने लगती है वैसी ही दम घोटने वाली बू कमरे से आ रही थी। कमरे में अलमारी भी कोई न थी। योंही दीवार में दो जगह ताक़ बनाकर तख्ते लगा दिये गये थे। छत काली स्याह थी जिस से मालूम होता था कि पहला किरायेदार वहाँ अवश्य ही रसोई भी बनाता रहा होगा। नीचे सीमेंट का फ़र्श था जिस में पेवन्द लगे थे। लेकिन कमरा

साफ़ था और चेतन के शरीर की धूल बता रही थी कि उस ने अभी अभी उसे साफ़ किया है। फ़र्नीचर के नाम एक कोने में स्याह मेज़ पड़ी थी। उस के पास बिना बाजुओं की एक काली गद्देदार कुर्सी थी। रोशनी के लिए दीवार में कील गाड़ कर एक बिजली का बल्ब लटकाया गया था।

"यह मेज़ कहाँ से लाये हो?" चेतन के भाई ने कहा, "बना तो खूब है और है भी आबनूस की लकड़ी का, लेकिन लगता तो सेकेंड हैंड* है।"

"शायद थर्ड हैंड"† हँसते हुए चेतन ने कहा, "मैं तो एक कबाड़ी की दुकान से दोनों चीज़ें खरीद लाया हूँ।" फिर तनिक गम्भीर होकर वह बोला, "हम सब एक दूसरे पर निर्भर हैं'। हमारा उतरन ग़रीब बड़े हर्ष से स्वीकार करते हैं और अमीरों का उतरन हम—और वह एक खोखली सी हँसी हँसा।

चेतन के भाई ने तनिक और समीप होकर देखा तो गाढ़े काले रोग़न और पोटीन की सहायता से कई जोड़ ढके हुए दिखाई दिये। न जाने यह मेज़ कितनी बार मरम्मत होने के बाद इस महत्वाकांक्षी लेखक के यहाँ आया था।

"अन्दर ही आ जाइए।"

चेतन के भाई ने ध्यान ही न दिया था कि अन्दर भी कोई कमरा है। अनगढ़ से किवाड़ों को खोल कर चेतन अन्दर गया। उस ने बिजली का बटन दबाया। तब चेतन के भाई ने देखा कि एक अँधेरी कोठरी है, जिसकी दीवारों में बाहर के कमरे जैसे ही ताक़ हैं। एक सस्ती सी चारपाई बिछी है। सील की बू यहाँ पहले कमरे से भी तेज़ है। रोशनदान

---

* पुराना † तीसरे के पास से होकर आया हुआ।

तो दूर, एक झरोखा तक भी कहीं नहीं है और दीवारों पर पलस्तर बहुत जगहों से गिर चुका है! हाँ, ठंडक इस कोठरी में बाहर से अधिक है। वे चुपचाप चारपाई पर लेट गये।

लेकिन वे अधिक देर तक वहाँ लेट न सके। कमरा दोपहर को ठंडा हो जाता होगा, पर सुबह उसमें उमस की मात्रा अधिक थी। वे उठकर बाहर आये। दीवार के साथ लगी एक ईज़ी चेयर चेतन ने बिछा दी और कुर्सी स्वयं खिसका कर उनके पास बैठ गया।

"अजीब जगह लिया है तुमने मकान"! उस के भाई ने पाँव फैला कर उसकी कुर्सी पर रखते हुए कहा। "मैं तो थक भी गया।"

चेतन हँसा और नहाने की सुधि भूल, वैसे ही तहमद लगाये नंगे बदन बैठे उसने अपने भाई को अपने मकान और उस के किराये दारों का परिचय दिया।

पाँच छः भागों में बने हुए उस तिमंज़िले मकान में बीच को एक ड्योढ़ी थी जिसके दोनों ओर सीढ़ियाँ जाती थीं। आंगन साझा था और दस किरायेदार उस मकान में रहते थे। आँगन में एक हैण्ड-पम्प था। नल या कोई स्नानघर उस मकान में न था। इसलिए वह हैण्ड-पम्प ही स्नानघर का काम भी देता था (यद्यपि चेतन वहाँ से बाल्टी भर कर अपने इस रसोईघर नुमा ड्राइंग रूम में ही नहाता था) इस हैण्ड-पम्प के दायीं ओर दो कोठरियों में रंगसाज़ लड़के रहते थे जो दिन भर काम करते और सोने के लिए वहाँ आ जाते थे। नल के दूसरी ओर चेतन के कमरे के सामने एक हलवाई रहता था, जिसकी पत्नी ने अपने इस कमरे को छोटा मोटा मन्दिर बना रखा था। गरीब चंगड़ों के गाढ़े पसीने की कमाई सूद दर सूद के रूप में उन के घर आ रही थी, फिर चंगड़ों की एक दो झोपड़ियों के स्थान पर उनका जो मकान बन गया था, उसमें सन्दिग्ध किस्म के लोग रहते थे। इस के अतिरिक्त उस हलवाई के घर इस बढ़ती हुई जायदाद

साफ था और चेतन के शरीर की धूल बता रही थी कि उस ने अभी अभी उसे साफ़ किया है। फ़र्नीचर के नाम एक कोने में स्याह मेज़ पड़ी थी। उस के पास बिना बाज़ुओं की एक काली गद्देदार कुर्सी थी। रोशनी के लिए दीवार में कील गाड़ कर एक बिजली का बल्ब लटकाया गया था।

"यह मेज़ कहाँ से लाये हो?" चेतन के भाई ने कहा, "बना तो खूब है और है भी आबनूस की लकड़ी का, लेकिन लगता तो सेकेंड हैंड* है।"

"शायद थर्ड हैंड"† हँसते हुए चेतन ने कहा, "मैं तो एक कबाड़ी की दुकान से दोनों चीज़ें खरीद लाया हूँ।" फिर तनिक गम्भीर होकर वह बोला, "हम सब एक दूसरे पर निर्भर हैं"। हमारा उतरन ग़रीब बड़े हर्ष से स्वीकार करते हैं और अमीरों का उतरन हम—और वह एक खोखली सी हँसी हँसा।

चेतन के भाई ने तनिक और समीप होकर देखा तो गाढ़े काले रोग़न और पोटीन की सहायता से कई जोड़ ढके हुए दिखाई दिये। न जाने यह मेज़ कितनी बार मरम्मत होने के बाद इस महत्वाकांक्षी लेखक के यहाँ आया था।

"अन्दर ही आ जाइए।"

चेतन के भाई ने ध्यान ही न दिया था कि अन्दर भी कोई कमरा है। अनगढ़ से किवाड़ों को खोल कर चेतन अन्दर गया। उस ने बिजली का बटन दबाया। तब चेतन के भाई ने देखा कि एक अँधेरी कोठरी है, जिसकी दीवारों में बाहर के कमरे जैसे ही ताक़ हैं। एक सस्ती सी चारपाई बिछी है। सील की बू यहाँ पहले कमरे से भी तेज़ है। रोशनदान

---

* पुराना † तीसरे के पास से होकर आया हुआ।

तो दूर, एक झरोखा तक भी कहीं नहीं है और दीवारों पर पलस्तर बहुत जगहों से गिर चुका है ! हाँ, ठंडक इस कोठरी में बाहर से अधिक है। वे चुपचाप चारपाई पर लेट गये।

लेकिन वे अधिक देर तक वहाँ लेट न सके। कमरा दोपहर को ठंडा हो जाता होगा, पर सुबह उसमें उमस की मात्रा अधिक थी। वे उठकर बाहर आये। दीवार के साथ लगी एक ईज़ी चेयर चेतन ने बिछा दी और कुर्सी स्वयं खिसका कर उनके पास बैठ गया।

"अजीब जगह लिया है तुमने मकान" ! उस के भाई ने पाँव फैला कर उसकी कुर्सी पर रखते हुए कहा। "मैं तो थक भी गया।"

चेतन हँसा और नहाने की सुधि भूल, वैसे ही तहमद लगाये नंगे बदन बैठे उसने अपने भाई को अपने मकान और उस के किराये दारों का परिचय दिया।

पाँच छः भागों में बने हुए उस तिमंज़िले मकान में बीच को एक ड्योढ़ी थी जिसके दोनों ओर सीढ़ियाँ जातीं थीं। आंगन साझा था और दस किरायेदार उस मकान में रहते थे। आँगन में एक हैण्ड-पम्प था। नल या कोई स्नानघर उस मकान में न था। इसलिए वह हैण्ड-पम्प ही स्नानघर का काम भी देता था (यद्यपि चेतन वहाँ से बाल्टी भर कर अपने इस रसोईघर नुमा ड्राइंग रूम में ही नहाता था) इस हैण्ड-पम्प के दायीं ओर दो कोठरियों में रंगसाज़ लड़के रहते थे जो दिन भर काम करते और सोने के लिए वहाँ आ जाते थे। नल के दूसरी ओर चेतन के कमरे के सामने एक हलवाई रहता था, जिसकी पत्नी ने अपने इस कमरे को छोटा मोटा मन्दिर बना रखा था। गरीब चंगड़ों के गाढ़े पसीने की कमाई सूद दर सूद के रूप में उन के घर आ रही थी, फिर चंगड़ों की एक दो झोपड़ियों के स्थान पर उनका जो मकान बन गया था, उसमें सन्दिग्ध किस्म के लोग रहते थे। इस के अतिरिक्त उस हलवाई के घर इस बढ़ती हुई जायदाद

को सम्हालने वाला कोई पैदा न हुआ था। इन्हीं सब कारणों से सुबह शाम वहाँ भगवान की अराधना में घंटे घड़ियाल बजा करते थे।

दूसरी मंज़िल में चेतन के ऊपर वाले दो कमरे इन्श्योरेन्स में काम करने वाले एक क्लर्क और उस के साथी ने ले रखे थे। साथी की माँ भी वहीं रहती थी। रसोईघर कोई था नहीं, इसलिए वे ऊपर के कमरे ही में रोटी पकाते थे। जिस दिन कभी बादल होते और हवा तेज़ चलती तो उन के रसोईघर नुमा कमरे का धुँआ चेतन के इस स्नानघर-रूपी-ड्राइङ्ग रूम में आ जाया करता। ड्योढ़ी के ऊपर अधछते आँगन और पिछली दो कोठरियों में एक कम्पोज़ीटर और उस की विधवा भावज तथा उस के दो बच्चे (दस बारह वर्ष की एक लड़की और सात आठ साल का एक काना लड़का) किसी न किसी तरह जीवन के दिन व्यतीत कर रहे थे।

हलवाई के ऊपर प्रायमरी स्कूल का एक अध्यापक रहता था।

तीसरी मंजिल के तीनों हिस्सों पर तीन बरसातियाँ थीं, जिनमें क्रमशः एक खोंचेवाला, एक डाकिया और एक पनवाड़ी सपरिवार रहते थे। जलती धूप हो अथवा चुभती सर्दी, खाना उन्हें बरसाती के आगे, खुली छत पर पर्दा सा लगा कर पकाना पड़ता था।

इन सब नौ दस किरायेदारों के लिए तीन शौचालय थे और शेष 'बैठके', 'स्नानगृह', 'शयनगृह', और 'रसोईघर' आदि का काम वे सब अपने उन्हीं दो कमरों से लेते थे।

गर्मियों में सोने का प्रबन्ध यों होता—निचली मंज़िल वाले नीचे मकान के बाहर नाली पर चारपाईयाँ बिछा कर सोते। बीच की मंज़िल में रहने वाले बरसातियों के ऊपर सोते, बरसातियों वाले अपनी बरसातियों के सामने।

इस मकान और उसके किरायेदारों का परिचय देकर चेतन ने

कहा, 'आपको यह सुन कर आश्चर्य्य होगा कि ऐसे घटिया मकान के ये दो कमरे भी मुझे बड़ी दिक्कत से मिले। लाहौर के गली मुहल्लों में किसी अविवाहित युवक के लिए किसी कमरे का ले लेना आसान बात नहीं। साथ में कोई स्त्री होनी चाहिए, चाहे वह माँ, बहन, चाची, ताई, भावज, बुआ, यहाँ तक कि कहीं से भगाई हुई ही क्यों न हो।

यहाँ चेतन ने ठहाका लगाया और फिर बोला, "लेकिन मैंने भी इन लोगों को खूब बनाया। हुआ यों कि यहाँ सब्ज़ी-मण्डी के उस होटल को छोड़ने के बाद मैं हुनर साहब से मिला। उनका घर मज़ंग में है। बड़े तपाक से मिले। बोले, "तुम यहीं रहो। रात को दफ़्तर का काम खत्म कर के इकट्ठे आ जाया करेंगे।" जालन्धर में दुनिया भर के कवियों की रचनाएँ अपने नाम से सुना कर वे मुझ पर बड़ा रोब जमा आये थे। मन ही मन में मैंने उन्हें अपना गुरु भी मान लिया था। उनके इस प्रस्ताव पर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। लेकिन अभी महीना खत्म भी न हुआ था कि उन्हों ने, यह बता कर कि सोलह रुपया मकान का किराया उन्हें देना पड़ता है, आठ मुझ से माँग लिये।"

रामानन्द चुपचाप सुनते रहे।

"उन्हों ने यह प्रस्ताव भी किया," चेतन ने बात को जारी रखते हुए कहा, "कि मैं रोटी भी वहीं से खाऊँ और वे इस सब के बीस रुपये मुझ से ले लिया करेंगे। कहने लगे, "अपना आदमी साथ हो तो बिमारी-इमारी में सौ मदद मिल जाती है।" और तनिक हँसते हुए चेतन बोला, "बस उसी दिन शाम को मैं मकान की खोज में निकल पड़ा। यह भी इच्छा थी कि दफ्तर के पास कहीं मिल जाय तो रात को उनींदी आँखें लिये मील डेढ़ मील चलकर मज़ंग पहुँचने की मुसीबत से छुट्टी मिले। लेकिन पाँच छः जगह पूछने पर ही पता चल गया कि कुंवारे के लिए किसी सभ्य इलाके में कोई कमरा

कराये पर ले लेना कुछ आसान बात नहीं।"

"इस चंगड़ मुहल्ले में भी," चेतन ने हँसकर कहा, "ड्योढ़ी के ऊपर दरम्याने में रहने वाली विधवा ने पूछा कि मैं अकेला ही आऊँगा या सपत्नीक ? तब मैंने कह दिया कि पत्नी तो मेरे है, पर अभी उसे परीक्षा देनी है, इसलिए वह साथ न आयेगी।

चेतन के भाई ने हँसकर कहा, "लेकिन परीक्षाएँ तो हो चुकीं।"

चेतन बोला, "पूछती थीं, पर मैंने कह दिया कि मेरी पत्नी प्रान्त भर में सर्व-प्रथम रही है, इसलिए वहीं स्कूल में उसे अध्यापिका की जगह मिल गई है, अब मैं प्रयास करूँगा कि उस की बदली यहाँ लाहौर हो जाय।"

इस पर दोनों भाई खूब हँसे। जब चेतन अपने संबन्ध में सब कुछ बता चुका तो उसने अपने भाई से उनका हाल चाल पूछा और उसे मालूम हुआ कि उसके भाई ने इस एक वर्ष में दांतों की डाक्टरी पूरी तरह सीख ली है। न केवल यह, बल्कि कराची से डिप्लोमा मँगा कर पूरे डाक्टर बन गये हैं।

यह सुन चेतन ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और कहा कि यह उन्होंने बहुत अच्छा किया। तब वह स्वयं नहाने और अपने भाई के नहाने खाने की व्यवस्था करने लगा।

—०—

१५

पंडित बनारसी दास की दुकान पर सारा दिन ताश खेलने वाले, माँ के द्वारा 'बुद्धू' पुकारे जाने वाले, सदैव मैले तहमद और कुर्ते में मस्त चेतन के बड़े भाई रामानन्द और उस सुबह साफ़ (यद्यपि पुराने) सूट में आवृत, सिर पर मोतिया रङ्ग की पगड़ी सजाये, सस्ती लेकिन सुन्दर टाई बांधे अपने इस छोटे भाई के घर अचानक आ धमकने वाले इन डाक्टर रामानन्द में आकाश पाताल का अन्तर था।

इस डेढ़ वर्ष के अर्से में वह आवारा, निकम्मा और नालायक युवक किस प्रकार डाक्टर कहलाने योग्य हो गया, यह एक लम्बी कहानी है। संक्षेप में इतना कहना पर्याप्त है कि कराची से एल० डी० एस-सी की डिग्री लेकर आने वाले एक दाँतसाज़ डाक्टर से चेतन की मित्रता थी। जब चेतन के इन भाई साहब की बेकारी और उस पर उनकी पत्नी की कर्कशता ने माँ का जीवन दूभर कर दिया और लांडरी के ऋण के अतिरिक्त और भी तीन चार सौ रुपया अपने इसी सुयोग्य पुत्र की बदौलत मां के सिर चढ़ गया तो चेतन की माँ ने, जब चेतन एक बार जालन्धर गया था, उस पर ज़ोर दिया कि वह अपने भाई को भी किसी न किसी तरह कहीं काम पर लगाये। उसी दिन हँसी हँसी में चेतन ने अपने उस डाक्टर मित्र से पूछा कि वह उसके भाई को अपना शिष्य क्यों नहीं बना लेता। उसने हाँ कर दी। चेतन ने भाई के सामने प्रस्ताव रक्खा और डाक्टर बनने के लाभ पर एक छोटा मोटा लेक्चर भी दिया। चेतन के बड़े भाई स्वयं घर में प्रति क्षण होने वाली इस कलह से ऊब चुके थे, उस से पिंड

छुड़ाना चाहते थे और घर के बाहर नरक तक में भी जाने को तैयार थे। इसलिए उन्होंने झट चेतन का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। फिर इस काम में उनका मन इतना लगा कि उन्होंने परिश्रम करके उसे सीख लिया और उन्हीं डाक्टर साहब की सहायता से कराची के डेंटल कालेज से एल० डी० एस-सी का डिप्लोमा भी ले लिया।

माँ हैरान थी कि उसका यह पुत्र जो कभी किसी काम में जी न लगाता था, जिसे ताश और शतरञ्ज से दिन भर काम रहता था, किस तरह इतना परिश्रमी हो गया। चेतन के भाई उन डाक्टर साहब के यहाँ सुबह जाते और सांझ को सूरज छिपे वापस आते। उनकी वे आवारों की आदतें भी जाती रहीं। तहमद छोड़ सूट पहनना और चीखने के स्थान पर धीरे बोलना भी उन्होंने सीख लिया था। यद्यपि नये सूट के पैसों को लेकर घर में काफ़ी चखचख हुई थी और आखिर चेतन के भाई ने अपने पिता की मोटी जीन की पुरानी वर्दी को ठीक कराके सूट की शकल दे दी थी और इस तरह रेलवे गार्ड से लगने लगे थे, लेकिन डाक्टर बनने की कल्पना ही से उनके रहन सहन में एक अभूतपूर्व परिवनर्त आ गया था।

वास्तव में पं० शादीराम ने अपने बच्चों की प्रवृत्तियों की ओर कभी ध्यान न दिया था। यों तो वे चाहते थे कि उनके लड़के ई० ए० सी० और आई० सी० एस० से कम न बनें, पर इन शब्दों के अर्थ तक अपने बच्चों को समझाने की कोशिश उन्होंने कभी न की थी। कभी कभी 'रिलीविंग' के अपने दौरों से अथवा किसी दूरस्थ स्टेशन से आना और मार-पीट, झिड़क, कोस जाना—बस इस पर ही उनका यह जोश समाप्त हो जाता था।

चेतन के इस बड़े भाई की रुचि बचपन ही से ऐसे कामों की ओर थी, जिनमें दिमाग से अधिक हाथों का दखल हो। बचपन में वे

खिलौने बनाया करते थे । स्कूल में शेष सब विषयों में चाहे फेल हो जायँ, पर ड्राइंग में बड़े अच्छे नम्बर पाते थे । स्वयं ही कई चित्र भी उन्होंने बनाये थे । फिर जब कालेज के दिनों में चेतन के सिर पर बिस्तर उठवा कर घर से भागे थे तो दिल्ली जाकर एक आर्टिस्ट के शागिर्द हो गये थे ।

वहाँ से सौभाग्य वश पं० शादीराम के एक मित्र उन्हें ले आये । तब पंडित जी ने वापसी पर अपने इस सुपुत्र की खूब गत बनाई थी । जो भी मित्र आता उस के सामने वे उसे कान पकड़ कर ले आते और—"यही मेरा सुपुत्र है जो दिल्ली भाग गया था"—इन शब्दों में उन का परिचय कराते और दो चार मधुर वचनों के चांटे लगा कर वापस भेज देते ।

इस पर तुर्रा यह कि उन्हें फिर कालेज में दाखिल कर दिया गया । वे माँ के सामने कितना ही रोये, किन्तु न माँ को अपने पति और न पुत्र को अपने पिता के सामने इनकार करने का साहस हुआ । लेकिन जब परीक्षा के लिए फ़ार्म भेजे जाने लगे तो प्रिन्सिपल ने उन का फ़ार्म रोक लिया, क्योंकि उन के लेक्चर बहुत कम थे । तब मन ही मन चेतन के भाई ने सन्तोष की साँस ली थी ।

पिता तो चाहते थे कि उन का पुत्र फिर से कालेज में प्रविष्ट हो, पर पुत्र ने इस बीच में कुछ साहस बटोर लिया था, इस लिए बात जब चली तो उस ने आगे पढ़ने से साफ़ इनकार कर दिया ।

पिता ने समझा लड़का जवान हो गया है, कहीं बिगड़ न जाय इसलिए उस की शादी कर दी । लड़का तो क्या सुधरता, हाँ एक लड़ाकी बहू और दो बच्चों का बोझ उन के सिर पर लद गया ।

अपनी इसी दशा की आलोचना करते हुए चेतन के भाई ने एक

दिन उस से कहा था :

"अब तुम ही बताओ यदि मैं नालायक और अयोग्य रहा तो इस में मेरा क्या दोष है ? गूदड़ की तरह पीटने से लड़का गूदड़ ही तो बनेगा । जितना उन्होंने मुझे पीटा है, उतना कभी किसी पिता ने अपने पुत्र को न पीटा होगा ?" और उन का गला भर आया था ।

संयत होकर उन्होंने फिर कहा था :

"और फिर व्यक्तिगत रुचि-अभिरुचि का भी तो कुछ प्रश्न है । मुझे पुस्तकें कभी अपनी ओर नहीं खींच सकीं । यदि मैं किसी कला-कौशल की ओर ध्यान देता तो अब तक कुछ का कुछ बन जाता ।

"फिर पिता जी कहते हैं कि मैं कालेज से इसलिए भागा था कि मैं शादी करना चाहता था, (यहाँ वे तनिक हँसे थे ।) पर वास्तव में बात यह थी कि संस्कृत के प्रोफेसर ने पाँच रुपये जुर्माना कर दिया था और मैं किसी तरह भी फीस से अधिक रुपये न पा सका था ।"

"और फिर चेतन", के भाई ने कुछ ज़ोर देकर कहा था, "मुझे यदि मेरी दशा पर छोड़ दिया जाता तो मैं बेकार न फिरता । दिल्ली में अब तक मैं बहुत बड़ा आर्टिस्ट बन चुका होता ।"

चेतन के बड़े भाई आर्टिस्ट अथवा पेण्टर तो न बन सके थे, हाँ डेंटिस्ट ज़रूर बन गये थे ।

चेतन उन दिनों मोहन लाल रोड के एक तंदूर से रोटी खाता था । पर भविष्य में डाक्टर कहलाने वाले उस के ये बड़े भाई वहाँ कैसे खाना खाते और चेतन ही उन्हें तंदूर पर कैसे ले जाता ? इसलिए जब वह स्नानादि से निपट, उन्हें गणपत रोड के होटलनुमा तंदूर से खाना खिला लाया और चारपाइयों को बाहर नाली के ऊपर बिछा कर दोनों भाई बैठ गये तो डाक्टर रामानन्द ने अपने आने का मन्तव्य प्रकट किया।

"निरे इस डिप्लोमे को लेकर मैं क्या करूँ ?" उन्हों ने कहा "डिप्लोमा पा लेना ही तो सफल हो जाना नहीं। सफलता की होड़ तो डिग्री लेने के बाद आरम्भ होती है। अच्छी जगह दुकान चाहिए, दुकान में अपटूडेट सामान चाहिए और फिर नये ढंग से विज्ञापन हो तब कहीं अपना कौशल दिखाने का अवसर डेंटिस्ट को मिलता है। इस सब के बाद यदि उस के हाथों में सिद्धि है तो वह चल निकलेगा, नहीं तो..."

यहाँ डाक्टर साहब ने अँग्रेज़ी की एक लोकोक्ति का उल्लेख किया, जिसका मतलब यह था कि 'डाक्टर की ग़लती धरती में गाड़ दी जाती है, डेंटिस्ट की मुँह बाये उस के सामने आ खड़ी होती है।'

उस आर्थिक समस्या की गम्भीरता के बावजूद, जिसे लेकर वे उस के पास आये थे, चेतन यह सुनकर हँस पड़ा।

"जहाँ तक ग़लती करने का सम्बन्ध है", डाक्टर साहब ने कहा, "उस ओर से मुझे कोई डर नहीं। जालन्धर में डाक्टर चोपड़ा का सब काम मैं ही कर रहा हूँ। लेकिन प्रश्न तो यह है कि यह सब निपुणता दिखाने का अवसर मुझे कैसे मिलेगा ?"

और उन्हों ने बताया कि माँ ने किसी तरह की भी सहायता देने से साफ़ इनकार कर दिया है। "जब मैंने कहीं दुकान खोलने का प्रस्ताव किया और दबी ज़बान से उस के लिए कुछ रुपये की माँग की तो माँ ने लांडरी के दिनों के वे गड़े मुर्दे उखाड़े कि मुझे वहाँ से भागते ही बना।"

तब, आश्चर्य है कि उन की उसी लड़ाकी, कर्कशा पत्नी ने (जिसने एक बार घर में आटा खत्म होने पर दो रुपये देने से इनकार कर दिया था) अपने दो गहने लाकर उन्हें बेचने को दे दिये थे और न जाने किस तरह पैसा पैसा जोड़कर इकट्ठे किये हुए नब्बे रुपये भी उन के सामने ला रखे थे।

चेतन के भाई ने बताया कि इन से वे किसी न किसी तरह सस्ता सामान खरीद कर फ़ीरोज़पुर में दुकान खोल लेंगे। वहाँ कम्पीटीशन* कम है। इस लिए चेतन से वे इतना कहने आये थे कि कम से कम एक वर्ष के लिए वह कुछ रुपये मासिक से उन की सहायता करे, क्योंकि खोलते ही तो दुकान चल न निकलेगी।

इस पर चेतन ने वहीं लेटे लेटे जो कहा उससे क्षण भर के लिए भाई साहब का मुँह उतर गया उसने सामने के मकान की किसी लड़की प्रकाशो का ज़िक्र किया जो कि उसके घर आते ही सामने झरोखे में आ बैठती थी और इतवार के दिन जब वह घर होता तो दिन भर धूप के होते भी वहीं बनी रहती थी और सारे संयम के बावजूद उसका मन भटक जाता था।

"इस तरह भटकने से मैंने सोचा है", चेतन ने कहा, "मुझे ब्याह कर लेना चाहिए। सगाई अब छोड़ी नहीं जा सकती और लड़की जैसी भी है, काफ़ी बड़ी है और आज कल बड़ी लड़कियों पर भरोसा नहीं किया जा सकता। बस्ती के लड़के भी (उस ने हँसते हुए कहा) आखिर हम जैसे ही हैं। मैं सब को जानता हूँ और मैंने निश्चय कर लिया है कि यदि शादी वहीं करनी है तो दो साल तक रुकने की कोई ज़रूरत नहीं।"

और फिर उस ने उन्हीं से पूछा था कि पत्नी के साथ लाहौर में रहता हुआ वह किस तरह चालीस रुपयों में से उन को कुछ भेज सकेगा?

चेतन के भाई कुछ क्षण के लिए निराश हो गये। वे कहना चाहते थे कि विवाह के सम्बन्ध में उसे कम से कम एक वर्ष के लिए रुक जाना चाहिए। जो व्यक्ति अपनी भावनाओं को संयत नहीं रख सकता, वह संसार में कर ही क्या सकता है? उस का वेतन कुछ बढ़

* कम्पीटीशन = Competition = प्रतियोगिता।

जाय, तब शादी करे। विवाह भारी उत्तरदायित्व का काम है और इस उत्तरदायित्व को निभाने के लिए सब से जरूरी वस्तु है – रुपया, जो अभी उस के पास नहीं।

किन्तु उन्होंने वह सब कुछ नहीं कहा। वे स्वयं कुछ रुपयों की माँग कर चुके थे और इस सब भाषण में उनकी स्वार्थपरता प्रकट दिखाई देती, यह बात वे अच्छी तरह जानते थे।

तब चेतन ने धीरे से, स्वयं ही जैसे उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा था कि यदि वे लाहौर में प्रैक्टिस करें तो जो भी उससे हो सकेगा वह अवश्य देगा।

"आपने स्वयं कहा है कि आज कल प्रैक्टिस प्रचार के बिना नहीं चलती", वह बोला था, "फ़ीरोजपुर में आप प्रचार करेंगे या प्रैक्टिस? लाहौर में यदि आप रहेंगे तो निकट रहने के कारण, मैं अवश्य ही आप की कुछ न कुछ सहायता कर सकूँगा। कुछ और नहीं तो रोटी की चिन्ता आप को न रहेगी। फिर जब भी बन पड़ा, धन से भी सहायता करने का प्रयास करूँगा। इन सब बातों के अतिरिक्त मैं कई तरह से प्रचार कर सकता हूँ और प्रचार की सहायता धन की सहायता से कम नहीं।"

वहीं लेटे लेटे उस ने प्रचार के कई ढंग गिना दिये।

—वह समाचार पत्रों में उनके प्रैक्टिस आरम्भ करने की सूचना छपवा देगा।

—स्वयं कालेजों, होस्टलों, दफ़्तरों और सिनेमा घरों में उन के कार्ड विज्ञापन के रूप में बांट आयगा।

—अपने मित्रों से प्रचार करेगा और यद्यपि उस के मित्र इतने धनी-मानी नहीं, किन्तु उन का सम्पर्क और मेल जोल धनी-मानी व्यक्तियों से है।

चेतन ने ये सब बातें कुछ इस ढंग से सुनाईं कि मन ही मन भाई साहब ने फ़ीरोजपुर में प्रैक्टिस करने का विचार तत्काल छोड़ दिया, पर प्रकट उन्होंने इतना ही कहा, "तुम्हें मदद करना हो तो वहाँ भी कर सकते हो। वहाँ दांतों के डाक्टर कम हैं, प्रैक्टिस का क्षेत्र बहुत है। यहाँ ईंट उठाओ तो डेंटिस्ट निकल आता है और मुक़ाबिला बेहद ज्यादा है।"

चेतन ने तनिक जोश से कहा, "मुक़ाबिले से डरना, भाई साहब कायरों का काम है। प्रतिद्वन्द्वता ही वह कसौटी है जिस पर मनुष्य की प्रतिभा खरी खोटी उतरती है। अव्वल तो फ़िरोजपुर में आप चार दिन में तंग आ जायेंगे, (मन ही मन उस ने कहा — मैं आप के स्वभाव को जानता हूँ, माफ़ कीजिएगा, लांडरी की बात अभी पुरानी नहीं हुई—किन्तु प्रकट बोला) फिर चल भी निकली तो आप अधिक से अधिक सौ डेढ़ सौ रुपया महीना कमा सकेंगे। लाहौर में यदि प्रैक्टिस चल जाय तो हज़ार रुपया मासिक भी आ जाना बड़ी बात नहीं।"

"हज़ार ?" और उस तंग, सीलभरी, दुर्गन्ध युक्त, गर्म जगह में भैंसों और बैलों के समीप ही बैठे हुए डा० रामानन्द के सामने माल रोड की विशालता और उस विशालता का दिग्दर्शन कराती हुई एक सर्जरी घूम गई और जैसे चेतन पर एहसान का बोझ लादते हुए वे मान गये।

लाहौर जैसे बड़े नगर में थोड़ी सी पूँजी के साथ कैसे काम चलेगा, चेतन के भाई साहब ने इस बात की चिन्ता नहीं की। ये सब बातें उन्होंने अपने छोटे भाई की कार्यपटुता पर छोड़ दीं। हाँ, उस का ब्याह जल्दी से जल्दी करा देने का बोझ उन्होंने अपने कन्धों पर ले लिया और यद्यपि ब्याह की बात चलने पर चेतन की दिलचस्पी उत्तरोत्तर बढ़ रही थी और वह बड़े ज़ोरों से अपने सिद्धान्तों की

व्याख्या कर रहा था, पर उस के इस उत्साह की तनिक भी परवाह न करके चेतन के भाई वहीं चारपाई पर लेट, बड़े मज़े से खुर्राटे लेने लगे।

—०—

१६

दूसरे ही दिन से चेतन ने अपने भाई साहब को लाहौर में जमाने का प्रयत्न शुरू कर दिया।

"इससे पहले कि आपके लिए कहीं दुकान ढूंढ़ी जाय", चेतन ने दूसरे दिन उन से कहा, "आपको व्यवहार-कुशल होना चाहिए।"

भाई साहब कुछ कहना चाहते थे, पर अपनी धुन में उन्हें कुछ कहने का अवसर दिये बिना, चेतन ने अपनी बात जारी रखी। "आपकी दुकान चेम्बरलेन रोड, निस्बत रोड, बीडन रोड, माल रोड या अनारकली में होनी चाहिए। माल या अनारकली में दुकान जमाना हमारे बूते से बाहर है। इतना किराया हम नहीं दे सकते। और फिर वहाँ दुकान जमायें तो उतनी ही तड़क भड़क और उतने ही खर्च का भी प्रबन्ध करें। यह सब इस समय दुष्कर ही नहीं असम्भव है। रहीं शेष जगहें तो वहाँ उपयुक्त स्थान ढूंढ़ने में कुछ समय लग जायगा। इस बीच में आप अपने रोगियों से बातचीत करने का कुछ व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लें।"

भाई साहब नहीं समझे। "क्या मतलब है तुम्हारा?" उन्हों ने कहा

मैं रोगियों से बातचीत करना भी नहीं जानता । जालन्धर में...."
"जालन्धर और लाहौर के रोगियों में अन्तर है", चेतन ने उन की
काट कर कहा, "और फिर जालन्धर में आपको स्वतंत्र रूप से
स करने का अवसर ही कब मिला ? मैं जानता हूँ कि जहाँ तक
का सम्बन्ध है, आपका हाथ खुल गया है । लेकिन शुरू शुरू में
का खुलना उतना लाभदायक सिद्ध नहीं होता, जितना ज़बान का
ा । रोगी आपके पास फँसेगा तो आपको अपना कौशल दिखाने
अवसर मिलेगा, पर यदि रोगी पर आपका प्रभाव ही न पड़ा
....."

चेतन के भाई समझ गये और उसी दिन चेतन ने कोशिश करके
रेलवे रोड के एक सफल और पुराने डेंटस्ट के यहाँ कुछ दिन
ानिक सहायक के रूप में काम करने का अवसर जुटा दिया ।

लेकिन भाई साहब वहाँ अधिक दिन नहीं रह सके और शीघ्र ही
अपनी व्यवहार कुशल बनाने की ट्रेनिंग समाप्त कर देनी पड़ी,
के चेतन एक और उलझन में फँस गया ।

आँगन की पिछली दो कोठरियों में जो पहाड़ी युवक रहते थे उन्हीं
उन के यहाँ एक लड़की (केसर) कहीं से आ गई । कहने को तो
युवकों में से एक उस का चचा कहलाता था और दूसरा भाई, पर
े पर चेतन को मालूम हुआ कि वास्तव में वह उन के गाँव ही कि
। उस की माँ सौतेली है, पिता ग़रीब है और वे दोनों स्वयं आकर
इच्छा से लड़की को उस के चाचा और भाई के पास छोड़ गये हैं
कहीं किसी ज़रूरतमंद के हाथ पाँच सात सौ रुपया लेकर उसे बेच
ा जाय ।

केसर सुन्दर न थी, रंग उस का साँवला था (जो अब कुछ निखर रहा था) उभरे गालों में धँसी छोटी छोटी आँखें थीं और चाल बेढङ्गी थी। किन्तु वह तरुणी थी और तरुणाई ने उस के अंगों में सुन्दरता भर दी थी।

इस केसर में विचित्र उद्दण्डता थी। उसकी आँखों में संकोच था, न लज्जा। जब चेतन पम्प पर पानी लेने जाता और वह अपने दालान की चौखट पर बैठी उसकी ओर देखती तो चेतन बुरी तरह घबरा जाता। वह उससे दृष्टि न मिला पाता और आँखें नीची किये अपने कमरे में चला आता, पर उसकी उपस्थिति और अपना अनुसरन करती हुई उसकी दृष्टि का आभास उसे सदैव रहता।

सोमवार के दिन दफ़्तर में उस की छुट्टी होने के कारण प्रायः वह अपने दोनों कमरे साफ़ करता, फ़र्श धोता और शरीर पर तेल की मालिश करके नहाता। उस समय केसर प्रायः आँगन में रहती। चेतन लाख चाहता कि उस का ख्याल न करे, पर वह जहाँ भी जाता, वह किसी न किसी तरह, उस के सामने चली आती। वह आँगन में होता तो वह अपनी कोठरी की चौखट पर आ बैठती, कमरे में होता तो बाहर उस के चिकों वाले दरवाज़े के सामने किसी न किसी चंगड़ानी से बातें करने लगती, दोपहर को जब वह आराम करके ऊपर छत पर जाता कि वहाँ जाकर कुछ पढ़े तो वह ऊपर बरसाती में रहने वाली डाकिए की पत्नी से मिलने के बहाने वहाँ चली जाती।

यद्यपि चेतन ने उसकी ओर आँख भर कर भी न देखा था तो भी उस घर में उसे और केसर को लेकर बातें होने लगीं। वहाँ रहने वाली स्त्रियों को निन्दा चुगली के अतिरिक्त कुछ काम तो था नहीं। वे बैठे बैठे थक जातीं तो गली मुहल्ले की कलंक-कहानियों में रस पाने लगतीं।

उससे मन ऊब जाता तो लड़ने लगतीं। ऊपर दरम्याने में रहने वाली विधवा के मुँह से उसने एक आध बात सुनी। एक दो बार उसने उससे मज़ाक भी किया कि वह अपनी बहू को बुलायेगा या इधर उधर मन लगायेगा। एक दिन उसने उससे यह भी पूछा कि उसका व्याह भी हुआ है या उसने झूठ ही बोल दिया था।

चेतन ने उससे तो कह दिया कि मुझ पर विश्वास न हो तो मेरे बड़े भाई से पूछ लो। पर उस दिन जब उस के भाई घर आये तो उसने उन से कहा कि इन मुहल्लों में किसी कुँवारे का रहना बड़ा कठिन है और यदि उसे यहाँ रहना है तो उसे शीघ्रातिशीघ्र व्याह कर लेना चाहिए।

इस सब का परिणाम यह हुआ कि भाई साहब को व्यवहार-कुशलता की अपनी ट्रेनिंग बीच ही में छोड़ देनी पड़ी और दूसरे ही दिन उस की शादी के सम्बन्ध में अपना प्रण शीघ्रातिशीघ्र पूरा करने के लिए जालन्धर जाना पड़ा। चेतन ने उन को विश्वास दिला दिया कि इस बीच में वह उन के काम की ओर पूरा पूरा ध्यान देगा।

—०—

१७

चेतन के भाई ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी, व्याह की तिथि वे अत्यन्त निकट ले आये।

इस सम्बन्ध में माँ को मनाने की तो कोई वैसी आवश्यकता न थी। वे तो इस शुभ घड़ी की प्रतीक्षा ही कर रही थीं और कई बार इस

कर्कशा बड़ी बहू से अपनी भावी छोटी बहू के शील स्वभाव की तुलना करके कल्पना ही कल्पना में सुख का अभास भी पा चुकी थीं। आशाओं के सहारे मनुष्य जीता चला जाता है। एक टूटती है दूसरी का सहारा लेता है, दूसरी टूटती है तीसरी को पकड़ता है, फिर चौथी और फिर पाँचवीं को......किन्तु पिता अपने इस पुत्र को विवाहित देखने के लिए कुछ उतने उत्सुक न थे। वे तो उसे पूरा ब्रह्मचारी बना कर ब्याहना चाहते थे। "पुराने आदर्शों और पुराने सिद्धान्तों को छोड़ने ही से देश और जाति की यह दुर्गति हो रही है", वे मूंछों पर ताव देते हुए कहते, "चारों ओर साहसहीन, बलहीन, पीत-वर्ण युवक युवतियाँ दिखाई देते हैं, जो न ठीक तरह हँस सकते हैं न खेल सकते हैं और न जीवन के दूसरे आनन्द लूट सकते हैं।" और फिर वे ठहाका मार कर हँसते और कुश्ती लड़ने और कबड्डी तथा गदका खेलने और राष्ट्र के निर्माण में इन खेलों के महत्व पर ऊँचे स्वर से उपदेश देने लगते।

किन्तु इस सब आदर्शवाद की तह में जो बात थी, उसे चेतन के बड़े भाई भली-भाँति समझते थे। जी भर पीने और जी भर उड़ाने और उस पीने और उड़ाने के लिए जी भर कर्ज़ लेने के कारण पंडित शादीराम ने कभी इतना धन-संचय न किया था कि वे विवाह ऐसी 'व्यर्थ की रस्मों' पर खर्च कर सकते—विशेषतया उस समय जब लड़का ब्रह्मचर्य-आश्रम को भी न पार कर पाया हो। इस लिए आदर्श की बात छोड़कर चेतन के भाई ने इसी आर्थिक कठिनाई का हल उन्हें सुझाया था।

'विवाह तो बस्ती ही में होने वाला है",उन्होंने कहा था, "खर्च अधिक,न होगा। फिर इतनी रस्मों की भी क्या आवश्यकता है ? बस आर्यसमाजी रीति से विवाह हो जाय। गहने कपड़े कुछ माँ ने बनवा ही

रखे हैं, अपने लिए कपड़ों की कोई ऐसी आवश्यकता नहीं, यही पहन कर चले जायँगे। फिर छुट्टी भी आपको अधिक न लेनी पड़ेगी" । और उन्होंने सुझाया था—"आखिर जब शादी करनी ही है तो समय पर क्यों न कर दी जाय ?"

और चेतन के पिता मान गये थे। तय यह हुआ कि प्रावीडेण्ट फंड से साढ़े पाँच सौ रुपया निकाल लिया जाय (पिछला ऋण उसी महीने पूरा जो हो रहा था) गहने कुछ न कुछ बने हुए हैं और सुधार की शादियों में दिखावे की भी कोई वैसी आवश्यकता नहीं।

पंडित शादीराम ने अपनी ओर से स्वीकृति देते हुए इतना और कहा था कि देसराज के होते हुए किस बात की चिन्ता है। वह सब प्रबन्ध बड़ी आसानी से कर देगा।

देसराज जिस तरह का प्रबन्ध कर सकता था, इसका पता बारात जाने के दो दिन पहले भली-भाँति चल गया।

थका हारा चेतन लाहौर से आया था। आँगन में कड़ाही रख दी गई थी और शीरीनी आदि तैयार की जा रही थी। माँ ऊपर व्यस्त थी। बड़े भाई दर्जी से अपना सूट सिलवाने बाजार गये हुए थे। छोटे भाई नित्यानन्द को नया नया अखाड़े जाने का शौक लगा था। आखिर पंडित शादीराम के उपदेश व्यर्थ न गये थे और वह देश के पुनर्निर्माण में पूरी तरह संलग्न था। विवाह हो अथवा मृत्यु उसके लिए अखाड़े जाने के नियम को तोड़ना कठिन था। छुट्टियों के दिन थे। चौदह पन्द्रह वर्ष की उम्र, शादी का अर्थ वह अधिक न समझता था और प्रातः का गया हुआ दस बजे से पहिले अखाड़े से कभी न लौटता था। चेतन ने नीचे ही से मां को प्रणाम किया और पूछा पिता जी किधर हैं ?

पता चला कि देसराज के यहां गये हुए ।

पूछा, "वहाँ क्यों गये हैं !"

पता चला, "साड़ी पर कुछ सलमे का काम कराना था, इसीलिए वहाँ गये हैं।"

देसराज का घर क़िले मुहल्ले में था और क़िले मुहल्ले से तनिक दूर पुरियाँ मुहल्ला है...और वहीं कुन्ती का घर है...और अपने इस विवाह से पहले, वय-सन्धि के अपने उस शर्मीले प्यार की मूर्ति को एक नज़र देखने की आकांक्षा चेतन के मन में प्रबल हो उठी।

नीचे आँगन ही से उस ने आवाज़ दी, "मैं पिता जी को देसराज के यहाँ देखने जा रहा हूँ।"

माँ ने बहुतेरा कहा कि अभी तू आया है, कुछ पानी-वानी पी ऊपर आ....पर चेतन नहीं रुका।

इस बीच में कुन्ती का विवाह हो गया था। अपने विवाह के बाद वह उस से मीलों दूर चली गई थी; किन्तु चेतन की अपनी शादी के बाद तो शायद वह स्मृति से भी परे चली जायगी। जब उसके सम्बन्ध में सोचना भी दूसरे से धोखा करने के बराबर होगा, तो क्यों न सदैव के लिए बिछुड़ने से पूर्व उसे एक नज़र देख लिया जाय!..... यही सोचकर, माँ के अनुरोध की उपेक्षा करके, चेतन अपने पिता को देखने के बहाने उधर चल पड़ा था।

सुन्दर तीखा चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें, अरुणिमा का जैसे उपहास सा करते हुए मुस्कराते ओठ, लाल साड़ी, यौवनभार को सम्हाल सकने में जैसे असमर्थ शरीर, लाल चूड़ा जिसकी चूड़ियों की सुनाई न देने वाली झंकर ने उसके मन प्राण को झंकृत कर दिया था—विवाह के बाद यह था कुन्ती का चित्र। उस के मस्तक के घाव का निशान जो द्वितीया के चन्द्र की भांति माथे पर सुशोभित था और भी साफ़ हो

आया था और वह सब उस के हृदय-पट पर अमिट रूप से अंकित हो गया था।

उन दिनों वह लाहौर से एक दिन के लिए जालन्धर आया था और किसी अज्ञात प्रेरणा से अनन्त को साथ लिये, उधर जा निकला था। अनन्त ही ने उसे बताया था कि 'उस की' कुन्ती का विवाह हो गया है—'भोगपुर सीरवाल' के एक मोटे से पंडित के साथ, जिसने वहीं पुरियाँ मुहल्ले के पास ही, होशियारपुर के अड्डे पर एक प्रेस खोल लिया है।

लेकिन कुन्ती अपनी इस होशियारपुर के अड्डे वाली ससुराल में न थी। अपने मायके ही में कुएँ पर वह अपनी एक सहेली के साथ चर्खों पर पानी भर रही थी। उस से उस की आँखें चार हुईं। कुन्ती की ओठों की मुस्कान और फैल गई। चर्खी उस के हाथ से छूट गई और घर्र-घर्र करती हुई बाल्टी धम से नीचे पानी में जा गिरी। वह स्वयं एक ओर कूद गई और हँसते-हँसते उसके पेट में बल पड़ गये।

उस सुख भरे दिन की मधुर-स्मृति में खोया चेतन क़िले मुहल्ले के पास पहुँच गया। उस ने देसराज के घर में अपने पिता के विषय में पूछा। मालूम हुआ कि आये थे, पर कर्तार सिंह थानेदार के साथ चले गये हैं और जाते-जाते देसराज को भी ले गये हैं।

यह कर्तार सिंह प० शादीराम के लँगोटिया यारों में से थे और उन के आने का एक ही अभिप्राय हुआ करता था। बाज़ार शेखाँ और उस में उस 'तरल आग' का व्यवसाय करने वाले अथवा करने वाली के यहाँ बैठक! तब चेतन ने निर्णय किया कि वह अपने पिता से अवश्य पूछेगा कि उन्होंने उसे क्या वचन दिया था। उस ने तीन पत्रों में

लिखा था कि कम से कम व्याह के चार दिन वे कृपा कर मदिरा से दूर रहें, फिर चाहे प्रलय पर्यन्त बाज़ार शेखाँ में पड़े रहें और उस के पिता ने विश्वास दिलाया था कि उन्हें स्वयं इस बात का ध्यान है, बस्ती में शादी है और उन्हें अपनी इज़्ज़त कम प्यारी नहीं। वे शराब को हाथ तक न लगायेंगे।

लेकिन वह पुरियाँ मुहल्ले की ओर बढ़ चला। इस दुखद प्रसंग को उस ने अपने मन से हटा दिया और अनायास ही एक दूसरा चित्र वहाँ बनने लगा—वह एक बार फिर जालन्धर आया था। कुन्ती इस बीच में एक बच्चे की माँ बन चुकी थी। उसे ख्याल तो न था कि वह उस से मिल सकेगा, किन्तु संयोग-वश उस दिन वह अपने पुरियाँ मुहल्ले वाले मकान की खिड़की ही में बैठी थी। सुबह का समय था। कदाचित स्नान करके सफेद धोती उस ने पहन रखी थी, जिसमें से उस के काले, खुले, लम्बे, सुकोमल केश साफ़ दिखाई दे रहे थे। उस की गोद में उसका बच्चा था चेतन को देखकर वह मुस्करा दी थी। धोती का छोर उस के सिर से खिसक गया था और चेतन का हृदय धक से रह गया था। वह पहले से कहीं अधिक सुन्दर दिखाई देती थी। उस की आँखों में वही चमक थी वही दमक और वही स्नेह......

और बच्चे से कुन्ती ने धीरे से कहा था—ऐसे कि गली से गुज़रता हुआ चेतन सुन ले—"गुड्डू ज़ाओ अपने मामा के पास!" और वह हँस दी थी........और इस एक वाक्य से चेतन ने जान लिया कि उस स्नेह में कितनी पवित्रता आ गई है।

चेतन पुरियाँ मुहल्ले के पास पहुँच गया। गली के मोड़ से उस ने

खिड़कियों की ओर देखा। बंद थीं। वह आगे बढ़ा। कुछ उदासी सी उसे चारों ओर छाई हुई दिखाई दी।

दो स्त्रियां जल्दी जल्दी बातें करती हुईं उस के पास से गुज़र गईं।

"शामो बेचारी ...."

"यह धन ही ऐसा है, यह सम्पत्ति किसी को न फलेगी।"

और आह भर कर पहली ने कहा, "लेकिन जवानी का रँडापा, इससे तो मौत अच्छी है।"

होशियारपुर के अड्डे की ओर जाने वाली ढालुवी गली में वह उतर रहा था कि उसे दो और वृद्धाएं मिलीं।

"अभी उमर ही क्या है!" एक कह रही थी, "न कुछ खाया न पहना।" और दूसरी ने दीर्घ-निश्वास छोड़ा।

चेतन अपने विचारों में मग्न जा रहा था कि गली की नुक्कड़ के पास उसे उस का पुराना मित्र गच्चो* लकड़ी के टाल पर बैठा हुआ मिल गया।

"बड़ा बुरा हुआ!" जैसे उस ने चेतन से शोक प्रकट करते हुए कहा।

चेतन ने प्रश्न-सूचक-दृष्टि से उस की ओर देखा।

"कुन्ती का पति मर गया।"

"कुन्ती का पति!" चेतन अवाक खड़ा रह गया. "पर वह बीमार तो न था।"

"नहीं कोई ज्यादा बीमार नहीं हुआ," गुरबचन ने कहा, "टायफ़ाइड था। बस आठ दिन में खत्म हो गया।"

चेतन वहीं उस के साथ तख्त पर बैठ गया।

*गुरबचन

"साथ तो चलोगे।"

"हाँ चलूंगा।"

और पहली बार चेतन को ऐसा लगा जैसे उस के किसी आत्मीय की मृत्यु हो गई हो। उस मोटे थलथल पिलपिल पंडित के प्रति उस के हृदय में कुछ ऐसा स्नेह उमड़ आया, जैसे वह उस का ही कोई भाई था। मन ही मन उस ने अपने आप को समझा लिया। कुन्ती पंडित पोल्हो राम की दौहित्री थी और पंडित पोल्हो राम उस के पिता के पुराने परिचित थे। तो फिर अर्थी के साथ उसे जाना ही चाहिए। किन्तु अपने पिता की ओर से मित्रता निभाने के विचार की तह में कहीं अज्ञात रूप से गुड्डू की माँ के दुख में अपनी समवेदना प्रकट करने की भावना भी छिपी हुई थी।

चेतन एक डेढ़ घंटा वहीं तख्त पर बैठा रहा। दोपहर होने को आ गई थी। धूप तेज़ हो चली थी, लेकिन अर्थी का कहीं निशान तक न था। चेतन ने एक दो बार सोचा भी कि चला जाय, पर इतना समय गँवा कर निराश लौट जाना उसे स्वीकार न हुआ। आखिर जब दो बजे के लगभग कहीं अर्थी निकली तो वह भी उसके साथ हो लिया।

श्मशान भूमि में उस ने पहली बार कुन्ती को देखा। पुरुष वहाँ किसी दानी द्वारा बनवाये गये पक्के बरामदे में खड़े थे और स्त्रियाँ सामने श्मशान के ऊँचे दरवाजे की छाया में खड़ी रो-पीट रही थीं कि आग देने से पहले शव को लकड़ियों पर रख कर एक वृद्ध ने कहा, "बेटी को ले आओ, मुँह देख जाय।"

तब उस ने देखा कि तपती धूप में नंगे पाँव, सफेद धोती पहने, मूक मर्माहत सी कुन्ती धीरे-धीरे आगे बढ़ी। इन सात आठ दिनों ही में वह अत्यन्त दुबली हो गई थी। हिम ऐसे श्वेत चेहरे पर सिर्फ़ लम्बी नाक ही दिखाई देती थी और आँखें जैसे शून्य में खोई-खोई भटक रही थीं। वह न रो रही थी, न अपनी बड़ी बहन शामो की भांति छाती पीट

रही थी। वह चुप थी जैसे उस की चेतना को भी मृत्यु सूंघ गई हो।

धीरे-धीरे वह चिता के पास आई। वृद्ध सज्जन ने शव के मुंह से कपड़ा हटाया और उस के एक नज़र देख लेने के बाद फिर ढँक दिया। कुन्ती ने पीछे हट कर शव के चरणों को छुआ और जैसे आई थी वैसे ही निस्पन्द और निष्प्राण सी चली गई।

चेतन की निगाहें उस समय तक जलती तपती धरती पर लोटती रहीं जब तक कि वह जाकर स्मशान के दरवाज़े पर खड़ी स्त्रियों में शामिल न हो गई।

वापसी पर चेतन का मन भारी रहा। कुन्ती की वही म्लान विवर्ण मूर्ति उस के सामने रही। ब्रह्मकुण्ड के रँहट पर आकर उस ने जल्दी जल्दी स्नान किया और फिर वह उस के गेट पर आकर इस प्रतीक्षा में खड़ा हो गया कि स्त्रियाँ गुफा से स्नान करके आयें तो वह उन में उस म्लान मुख को एक नज़र और देख ले। कौन जाने फिर वह मुख उसे कभी देखना नसीब होगा या नहीं। कुन्ती की उस आकृति में कुछ ऐसी बात थी, कुछ ऐसी दबी-घुटी, सहमी डरी वेदना, कुछ ऐसी करुणा और अवसाद कि वह प्रयास करने पर भी उसे भूल न पा रहा था।

कुछ देर बाद गुफा की बावली से नहा कर आने वाली स्त्रियाँ ब्रह्मकुण्ड के सामने से गुज़रने लगीं। कुछ अपने जीवन में कई शादियाँ और मौतें देख कर अब स्वयं धीरे-धीरे मृत्यु की ओर सरकने वाली वृद्धाएँ थीं। झुकी कमरें, ढीलता हिलता लहँगा पहने, गीली धोतियाँ हाथों में लिये, गीला दुपट्टा नंगे बदन पर लपेटे अपने बे-दाँत के पोपले मसूढ़ों को चबातीं. मृत्यु के सम्बन्ध में अपनी अनुभूतियों का विनिमय करती चली आ रही थीं। कुछ अधेड़ स्त्रियाँ भी घाघरे अथवा धोतियाँ पहने, गले में गीली कमीज़ें और सिर पर गीले दुपट्टे ओढ़े इन सब मौतों

के मध्य भविष्य की आशाओं के सहारे सीधी चलती, बातें करती, न जाने कौन सी बात पर नाक भौं-चढ़ाती चली आ रही थी। बीच में दो स्त्रियों के सहारे जैसे हर कदम पर बेहोश होने को होती हुई शामो थी। उस के पीछे, चेतन ने देखा, कुन्ती चुपचाप, नंगे पाँवों वैसे ही खोई खोई सी चली आ रही है। गीली धोती उस के शरीर से चिपटी हुई थी और उस के मुख पर वही वेदना थी, आँखों में वही अवसाद ....!

एक बार दरवाज़े पर खड़े चेतन की ओर उस ने देखा। उस के मुख पर वही शून्यता, वही ठंडक, वही मृत्यु की सी सफ़ेदी थी, और फिर निमिष मात्र में उसने वह अनुरागहीन, भावनाहीन, चेतनाहीन, दृष्टि भी फेर ली।

किन्तु चेतन के हृदय में दूर तक वह दृष्टि धँसती चली गई और उसने जैसे सुना वह दृष्टि कह रही थी—बस अब विदा! अब मैं तुम्हारी ओर देख भी न सकूंगी। अब मैं विधवा हूँ। विधवा जिसके लिए हँसना दूर मुस्कराना भी पाप है'। और उस ने सोचा—कहीं वह स्वतन्त्र होता और कहीं वह भी स्वतन्त्र होती—और जैसे स्वतन्त्र देशों के पुरुष स्त्रियाँ . . . लेकिन फिर उसे ख्याल आया कि वह तो शादी करने आया है और उसने चाहा कि सब कुछ छोड़ कर कहीं भाग जाय—कहीं ऐसी दुनिया में जहाँ कोई न हो—न मनुष्य—न समाज और वह पंछी बन जाय—और स्वतन्त्र, स्वच्छन्द आकाश की गहराइयों में उड़ानें भरता फिरे! ....

किन्तु न वह भागा, न पंछी बना। शाम होते होते घर वापस आ गया। थका, ऊबा और चिढ़ा हुआ। उसकी रूह पर जैसे अगणित सदियों से होने वाली मौतों का भार था, अगणित युवतियों के मूक क्रन्दन जैसे उस के कानों में गूँज रहे थे और बेड़ियों में बँधे हुए युवा हृदय जैसे उस की आँखों के सामने सिसक कर, घुट कर दम तोड़ रहे थे।

१८

माँ ने कहा, 'बेटा बड़ी देर लगा दी, मिले नहीं?'

"मिलते कहाँ! चेतन ने चिढ़कर कहा, "देसराज और थानेदार कर्तार सिंह के साथ कहीं बाजार शेखा में बैठे होंगे"—और वह चुप-चाप नीचे बैठक के पास वाले कमरे में जा बैठा।

इस अपने चिर-परिचित कमरे में बैठे-बैठे कई घटनाएँ मूर्तिमान होकर, उस के सामने आईं। वह कुन्ती से पहली भेंट, वय-सन्धि का वह लजाया शर्माया प्यार, वह चुप चाप बिना उसकी ओर देखे उसकी खिड़की के नीचे से गुज़र जाना और वह उस का अनायास अपने नन्हें गुड्डू को बता कर उस के साथ भाई का नाता जोड़ लेना।

धीरे धीरे बाहर सन्ध्या बढ आई और अन्दर कमरे में अँधेरा छाने लगा। मुहल्ले में चिल्ल-पों शुरू हो गई। कुएँ के गहरे पानी में गागरों, घड़ों और बाल्टियों के डूबने की आवाज़ें आने लगीं। चेतन मन ही मन पहचानता रहा—यह घड़ा डूबा है, गहर-गंभीर स्वर से यह गागर, वह बाल्टी। फिर उन आवाज़ों के साथ-साथ लोहे की चर्खियों की चीं-चीं, पानी भरने वालों की 'तू तू', मैं-मैं' और फिर सांझ के साथ ही मुहल्ले में जागने वाले उलाहने, कोसने और गाली-गलौज उस के कानों में गूँजने लगा—

"हाय-हाय मेरा घुटना टूट गया, कहाँ गाड़ा है खूंटा रास्ते में। ईश्वर करे सब कुछ गर्क हो जाय उन का जो हमें यों तंग करते हैं?"

"क्यों तेरे गर्क होने वाला कोई नहीं?—बहू, पोते, पोतियां!"

"यह क्यों बांधी भैंस मेरे दरवाज़े के आगे? खोल दो लाली इसे?"

"अच्छा बड़ी आई खोलने वाली, खोल तो...!"

"दीसो की माँ देख तेरे दीसो ने मेरे गुल्लू का कैसा बुरा हाल किया है ?"

"दीसो बेचारा तो आप सिर दर्द से पड़ा है, वह तो घर से निकला ही नहीं।"

"हाय रे लोगो दौड़ियो, मार डाला मुझे इस बहू डायन ने। नीचे कोठरी में रहती हूँ, वहाँ भी यह साँस नहीं लेने देती। मार डाला, मार डाला रे।"

किन्तु इस समस्त कोलाहल में चेतन मौन स्थिर, निस्पन्द दीवार के साथ पीठ लगाये बैठा रहा और फिर मुहल्ले वालों के चित्रों के ऊपर उस के सामने कई श्रान्त-क्लान्त युवतियाँ तपती रेत पर नंगे पाँव चलती रहीं, वह उन की सहायता को उद्विग्न होता रहा और एक मोटी मुटल्ली फूहड़ सी लड़की उस का दामन खींचती रही।

छोटा भाई कमरे में लैम्प रख गया। बड़ा भाई भी आ गया। छोटा भाई ताश ले आया। दो चार बाज़ियां भी खेली गईं और बे-मन सा वह खेल में योग भी देता रहा, उन से बातें भी करता रहा और हँसता भी रहा।

तभी उस ने सुना – हरलाल पंसारी की दुकान पर नशे में चूर उस के पिता ऊँचे स्वर में किसी की 'श्रेष्ठता' पर मुग्ध होकर, उसे अपने कोप की श्रेष्ठतम गालियाँ प्रदान कर रहे हैं।

ताश का खेल बन्द हो गया।

छोटे भाई ने माँ से जाकर कहा कि पिता जी आ गये हैं।

चेतन जैसे रूठकर दीवार के साथ पीठ लगा कर बैठ गया और बड़े भाई लेट गये।

कोने में मकड़ी के एक नये-नये जाले में एक मक्खी कहीं से आ फँसी और उस भिनभिनाती मक्खी पर मकड़ी तेज़ी से अपना फंदा कसने लगी।

दूसरे क्षण पंडित शादीराम मुहल्ले में खड़े और अपने अभिन्न-हृदय-मित्र लाला रामध्यान पर 'मधुर वचनों' की वर्षा कर रहे थे। उधर से हटकर उन्हों ने चेतन के भाई को आवाज़ दी—"रामानन्द!" और साथ ही पूछा कि चेतन आया है या नहीं।

जब चेतन के बड़े भाई ने बढ़कर बैठक का दरवाज़ा खोला और कहा कि चेतन सुबह का आया हुआ है तो पगड़ी बगल में दबाये लड़खड़ाते हुए पंडित शादीराम अन्दर आये।

पुत्र ने पिता को प्रणाम जैसा कुछ किया और फिर ज़रा तेज़ी से कहा कि वह सुबह से उन की खोज कर रहा है और उस ने लिखा था कि तीन दिन......

पिता ने कड़क कर कहा, "तुम सुनो तो सही! कर्तार सिंह थानेदार आ गया था, उस के साथ आवश्यक काम से......"

पुत्र ने कहा, "मैं सब जानता हूँ, मैं नहीं सुनता।" और उस ने मुँह फेर लिया।

पिता की आँखों में अंगारे जल उठे। शराब के नशे में उन्हें लगा कि उस ज़रा से चिबिल्ले ने उन का अपमान कर दिया है—उन का, जिन्हों ने अपने अँग्रेज़ ट्रैफ़िक इन्सपेक्टर तक के मुँह पर थप्पड़ जमा दिया था। और भी कड़क कर उन्हों ने कहा, "नहीं सुनता, न सुन, एडीटर बना फिरता है......और गालियां!"

"गालियां न दीजिए!" पुत्र चारपाई पर खड़ा हो गया।

पिता पगड़ी फेंक कर और भी मन मन भर की गालियाँ देते हुए उस की ओर लपके कि छोटे भाई ने उन्हें रोक दिया।

चेतन उछला—उस ने केवल यही देखा कि - "आ पहले तेरी ही पहलवानी देखूं—" यह कहते हुए एक बार चेतन के पिता ने छोटे भाई को चारपाई पर गिरा दिया और एक बार छोटे भाई ने पिता को।

सिर का पसीना गले से बहता हुआ पावों की ओर चला जा रहा था। स्टेशन पर खड़ी किसी गाड़ी के इंजन का धुआँ वातावरण को और भी गर्म, और भी 'गल-घोटू'*बना रहा था। उनींदी आँखों को लिये, पसीने से तर, सफेद ज़ीन के सूट पहने कुछ बाबू थकी हुई चाल से इधर उधर घूमते दिखाई देते थे। बाहर अन्धकार किसी भयानक प्रेतात्मा की भाँति नन्हीं-नन्हीं रोशनियों का गला दबा रहा था और दरम्याने दर्जे के मुसाफ़िरखाने में अगणित परवाने, न जाने कब से, गैस के हंडे से टक्करें मार रहे थे और नीचे फ़र्श पर बेगिनती पंख टूटे पड़े थे।

चेतन लकड़ी के खंभे से पीठ लगाये, सूटकेस को पास रक्खे, छोटे-से बिस्तर पर बैठा था।

किसी भयानक स्वप्न की भांति कुछ देर पहले की घटनाएँ उस के सामने घूम रही थीं – उस के भाइयों और उस के पिता में मल्लयुद्ध हुआ था। उस के छोटे भाई ने पिता पर आक्रमण किया हो, यह बात न थी। उस ने तो उन्हें केवल चेतन को पीटने से रोका था और फिर वह किसी प्रकार का प्रहार किये बिना अपने आपको बचाता ही रहा था। लेकिन इतने में ऊपर से कहीं आ गईं माँ। बड़े भाई ने उसे दरवाज़े

*गल-घोटू = गला घोंटने वाला

ही में रोका था। लेकिन पति और पुत्र में मल्लयुद्ध हो और वह खड़ी देखती रहे! डरती, काँपती वह आगे बढ़ी थी। तब—"तेरी ही कोख से ऐसे कपूत पैदा हुए हैं"—यह कहते हुए और गालियाँ देते हुए एक लात पंडित जी ने अपनी पत्नी के जमा दी। दुर्बल, क्षीण काया, हड्डियों का ढाँचा सा शरीर, वह सीधी मेज़ के कोने में जा लगी और अचेत हो गई।

उस समय भाई साहब ने नशे में मस्त, झूमते और अपनी छोटी छोटी आँखों से इस दृश्य का रसास्वादन करते देसराज, तथा इकट्ठे होते मुहल्ले वालों को आग्नेय नेत्रों से देखा, फिर अचेत होती माँ को सम्हाल, उसे ऊपर लिटाकर वे लाठी उठा लाये और सब से पहले देसराज की ओर लपके और फिर तमाशाइयों की ओर। उधर से पलट कर उन्होंने छोटे भाई को पिता के निर्दयी पंजों से बचाया।

"तेरी यह हिम्मत!" पंडित शादीराम ने लाठी उठा ली।

तब चेतन फ़र्श पर अपने पिता के सामने बैठ गया कि जो कुछ कहना है उसे कह लिया जाय! किन्तु पाँव की ठोकर से उसे ठेलकर पंडित जी अपने उस बड़े पुत्र की ओर बढ़े। उन का वार बचाकर बड़े भाई ने उन्हें एक ही दाँव में नीचे रख लिया और छोटे बड़े दोनों भाइयों ने उन्हें उनकी ही पगड़ी के साथ कस कर चारपाई से बाँध दिया।

कुछ क्षण के लिए स्तब्ध सा बैठा चेतन यह सब दृश्य देखता रहा। फिर उसने अपना छोटा सा बिस्तर—जो अभी तक बैठक के कोने में पड़ा था—उठाया, सूटकेस हाथ में लिया और स्टेशन की ओर चल दिया। किधर जायगा, कौन सी गाड़ी पर जायगा, उस ने कुछ भी तय नहीं किया। वह चाहता था कि बर्बरता के इस तांडव को और न देखे, इन सदा देनेवाली गालियों को और न सुने और मुहल्ले में घर-घर होने वाली चर्चा से दूर भाग जाय।

पास ही फ़र्श पर सोये हुए किसी व्यक्ति ने शायद किसी मच्छर के काट खाने से अपनी जांघ पर एक थप्पड़ जमाया और करवट बदल ली।

फिर किसी गाड़ी के आने की घंटी बजी और अपनी उनींदी, अलसाई आँखों के साथ एक बाबू गेट पर आ खड़ा हुआ। प्लैटफ़ार्म के अन्दर से कोई यात्री हाथ में गिलास लिये हुए घबराया हुआ सा बाहर निकला और कुएँ की ओर चला गया।

चेतन ने बटन खोलकर अपनी छाती का पसीना पोंछा। परसों उस का विवाह है। वह मन ही मन हँसा। किन्तु इस हँसी के बावजूद उस की आंखें आर्द्र हो गईं।

तभी उस की कल्पना के सम्मुख दो और गीली आँखें फिर गईं। जिन्हें उस ने आज ही सुबह देखा था। क्या दोनों की गीली आँखें मिलकर सुख का एक नया संसार न बना सकती थीं।

और उस सुख के संसार का एक दृश्य उस की आंखों में बस गया—दो भूखी आत्माओं का मिलन, अभावों की पूर्ति, समाज से दूर, जाति उपजाति के भेदों से दूर......लेकिन गड़गड़ करती हुई गाड़ी प्लैट-फ़ार्म पर आगई और खोंचेवालों की तन्द्रिल भारी आवाजों, यत्रियों की निद्रालस चिल्ल-पों और ताँगे वालों के कर्कश स्वरों ने उसके उस संसार को छिन्न भिन्न कर दिया। वह उठा, चुपचाप जंगले के पास जा खड़ा हुआ और टकटकी बांध, सामने के डिब्बे में बैठे यात्रियों को देखने लगा। निमिष मात्र के लिए उसने सोचा—क्यों न वह इसी गाड़ी में चढ़ बैठे। लाहौर को जाने वाली गाड़ी—वह तो साढ़े पाँच बजे आयेगी और अभी सिर्फ़ एक बजा है।

"हैलो, चेतन् !"

हड़बड़ा कर वह मुड़ा और उस ने हाथ भी बढ़ा दिया।

"किन्तु यह तुम किस शिष्टाचार में पड़ गये, गाड़ी पर मुझे लेने

आ गये और फिर इस समय ! इस कष्ट की क्या जरूरत थी।"

मन से खिन्न होने पर भी चेतन ने अनन्त को देख कर एक ठहाका लगाया।

"कौन कमबख्त तुम्हें लेने आया है ? मैं तो स्वयं लाहौर जाने वाली गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

"लाहौर को जाने वाली गाड़ी की ! पागल हो गये हो, उस में तो अभी साढ़े पाँच घंटे हैं और फिर विवाह...?"

अनन्त को उस दम घोटने वाले वातावरण से निकाल कर चेतन सीढ़ियों पर ले आया और वहीं खड़े खड़े शाम की सारी घटना उस ने अपने इस मित्र को सुना दी। अन्त में उस ने कहा, "मैं पक्का निश्चय कर चुका हूँ कि अब मैं विवाह नहीं करूँगा, चाहे पिता जी आकर मेरे पाँव भी क्यों न पड़ें।"

"जैसे वे तुम्हारे पाँव पड़ने के लिए छटपटा रहे हैं !"

अब ठहाका लगाने की उस की बारी थी।

कुछ खिन्न होकर चेतन ने कहा, "मैंने निश्चय कर लिया है कि...

बात काटकर अनन्त ने कहा, "तुम तो पागल हो !" और उस ने तांगे वाले को आवाज़ दी। ताँगा आ जाने पर चेतन के मना करने पर भी उस ने उस का सूटकेस उठाकर उसमें रख दिया।

"बाबू जी किधर जाना है आपको ?" तांगे वाले ने पूछा।

"चौरस्ती अटारी।" चेतन को बरबस बैठाते हुए अनन्त ने कहा और तांगा चल पड़ा।

"लेकिन मैं घर नहीं जाऊँगा !" चेतन ने बैठे बैठे रुँधे कंठ से कहा।

"कौन कमबख्त तुम्हें वहां जाने के लिए कह रहा है।" अनन्त हँसते हुए बोला।

"लेकिन .....

"लेकिन एक शराबी की बात पर गुस्सा होकर तुम इतना बड़ा अन्याय करने जा रहे हो। तुम्हें शर्म आनी चाहिए।"

"मैं यह विवाह बिल्कुल नहीं चाहता, कभी नहीं चाहता !" चेतन ने बच्चों की भांति कहा।

"तुम्हारे भाई से भी मैंने बात की थी," अनन्त ने कहा, "और स्वयं तुमने मुझे क्या लिखा था ? कायर !"

परास्त होकर भी चेतन ने कहा, "वह तो क्षणिक आवेश था। चन्दा को पसन्द तो मैं ने कभी नहीं किया।"

"लेकिन अब इस बकवाद से लाभ ?" अनन्त कुछ क्रोध से बोला, "लड़की के मनोभावों का भी ख्याल किया तुमने ? वह आत्महत्या कर सकती है। उसके माता पिता हैं, नाते-रिश्तेदार हैं। तुम उन सबका इतना बड़ा अपमान कैसे कर सकते हो ?"

एक हाथ में बिस्तर और दूसरे में सूटकेस लिये जब दोनों हरलाल पंसारी की दुकान के सामने से होकर अनन्त के घर की ओर को मुड़े तो पंडित शादीराम अपने घर में अब भी ऊँचे स्वर से गालियाँ देते रहे थे। उनका गला बैठ गया था, आवाज़ भारी हो गई थी, किन्तु गालियों में वही तीखापन था और शायद वे अब भी चारपाई से बँधे थे।

—०—

१६

यद्यपि चेतन के पिता ने पहाड़ जैसी कसमें खाकर इस बात की घोषणा की थी कि वे उस कपूत की बारात में शामिल न होंगे और यद्यपि सारी रात अनन्त के समझाते रहने पर भी चेतन यही कहता रहा था कि वह शादी न करेगा, किन्तु इस बात का श्रेय अनन्त की कार्यपटुता और पंडित वेणी प्रसाद की विनयशीलता को है कि नियत समय पर चेतन की बारात कल्लोवानी से चल पड़ी। चेतन दूल्हा बना और पंडित शादीराम ने पिता के सारे कर्तव्य पूरे किये।

रात भर पंडित जी चारपाई से बँधे पड़े रहे थे। गालियों की अविरल धारा उनकी वाणी में बहती रही थी, यहाँ तक कि बोलते बोलते उनका गला सूख गया और बँधे बँधे उनके बाजू ऐंठ गये और उनका नशा भी लगभग सारे का सारा उतर गया था।

तब उन्होंने थक हार कर, पर और भी भद्दी गालियाँ देते हुए कहा कि उन्हें खोल दिया जाय और वे कुछ न कहेंगे।

उन्हें खोल दिया गया था। वे सीधे देसराज के यहाँ गये। वहाँ से कुछ और पी आये। देसराज को भी उन्होंने साथ लाना चाहा, किन्तु उसने न आने ही में अपनी कुशल समझी।

घर आकर पंडित जी ने थर्राती हुई आवाज़ में पूछा, "कहाँ है वह सुअर!"

मतलब चेतन से था। बड़े भाई ने दरवाज़े की चौखट पर बैठे बैठे कहा "वह चला गया है।"

पंडित जी तनिक चौंके, किन्तु पूर्ववत गालियाँ देते हुए उन्होंने कहा उन्हें इसकी जरा भी परवाह नहीं, उन की ओर से चाहे शादी हो न हो और चाहे सब मर जायँ।

और फिर उलाहने के स्वर में लेकिन उसी कड़कड़ाती आवाज़ से ोंने कहा कि जिस पुत्र को अपने पिता का इतना भी ख्याल नहीं : जो नशे में कही गई उस की बात पर इतना गुस्सा हो सकता है, इसकी जरा भी परवाह नहीं करते। और उस अपने नालायक लड़के गालियाँ देते हुए उन्होंने घोषित किया कि वे स्वयं सुबह चले ँगे।

.लेकिन जितनी अधिक वे गालियाँ देते थे, जितने अधिक वे कते थे, उतना ही अधिक उन के हृदय की दुर्बलता का पता ता था।

चेतन पर गालियों के द्वारा अपना क्रोध उतार कर वे अपने दूसरे । की ओर पलटे।

किन्तु भाई साहब शायद उन के हृदय की इस दुर्बलता को भाँप थे। घर वालों की परवाह पंडित जी ने कभी न की थी। दुनिया भी उन्हें कुछ परवाह न थी। लेकिन उन्हें अपनी बात का सदैव न रहता था। और चेतन के चले जाने पर पंडित वेणी प्रसाद के नने उन्हें लज्जित होना पड़ेगा, यही डर उन के मन में किसी ज्ञात स्तर के नीचे दबा बैठा था, यद्यपि गालियों के आधिक्य और वाज़ की कड़क में वे उसे दबा देना चाहते थे। अतः ज्योंही होंने कहा, "आओ अब जिस जिस में बल हो मुझ से कुश्ती लड़ े।" तो भाई साहब अवसर उपयुक्त जान कर उन के पाँव पड़ गये, ़ी मांग ली और कहा कि उन्होंने तो सिर्फ उन्हें चेतन को मारने रोका था और भावावेश में वे रोने लगे।

अपने बड़े भाई का अनुसरण करते हुए छोटे भाई ने भी पहले पांव पड़ कर माफी माँग ली और फिर वह भी रोने लगा।

पंडित शादीराम स्वभाव से क्रूर थे, कठोर थे तथा अत्याचारी भी उन्हें कहा जा सकता है, पर इसके साथ ही उन के हृदय में कहीं न कहीं उदारता और कोमलता भी यथेष्ट मात्रा में दबी पड़ी थी। इसी कोमलता के कारण वे अपने शत्रु को माफ़ कर देते थे और इसी कोमलता के कारण जब किसी मित्र अथवा निकट सम्बन्धी की बेवफ़ाई उन के मर्मस्थल पर चोट पहुँचाती थी तो वे बच्चों की तरह फूट फूट कर रो पड़ते थे।

पुत्रों के इस व्यवहार ने शायद उन के मर्मस्थल पर चोट की थी। उस का गला भर आया और वे भी रोने लगे। माँ तो पहले ही से रो रही थी।

मिट्टी के तेल का लैम्प, जिस ने सन्ध्या के बाद बहुत कुछ देखा था, अब भी धीमे प्रकाश से जल रहा था। चिमनी कुछ काली हो गई थी और उस के धीमे प्रकाश में ये चारों व्यक्ति चार पीड़ित आत्माओं की भाँति दिखाई पड़ते थे।

पिता ने पुत्रों को गले से लगाया। रोते-रोते चेतन को गालियाँ दीं और फिर भारी गले से पत्नी से कहा कि चारपाई बिछा दे।

एक घंटे के बाद सभी थके हारे सो रहे थे। पंडित जी के खुर्राटों की आवाज़ भी आने लगी थी। केवल माँ जागती थी और भगवान गजानन से प्रार्थना कर रही थी कि चेतन आ जाय और विवाह का काम कुशलतापूर्वक समाप्त हो जाय!

सुबह जब अनन्त चेतन के घर गया तो उस ने माँ को चुपचाप आँगन में सिर झुकाये माला फेरते पाया।

माँ पूजा कर चुकी तो उस के परामर्श से अनन्त बस्ती से पंडित वेणी प्रसाद को बुला लाया। दोपहर के लगभग पंडित शादीराम जागे और भारी थके गले से उन्होंने पानी माँगा। माँ ने पानी का गिलास उन्हें देते हुए बताया कि बस्ती से पंडित वेणी प्रसाद आये हैं। तब करवट लेकर भरे गले से पंडित जी ने कह दिया कि रामानन्द उन से बात कर ले, मैं किसी काम में दखल न दूँगा और कोई मुझे न बुलाये।

चेतन की माँ से उन का यह निश्चय सुन कर अनन्त ऊपर आया। हैट उतार कर उस ने पंडित जी को साष्टाँग प्रणाम किया और फिर पास बैठकर उस ने चेतन की मूर्खता पर खेद प्रकट किया :

"वह बिल्कुल मूर्ख है। दुनिया का उस ने अभी कुछ नहीं देखा, दुनियादारी उसे आती नहीं........" उस ने कहना शुरू किया।

"वह कम्बख्त समझता है कि वह अब स्वतन्त्र है, कमाता है और उसे किसी की परवाह नहीं," पंडित जी ने रात के थके हुए भारी गले से कहा, "लेकिन मैं हो उस की क्या परवाह करता हूँ। मेरे नाम ही वह कौन सी जायदाद लिख देगा ?"

"नहीं, नहीं, नहीं." अनन्त ने कहा, "उसे ऐसा भ्रम नहीं। वह केवल भावुक, स्वाभिमानी, कवि-हृदय युवक है और बस ! और कवि— उस ने तनिक हँस कर कहा - आधे पागल होते हैं। आप भला किस तरह बच्चे के साथ बच्चा बन सकते हैं। उस का क्या है वह तो मूर्ख है, लेकिन निंदा तो आप ही की होगी।

और एक ओर पंडित जी की उदार-हृदयता और दूसरी ओर चेतन और उसके भाइयों की वज्रमूर्खता का उल्लेख कर (जो शादी-ब्याह के अवसर पर अपने पिता के पीने पिलाने पर आपत्ति करते थे) अनन्त ने बड़ी चतुराई से पंडित जी को राम कर लिया।

उधर पंडित वेणी प्रसाद ने चेतन को समझाया और वही चेतन

जो अनन्त के सारी रात समझाते रहने पर भी तुला हुआ था कि विवाह न करेगा, इस बीमार और लगभग पंगु वृद्ध के सम्मुख एक शब्द भी न कह सका।

पंडित वेणी प्रसाद ने अपने हिलते हुए अंगों को कठिनाई से सम्हालते हुए कहा था, "वेटा, लड़कपन न करो! इस बूढ़ी देह का ख्याल करो, इस वूढ़े की इज्ज़त का ख्याल करो और उस निरीह बालिका का ख्याल करो। पिता की बातों पर कैसा गुस्सा? उन की तो आदत ही ऐसी है। इस क्रोध से उन की आदत तो हटेगी नहीं, दो चार आदमियों की जान भले ही चली जाय।"

और चेतन ने कहा था कि वह स्वयं यही सब सोच रहा था और जैसा वे उस से कहेंगे, वह करेगा। उस की केवल एक प्रार्थना है कि व्याह की रस्म जितनी जल्दी भी हो पूरी कर दी जाय और शेष सब व्यर्थ के रिवाज जहाँ तक हो सके हटा दिये जायें और भोज भी दो-तीन ही दिये जायें।

पंडित वेणी प्रसाद ने कहा, "वेटा जैसा तू कहता है वैसा ही होगा। मैं तो स्वयं आर्य-समाजी प्रणाली का समर्थक हूँ। इन व्यर्थ की रस्मों में क्या रखा है?"

इस प्रकार अपनी क़समों के वावजूद पुत्र और पिता दोनों बारात में शामिल हुए। हँसे भी, बधाइयाँ भी उन्होंने स्वीकार कीं और रस्में भी सब अदा कीं। फिर बाजे भी बजे, गाने भी गाये गये और शोर भी खूब हुआ। यह और बात है कि इस समस्त हर्षोल्लास, गाने बजाने और शोर-शराबे के अन्तर में व्यथा भी कहीं दबी बैठी रही।

माफ़ कर देने पर भी पिता ने पुत्र को नहीं बुलाया और

पुत्र ने एक रस्मी, ठंडे प्रणाम के अतिरिक्त और कोई बात नहीं की। पंडित जी ने पिता के अपने अधिकारों का प्रदर्शन करने के लिए और भी पी—देसराज और पंडित बनारसी दास को बैठाकर पी—और चलते समय अपनी पत्नी को एक-दो थप्पड़ भी रसीद किये। माँ की आँखें अन्त तक आँसुओं से भरी रहीं। चेतन का रक्त खौल खौल उठा और उस के जी में कई बार आया कि अनन्त के दबाव से छूट कर एकदम भाग जाय। जहाँ उस के पिता उसे चिढ़ा कर, उन्हीं कमीनों के साथ शराब पीकर अपने अधिकारों का डंका पीट रहे हैं, वहां दो बिरादरियों के बीच उन की नाक काट कर वह पुत्र के अधिकारों को भली-भांति जता दे।

लेकिन जब बारात बस्ती पहुंची और धर्मशाला में उतरने, सेहरा बांधने और दूसरी रस्मों के बीच चेतन बराबर इन बातों पर विचार करता हुआ अन्त में साढ़े आठ बजे के लगभग विवाह-मंडप में आसन पर जा बैठा तो सहसा उस के मन से समस्त बातें, सारी चिन्ताएँ, सब क्लेश अनायास दूर हो गये। उस का मन हल्का हो गया। मंडप के तनिक परे, सामने बरामदे में बैठी हुई लड़कियों में, उस की निगाहें एक किशोरी से चार हुईं जिसे वह पहचानता था।

यह किशोरी वही थी जिसे बस्ती के अड्डे पर देख कर वह चौंका था और फिर एक बार अपनी पत्नी के पास जिसे बैठा हुए देख कर वह कुछ बौखला सा गया था।

चेतन को लगा जैसे वह एक महान सागर में हल्की सी तरङ्ग बन कर बहा जा रहा है। अभी कुछ देर पहले जब आंगन के दरवाज़े में प्रवेश करते समय उनकी पत्नी ने उस के गले में हार डाला था तो उस के मोटे से शरीर और सीधी-साधी सी आकृति को देख कर वह अत्यन्त निराश हुआ था। फिर आंगन में आने पर जब उसे पता चला कि

कन्या महा-विद्यालय से जो लड़कियां इस से 'समाजिक रीति' से होने वाले विवाह की शोभा को अपने कल कंठो से बढ़ाने के लिए आने वाली थीं, वे नहीं आईं तो उस की निराशा पर विषाद की एक गहरी परत चढ़ गई थी। लेकिन उस सुन्दर मनोमुग्धकारी छवि को देख कर उस की वह निराशा, वह अवसाद पलक झपकते में उड़ गया। तभी पुरोहित ने मन्त्र पढ़ने आराभ किये और स्त्रियां गा उठीं

'सजन घर आये'

—o—

२०

दूसरे दिन जब बारात खाना खाने में व्यस्त थी, चेतन की चंचल, उद्विग्न दृष्टि रह-रहकर छत पर जाती थी और कल्पना ही कल्पना में वह ब्याह के गाने सुनता था – मीठे मद भरे गाने—जिनके तानों में किसी परिचित कल-कंठ से निकली हुई तन और मन को गर्मा देने वाली मादक तान भी थी। पर छत की सूनी मुँडेरों पर गाने-वालियां तो दूर, एक कौवा तक भी न था। हां, किसी पास के वृक्ष पर बैठी हुई एक चील अपनी कर्कश ध्वनि से बार-बार चिल्ला उठती थी। वहाँ से हटकर चेतन की दृष्टि सामने बरामदे में जाती, जहां रात को भांवरों के समय स्त्रियों के गाने गूंजे थे। पर वहां भी उनकी रसीली तानों के स्थान पर बस्ती के एक मात्र सुधारक मास्टर नन्दलाल का ग्रामोफ़ोन अपनी भोंडी आवाज़ में चिल्ला रहा था :

हे प्रभो अब हम सबों को शुद्धताई दीजिए
दूर करके हर बुराई को भलाई दीजिए

दूसरी कुप्रथाओं के साथ-साथ विवाह-शादी के अवसर पर स्त्रियों का छतों पर चढ़ कर गंदे गीत गाना भी सुधारक मास्टर नन्दलाल को नापसन्द था। उन के विचार में ऐसे अवसर सुधार-कार्य ही के लिए उपयुक्त थे।

'क्या सुन्दर रिकार्ड व्याह के अवसर पर लगाया है।' चेतन ने रिकार्ड के समाप्त होने पर मन ही मन कहा।

पर इसमें दोष किसका था? उसी ने तो पंडित वेणी प्रसाद से कहा था कि कोई रस्म अदा न की जाय। सुधार सम्बन्धी अपनी स्कीम को इस घर में पूर्ण-रूप से फलीभूत होते देख, इधर उधर बड़े चाव और व्यस्तता से फिरते हुए मास्टर नन्दलाल की ओर देख कर चेतन मन ही मन हँसा। फिर एक ठण्डी सांस उस के हृदय की गहराइयों को चीर कर निकल गई।/बुभुक्षित, विपन्न, और साधनहीन हिन्दुस्तान के लिए शादी-विवाह तथा तीज-त्यौहार की चन्द घड़ियां ही तो थीं जिनमें लोग कुछ हँस-हँसा लेते थे। वर-वधू की अपेक्षा विवाह के उल्लास का अधिक भाग वर के मित्रों तथा वधू की सखियों के हिस्से में आता था। महीना-महीना पहले नये वस्त्र सिलवाये जाते, नये जूते बनवाये जाते और व्याह वाले घरों में ढोलक रख दी जाती। बारातियों का स्वागत मीठे गानों से होता; वर-वधू को 'कँगना' मीठे गानों में खेलाया जाता; मादक मीठे गानों में भांवरों की रस्म सम्पन्न होती और मीठे गानों का मधुर रस पीती हुई बारात खाना खाती। वधू की सहेलियां और बहिनें सिट्ठनियों में बड़ी भेद भरी बातें कह जातीं।/चेतन का हृदय उन मीठी सिट्ठनियों को सुनने

के लिए आतुर हो उठा, किन्तु उधर बरामदे में ग्रामोफोन पूर्ववत् गा रहा था :

हे प्रभो अब हम सबों को शुद्धताई दीजिए

सुधार सम्बन्धी कोई दूसरा रिकार्ड न होने से मास्टर नन्दलाल ने पुनः उसी को लगा दिया था।

चेतन की आंखों के सामने आततायी सुधारक के हाथों विवाह की देवी का अलंकार-विहीन चित्र घूम गया। उस की निरीह चमक-दमक इस कट्टर अत्याचारी ने छीन ली है; उस के कल-कंठ से निकलने वाली मादक तानों का इस ने गला घोंट दिया है और उस के समस्त अलंकारों से उसे वंचित कर दिया है! चेतन की आंखें फिर उसी पुराने ज़माने की भरी-पुरी रमणी को देखने के लिए आतुर हो उठीं।

कम्पनी बाग में एक अत्यन्त पुराना कुंज था, जिस पर इश्कपेचा की वेलें चढ़ी हुई थीं। कुंज के बाहर एक बड़ा सीधा-साधा विश्राम-स्थल बना हुआ था। वास्तव में यह स्थल एक अत्यन्त पुरानी, सदैव हरी रहने वाली वेल के कारण बन गया था। यह वेल धीरे-धीरे बढ़कर आस पास के कई पेड़ों पर छा गई थी। कहीं कहीं यह इतनी मोटी थी कि बचपन में वह अपने संगियों के साथ उस पर बैठकर झूला झूला करता था। इस स्थल के पास से गुज़रने पर ही मन की समस्त थकन दूर हो जाती थी। किन्तु सुधार ... ..! उस वेल के नीचे इकट्ठी होने वाली गंदगी को, सूखे सड़े पत्तों के ढेरों को, कूड़े कचरे को साफ़ करके उस स्थान को और भी स्वच्छ, सुरम्य, शीतल और मन का ताप हरनेवाला बनाने की अपेक्षा उस वेल ही को काट दिया गया। अब वहाँ घास के एक दो प्लाट हैं जिनमें छोटे-छोटे पौधे लगे रहते हैं, जो तीन-चार महीनों से अधिक जीवित नहीं रहते और ऐसे फूल लाते हैं जिनमें न रंग होता है, न रस, न गंध!

वह सारे का सारा दृश्य चेतन के सामने घूम गया।

"जीजा जी खाना खाइए!" एक पतले-दुबले से लम्बी नाक वाले लड़के ने उससे कहा। चेतन ने सहसा चौंककर थाली की ओर हाथ बढ़ाया।

बारात तब तक खाना खा चुकी थी। पुराने ढंग की शादी होती तो कोई चंचल चपल बालक अथवा बालिका उसका कोट दरी से सी देती अथवा उसका जूता छिपा देती और इस सरल से मज़ाक और वर की कृत्रिम परेशानी पर ख़ूब ठहाके लगते, ख़ूब फबतियाँ उड़तीं। चेतन की बड़ी इच्छा थी कि कोई बालक अथवा बालिका उसका भी कोट सी दे, उसका भी जूता छिपा दे, पर उसने खाना खा लिया, हाथ पोंछ लिये। बारात के आधे लोग आँगन के बाहर चले गये किन्तु उसके साथ किसी ने मज़ाक नहीं किया। वह अन्य-मनस्कता से उठा और जीवन में पहली बार खरीदा हुआ पेटेंट लेदर का शू पहनने लगा। उसी समय अपनी लाठियाँ लिये हुए काँपते-झूलते पंडित वेणी प्रसाद आये और हाथ जोड़कर उन्होंने कहा—"आप अभी कुछ देर बैठिए।"

चेतन चुपचाप दरी पर बैठ गया। तभी बरामदे का चिक उठाकर वही लड़की जैसे हर्ष और उल्लास से नाचती सी निकली। उसके पीछे उसकी सहेलियाँ थीं—"जीजा जी छंद* सुनाओ"! "जीजा जी छंद

---

* छंद एक प्रकार का पंजाबी दोहा होता है जिसकी पहली पंक्ति का कोई अर्थ नहीं होता, वह केवल तुक मिलाने के लिए होती है। दूसरी पंक्ति में सास ससुर और ससुराल के अन्य रिश्तेदारों की प्रशंसा होती है। यह छंद विवाह में लड़कियाँ वर के मुँह से सुनती हैं, ऐसा रिवाज है। पुराने समय में शायद इसका उद्देश्य यह मालूम करना था कि वर गूँगा तो नहीं है।

सुनाओ !" कहती हुई वह धम से उसके पास बैठ गई । शेष सहेलियों ने झुरमुट बना लिया ।

चेतन का मुख कानों तक लाल हो गया । इस बीच में दो चार बड़ी बूढ़ियाँ भी आ गईं और एक ने एक दूसरी स्त्री की ओर संकेत करते हुए चेतन से कहा, "यह तुम्हारी सास है "

चेतन को अपना उमड़ता हुआ उल्लास सिकुड़ता हुआ सा लगा —काला झुर्रियों वाला चेहरा, अन्दर को धँसे हुए कल्ले, बेढंगे दाँत और एक ओर को दबी हुई आँख । 'इस माँ की लड़की कैसे 'रूपवती' न होती !' वह व्यंग्य से मुस्कराया, 'और फिर आप घूंघट निकाले हुए हैं, उसने मन ही मन हँस कर कहा, लेकिन तभी उसे ख्याल आया कि वह तो उसकी सास है और माँ के बराबर है और उसने उसे एक खिसियाना सा प्रणाम किया । इसके बाद कुटुम्ब की अन्य स्त्रियों और वधू की सहेलियों से उसका परिचय कराया गया और उसे पता चला कि वह सुन्दर लड़की उसकी साली है—नाम है नीला —पंडित बेणी प्रसाद की तीन लड़कियों में से मँझली और चेतन ने एक बार दबी आंखों से उसकी ओर देख कर मन ही मन में एक लम्बी सांस भर ली । उसे यह बात पहले क्यों न मालूम हुई ?

"छन्द सुनाइए जीजा जी छन्द !" और लड़कियों ने उसका कोट खींचा । एक निमिष के लिए चेतन की आंखें नीला से चार हुईं । उस की आंखों में एक चतुर स्निग्ध मुस्कान थी जिस का प्रतिबिम्ब उसके ओंठों पर हल्की सी मुस्कान के रूप में फैलने को आतुर था ।

चेतन बैठ गया ।

लेकिन उसी समय पंडित बेणी प्रसाद अपने हिलते हुए शरीर के साथ आये और हाथ जोड़ कर उन्होंने कहा, "अब महाराज उठिए ।"

चेतन अनिच्छापूर्वक उठने लगा था कि नीला ने उस के कोट का दामन खींचा। चेतन फिर बैठ गया।

पंडित जी ने फिर हाथ जोड़े। वह फिर उठने लगा। नीला ने फिर दामन खींचा, वह फिर बैठ गया।

तब हँसते हुए चेतन ने कहा, "यदि आप कह दें तो यों ही दस पन्द्रह बैठक लगा डालूँ!"

और नीला ने तनिक रोप भरे स्वर में कहा, "पिता जी आप बैठने भी दीजिए जीजा जी को, अभी एक भी छन्द नहीं सुना हम ने।"

"अच्छा, अच्छा बेटी! .. आप बैठिए अभी महाराज!" और वृद्ध सरल सी हँसी ओठों पर लिये हुए जैसे आये थे वैसे ही चले गये।

चेतन का हृदय धक धक करने लगा। तभी उस की दृष्टि सामने बरामदे के एक कोने में गई। चिक उठा दी गई थी। विवाह के लाल जोड़े में आवृत उसकी दुलहिन ज़रा सा घूँघट निकाले बैठी थी और विवाह के उल्लास में उस का गेहुँआ रंग दमक रहा था। चेतन के सामने उस की सास की सूरत आ गई और उस ने निगाहें हटा लीं।

नीला ने हँस कर कहा, "छन्द सुनाइए जीजा जी! उधर क्या देख रहे हैं। आप ही के घर जायगी।"

"कुछ अप्रतिभ सा हो, चेतन ने तनिक सोच कर एक छन्द सुनाया।

"छन्द परागे आइए जाइए छन्द परागे तीला
छन्द गया मैं भुल्ल सभे, जद सामने आई नीला"

नीला का मुख कानों तक लाल हो गया। फिर वह एक बार ही सखियों के साथ ठहाका मार कर हँस दी।

---

१ पहली पंक्ति का कोई अर्थ नहीं। दूसरी का अर्थ यह है कि मैं उस समय सभी छंद भूल गया, जब मेरे सामने नीला आई।

चेतन इस ठहाके में वह गया और इसके साथ ही वह गया वह थोड़ा बहुत गाम्भीर्य जो गत दो तीन दिनों से उस के अन्दर इकट्ठा हो गया था और जिसका प्रतिबिम्ब उस की आकृति पर विषाद के हल्के से बादल ले आया था।

एक युवती जैसे उल्लास की ताल पर नाचती सी आई। उस की कलाइयों का लाल चूड़ा साक्षी था कि उस का विवाह हाल ही में हुआ है। टेसू के रङ्ग की लाल साड़ी उस ने पहन रखी थी और वह रङ्ग उस के सुन्दर कपोलों को लाल भी बना रहा था। चेतन की चंचलता को निशाना बना कर उस ने तीर छोड़ा :

"पुत आया भी नटनी दा"[1]

चेतन खिसियाना सा हो गया। किंतु उसी क्षण इस सिठनी की दूसरी पंक्ति कहने का अवसर उस युवती को दिये बिना, उस की नकल उतारते हुए, उसने कुछ इस तरह मटक कर यही शब्द दुहराये कि वह युवती शर्मा कर उल्टे पाँव वापस भाग गई।

उसी समय पंडित बेणी प्रसाद एक बार फिर हाथ जोड़े हुए चेतन को उठने के लिए कहने के अभिप्राय से आये, किन्तु अपने इस असहाय पिता पर नीला को कुछ ऐसा अधिकार प्राप्त था कि उस ने चेतन को वहीं बैठाये रखा। वास्तव में मास्टर नन्द लाल तथा उन के आर्य-समाजी मित्र विवाह शादी की इस हँसी खुशी के भी विरुद्ध थे। वे न चाहते थे कि वधू की सब की सब सहेलियाँ एकदम वर से सालियों का नाता स्थापित करके हर तरह के हँसी मज़ाक की छुट्टी पा लें। इसीलिए वे पंडित बेणी प्रसाद को अन्दर भेजते थे, किन्तु

---

[1] नटनी का पुत्र आया है। इसकी दूसरी पंक्ति है—नटनी कोठे टप्पनी दा—अर्थात् उस नटनी (चंचल नारी) का जो छतें कूदती है अर्थात् छतें कूद कर अपने प्रेमियों से मिलने जाती है।

अपनी लड़की नीला से उस वृद्ध को कुछ ऐसा प्रेम था कि वे उस का कहा न टालते।

इस बीच में चेतन को अपनी पत्नी की सब सुन्दर और असुन्दर सहेलियों के नाम याद हो गये। सोहनी तो सचमुच सोहनी[1] थी, जिसके सम्बन्ध में उसे मालूम हुआ कि वही उसकी मँगेतर होने वाली थी, किन्तु पंडित वेणी प्रसाद पहले पहुँच गये थे। केसरी, जिस की आँखों में एक अज्ञात सी आकाँक्षा दबी रहती थी और जिसने चेतन की दिलचस्प बातों, उस की खुली हँसी और चंचलता को देखकर एक लम्बी साँस को बरबस दबाकर केवल इतना कहा था—"जीजा जी, तुसी ताँ तिन्ना लोकाँ तों न्यारे ओ"[2] और लक्ष्मी जो अपने छोटे भाई को गोद में लिये हुए थी, जिसे लक्ष्मी की आयु को देखते हुए उस ने उस का बच्चा समझा था और जो अपनी इस बड़ी आयु के बावजूद अविवाहित थी। फिर पारो, सरला, रानी, शीला कर्तारी......

चेतन का समय खूब बीता, और जब वहां से छुट्टी पाकर वह डेरे वापस जा रहा था तो उस की कल्पना के सम्मुख इन सबकी आकृतियों के ऊपर से नीला की सुन्दर मूर्ति जैसे उभर उभर कर झाँकती रही। उस की वह सुनहरी स्मिति, मादक दृष्टि और मदिर स्वर-लहरी...नीला....नीला !

—४—

१ सुन्दर

२ जीजा जी आप तो तीन लोक से न्यारे हैं।

२१

लेकिन गौने से भी पहले, अपने विवाह के प्रथम दिवस ही चेतन को मालूम हो गया कि चन्दा—वह उसकी मोटी ठिगनी सी पत्नी—अपनी उस साधारण दिखाई देने वाली सूरत-शक्ल के अन्दर एक अत्यन्त कोमल और भावुक हृदय रखती है।

दूसरे दिन नव-परिणीता वधू के साथ जब वह ताँगे में बैठकर बाजे के पीछे पीछे बस्ती गज़ाँ से चला था तो उस के मन-मस्तिष्क पर नीला का चित्र अंकित हो चुका था और उस के हृदय में कहीं ज्वाला सी धधक रही थी। वह सोच रहा था, क्यों नीला से उसका विवाह न हुआ ? उसे पहले ही क्यों न पता चल गया कि वही लड़की, जिसे बस्ती के अड्डे पर जाते देखकर, उस के हृदय में, अँधेरी रात के दूरस्थ प्रदीप की भाँति एक ज्योति-किरण जगमगा उठी थी, उस की भावी पत्नी के ताऊ की मँझली लड़की है। यदि वह मुल्कराज से उस के सम्बन्ध में पूछ लेता ? यदि उसे बाद में भी किसी तरह पता चल जाता ? यदि...तो जीवन के दुख भरे सागर में सुख की उद्दाम तरंगें उठ आतीं। उन के सहारे वह कहाँ कहाँ न पहुँच जाता।

नारी ही गति है और नारी ही अगति। जीवन भी यही है और मृत्यु भी यही—केवल संगिनी के उपयुक्त अथवा अनुपयुक्त होने का प्रश्न है। इन्हीं दो सीमाओं में पुरुष के जीवन का क्रम चलता रहता है। उपयुक्त संगिनी मिल गई तो उस के जीवन का सागर आनन्द से वह निकलता है और यदि अनुपयुक्त तो चेतन की कल्पना के सम्मुख क्षण भर के लिए हिलोरें लेता हुआ सागर आया और फिर

उसके स्थान पर क्षण प्रति क्षण सूखता एक पोखर--गदला, गतिहीन, तरंग-रहित—और उसने अपने साथ तांगे में बैठी हुई अपनी नव-परिणीता पत्नी की ओर देखा और अपने जीवन का सागर उसे जैसे उत्साह-हीन सा होकर उतरता हुआ दिखाई दिया। और निराशातिरेक से उसका गला भर सा आया और सचमुच अपने घर की देहरी पार करके कुछ एक रस्मों को जल्द जल्द पूरा करने के बाद, वह अन्दर कोठरी में जाकर रोने लगा।

उसकी माँ—दुःखों कष्टों की मारी उसकी माँ—इस नयी विपत्ति को देख कर पहले तो घबरा गई, किन्तु विपत्तियों का पहला आक्रमण जहाँ मानव के पाँव ज्वार के पहले रेले की भाँति डगमगा देता है, वहाँ उनका आधिक्य उसे स्थिर भी कर देता है और माँ विपत्तियों के निरन्तर प्रहारों के कारण तूफ़ान के मध्य भी स्थिर खड़े होकर सोचने की शक्ति पा गई थी।

सोच सोच कर वह पहले बहू के पास स्वयं गई और बहू का घूंघट हटाकर उसने क्षण भर के लिए निर्निमेष उसकी आँखों में देखा। अनुभव किया कि उन में अपार कोमलता और अपार सहृदयता है। तब क्षणिक आवेश के वश उसने उसे अपने आलिंगन में भींच लिया और आर्द्र कंठ से बोली :

"वह कुछ बेचैन सा है मेरी बेटी। फूल फूल पर बैठने वाला, आकाश के विस्तार में स्वच्छन्द तरारे भरने वाला पक्षी। उसे बाँधना है। वह भाग जाना चाहता है, सब बन्धन तोड़कर! लेकिन बेटी तू ज़रा सतर्क रहेगी तो वह भाग न पायेगा। मैं उसे अभी भेजूंगी। बहुत संकोच से काम न लेना समझी....तू छोटी नहीं, सयानी है, व्यर्थ की लज्जा न करना।"

और वह चली आई थी। फिर बहाने से महरी को बस्ती भेज कर

२१

लेकिन गौने से भी पहले, अपने विवाह के प्रथम दिवस ही चेतन को मालूम हो गया कि चन्दा—वह उसकी मोटी ठिगनी सी पत्नी—अपनी उस साधारण दिखाई देने वाली सूरत-शक्ल के अन्दर एक अत्यन्त कोमल और भावुक हृदय रखती है।

दूसरे दिन नव-परिणीता वधू के साथ जब वह ताँगे में बैठकर बाजे के पीछे पीछे बस्ती गज़ाँ से चला था तो उस के मन-मस्तिष्क पर नीला का चित्र अंकित हो चुका था और उस के हृदय में कहीं ज्वाला सी धधक रही थी। वह सोच रहा था, क्यों नीला से उसका विवाह न हुआ ? उसे पहले ही क्यों न पता चल गया कि वही लड़की, जिसे बस्ती के अड्डे पर जाते देखकर, उस के हृदय में, अँधेरी रात के दूरस्थ प्रदीप की भाँति एक ज्योति-किरण जगमगा उठी थी, उस की भावी पत्नी के ताऊ की मँझली लड़की है। यदि वह मुल्कराज से उस के सम्बन्ध में पूछ लेता ? यदि उसे बाद में भी किसी तरह पता चल जाता ? यदि...तो जीवन के दुख भरे सागर में सुख की उद्दाम तरंगें उठ आतीं। उन के सहारे वह कहाँ कहाँ न पहुँच जाता।

" नारी ही गति है और नारी ही अगति। जीवन भी यही है और मृत्यु भी यही—केवल संगिनी के उपयुक्त अथवा अनुपयुक्त होने का प्रश्न है। इन्हीं दो सीमाओं में पुरुष के जीवन का क्रम चलता रहता है। उपयुक्त संगिनी मिल गई तो उस के जीवन का सागर आनन्द से बह निकलता है और यदि अनुपयुक्त तो चेतन की कल्पना के सम्मुख क्षण भर के लिए हिलोरें लेता हुआ सागर आया और फिर

उसके स्थान पर क्षण प्रति क्षण सूखता एक पोखर—गदला, गतिहीन, तरंग-रहित—और उसने अपने साथ तांगे में बैठी हुई अपनी नव-परिणीता पत्नी की ओर देखा और अपने जीवन का सागर उसे जैसे उत्साह-हीन सा होकर उतरता हुआ दिखाई दिया। और निराशातिरेक से उसका गला भर सा आया और सचमुच अपने घर की देहरी पार करके कुछ एक रस्मों को जल्द जल्द पूरा करने के बाद, वह अन्दर कोठरी में जाकर रोने लगा।

उसकी माँ—दुःखों कष्टों की मारी उसकी माँ—इस नयी विपत्ति को देख कर पहले तो घबरा गई, किन्तु विपत्तियों का पहला आक्रमण जहाँ मानव के पाँव ज्वार के पहले रेले की भाँति डगमगा देता है, वहाँ उनका आधिक्य उसे स्थिर भी कर देता है और माँ विपत्तियों के निरन्तर प्रहारों के कारण तूफ़ान के मध्य भी स्थिर खड़े होकर सोचने की शक्ति पा गई थी।

सोच सोच कर वह पहले बहू के पास स्वयं गई और बहू का घूंघट हटाकर उसने क्षण भर के लिए निर्निमेष उसकी आँखों में देखा। अनुभव किया कि उन में अपार कोमलता और अपार सहृदयता है। तब क्षणिक आवेश के वश उसने उसे अपने आलिंगन में भींच लिया और आर्द्र कंठ से बोली:

"वह कुछ बेचैन सा है मेरी बेटी। फूल फूल पर बैठने वाला, आकाश के विस्तार में स्वच्छन्द तरारे भरने वाला पक्षी। उसे बाँधना है। वह भाग जाना चाहता है, सब बन्धन तोड़कर! लेकिन बेटी तू ज़रा सतर्क रहेगी तो वह भाग न पायेगा। मैं उसे अभी भेजूंगी। बहुत संकोच से काम न लेना समझी....तू छोटी नहीं, सयानी है, व्यर्थ की लज्जा न करना।"

और वह चली आई थी। फिर बहाने से महरी को बस्ती भेज कर

२१

लेकिन गौने से भी पहले, अपने विवाह के प्रथम दिवस ही चेतन को मालूम हो गया कि चन्दा—वह उसकी मोटी ठिगनी सी पत्नी—अपनी उस साधारण दिखाई देने वाली सूरत-शक्ल के अन्दर एक अत्यन्त कोमल और भावुक हृदय रखती है।

दूसरे दिन नव-परिणीता वधू के साथ जब वह ताँगे में बैठकर बाजे के पीछे पीछे बस्ती गज़ाँ से चला था तो उस के मन-मस्तिष्क पर नीला का चित्र अंकित हो चुका था और उस के हृदय में कहीं ज्वाला सी धधक रही थी। वह सोच रहा था, क्यों नीला से उसका विवाह न हुआ ? उसे पहले ही क्यों न पता चल गया कि वही लड़की, जिसे बस्ती के अड्डे पर जाते देखकर, उस के हृदय में, अँधेरी रात के दूरस्थ प्रदीप की भाँति एक ज्योति-किरण जगमगा उठी थी, उस की भावी पत्नी के ताऊ की मँझली लड़की है। यदि वह मुलकराज से उस के सम्बन्ध में पूछ लेता ? यदि उसे बाद में भी किसी तरह पता चल जाता ? यदि.. तो जीवन के दुख भरे सागर में सुख की उद्दाम तरंगें उठ आतीं। उन के सहारे वह कहाँ कहाँ न पहुंच जाता।

नारी ही गति है और नारी ही अगति। जीवन भी यही है और मृत्यु भी यही—केवल संगिनी के उपयुक्त अथवा अनुपयुक्त होने का प्रश्न है। इन्हीं दो सीमाओं में पुरुष के जीवन का क्रम चलता रहता है। उपयुक्त संगिनी मिल गई तो उस के जीवन का सागर आनन्द से बह निकलता है और यदि अनुपयुक्त तो चेतन की कल्पना के सम्मुख क्षण भर के लिए हिलोरें लेता हुआ सागर आया और फिर

उसके स्थान पर क्षण प्रति क्षण सूखता एक पोखर—गदला, गतिहीन, तरंग-रहित—और उसने अपने साथ तांगे में बैठी हुई अपनी नव-परिणीता पत्नी की ओर देखा और अपने जीवन का सागर उसे जैसे उत्साह-हीन सा होकर उतरता हुआ दिखाई दिया। और निराशातिरेक से उसका गला भर सा आया और सचमुच अपने घर की देहरी पार करके कुछ एक रस्मों को जल्द जल्द पूरा करने के बाद, वह अन्दर कोठरी में जाकर रोने लगा।

उसकी माँ—दुःखों कष्टों की मारी उसकी माँ—इस नयी विपत्ति को देख कर पहले तो घबरा गई, किन्तु विपत्तियों का पहला आक्रमण जहाँ मानव के पाँव ज्वार के पहले रेले की भाँति डगमगा देता है, वहाँ उनका आधिक्य उसे स्थिर भी कर देता है और माँ विपत्तियों के निरन्तर प्रहारों के कारण तूफ़ान के मध्य भी स्थिर खड़े होकर सोचने की शक्ति पा गई थी।

सोच सोच कर वह पहले बहू के पास स्वयं गई और बहू का घूंघट हटाकर उसने क्षण भर के लिए निर्निमेष उसकी आँखों में देखा। अनुभव किया कि उन में अपार कोमलता और अपार सहृदयता है। तब क्षणिक आवेश के वश उसने उसे अपने आलिंगन में भींच लिया और आर्द्र कंठ से बोली :

"वह कुछ बेचैन सा है मेरी बेटी। फूल फूल पर बैठने वाला, आकाश के विस्तार में स्वच्छन्द तरारे भरने वाला पक्षी। उसे बाँधना है। वह भाग जाना चाहता है, सब बन्धन तोड़कर! लेकिन बेटी तू ज़रा सतर्क रहेगी तो वह भाग न पायेगा। मैं उसे अभी भेजूंगी। बहुत संकोच से काम न लेना समझी....तू छोटी नहीं, सयानी है, व्यर्थ की लज्जा न करना।"

और वह चली आई थी। फिर बहाने से महरी को बस्ती भेज कर

ो चेतन को अन्दर भेजा था।

चेतन का मन खिन्न था। वह अपनी इस बहू से साक्षात
। करना चाहता था, किन्तु माँ के ज़ोर देने पर वह अनिच्छा पूर्वक
र चला गया।

कमरे में जाकर उसने अत्यन्त हास्यास्पद हरकतें की। पहले
उसने माँ से कहा कि उसके लिए खाना वहीं भेज दिया
। फिर जब बहू भी माँ के साथ बाहर उठ कर जाने
तो उसने तनिक कड़े स्वर में कहा, "बैठो!" और
; बैठने पर उसने उठकर कुण्डी लगा ली (और भूल गया
उसने खाना वहाँ लाने का आदेश दिया है।) फिर उसने
को आदेश दिया कि घूंघट उठा दे।

चन्दा ने धीरे से घूंघट उठा दिया था और एक बार लज्जा-भार
दबी बड़ी बड़ी अलसाई सी पलकों को उठा कर उसकी ओर
था।

इस एक दृष्टि से ही चेतन के स्वर की कर्कशता कोमलता में
। गई थी। वह गंभीर, गहरी, सहृदय, तरल दृष्टि! ..चेतन जैसे
त के सागर में डूबा जा रहा था। उसने कुछ नर्मी से पूछा, "तुम
ी पढ़ सकती हो या नहीं?" चन्दा ने धीरे से कहा, "जी-हाँ!"
इस शब्द की मिठास चेतन की श्रवण-शक्ति पर छा कर रह
। तभी अचानक उसे लगा कि बस्ती के अड्डे पर पहले
उसने जिस चन्दा को देखा था, उसमें और आज की
विवाहिता चन्दा में महान् अन्तर है। उसका रङ्ग निखर आया
अङ्ग अधिक सुगठित हो गये हैं और आँखें पहले से कहीं अधिक
गई हैं। माँ ने उबटन मल कर शायद उसका रङ्ग चमका दिया
या जवानी ने अपनी भट्टी में तपाकर उस गेहुएँ रङ्ग को कुन्दन

बना दिया था ! और फिर यौवन की गरिमा इस रङ्ग में अकथनं
मादकता ले आई थी।

"तुम तो पहले से सुन्दर हो गई हो चन्दी !"

वह मुस्कराई और फिर तनिक हँसी—मीठी मुस्कान और मा
हँसी ! और चेतन ने देखा उन लाल लाल ओठों के नीचे दूध
सफेद, साथ साथ जुड़े हुए मोतियों कि बतीसी है जो उस हँसी
एक अनोखी चमक प्रदान कर रही है।

और वह मुग्ध सा, साधारण होते हुए भी असाधारण सी अ
इस पत्नी कि ओर देखने लगा। फिर वह उठकर एक पुस्तक ले आय

चन्दा ने उसे फ़र फ़र पढ़ डाला।

तब किताब को परे फेंक कर चेतन ने उसे निकट खींच लि
और भावावेश में बोला, "मैं तो तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय करने
रहा था चन्दी।"

चन्दा ने एक बार अपनी अर्द्ध निमीलित, अलस, लजीली आं
से उस की ओर देखा और चेतन को लगा कि जैसे मीलों चलकर
किसी भरे पुरे सरोवर के किनारे घने वृक्षों की छाया में आ बैठा

—०—

२२

क़िन्तु नीला आग थी।

दूसरे दिन वह गौने के लिए बस्ती गया। सावन का आरम्भ थ
आकाश पर गहरी काली घटा छाई हुई थी। ठंडी हवा हिलोरें ले

थी। बाहर पड़ोस के एक घर में चौखट से झूला डालकर पेंग बढ़ाती हुई लड़कियाँ उस चौखट ही को नीम समझ कर गा रही थीं।

इक झूला डाला मैंने नीम की डाल में,
नीम की डाल में,
नन्हीं नन्हीं बूंदियां रे सावन का मोरा झूलना।
सावन का मोरा झूलना

अपनी ससुराल में, अथवा यों कहिए कि अपने ससुर के बड़े भाई के यहाँ (क्योंकि उस के ससुर का अपना कोई घर न था) चेतन ऊपर चौबारे में निवाड़ के पलंग पर लेटा हुआ था। वह दरवाज़े से चुप-चाप आकाश में उमड़ती हुई घटाओं को देख रहा था और गली की लड़कियों का गाना अनवरत उस के कानों में मधु-रस उँडेल रहा था।

पास ही उस की पत्नी की सहेली केसरी अपनी आकांक्षाभरी आंखें लिये हुए बैठी कुछ बातें कर रही थी। चेतन अन्यमनस्क सा उसकी बातों का उत्तर देता जा रहा था और उस के उत्तर को सुनकर हँसती हुई वह हर दस मिनट बाद कहती थी "जीजा जी, आप तो तीन लोक से न्यारे हैं।"

चेतन के कानों को, लड़कियों के गाने की भाँति केसरी की बातों का स्वर भी किसी स्वप्न संसार के स्वर ही सा लग रहा था। उस की आंखों में कुछ हल्की सी तन्द्रा छाई जा रही थी। विवाह के दिनों की समस्त थकन, सब रतजगे जैसे अपने सारे भार से उस की आंखों को बंद किये देते थे। वहीं लेटा वह अपनी अर्ध-निमीलित, तन्द्रालस आंखों से छत पर नीला का चित्र बना रहा था और वह चाहता था कि केसरी चली जाय। किन्तु वह अपने इन जीजा जी को देखने में और उन की बातें सुनने में कुछ ऐसा आनन्द पा रही थी कि उठने ही में न आती थी।

हार कर चेतन ने अपनी पत्नी का नाम लेकर आवाज़ दी।

नीचे आँगन में एक अट्टहास गूंज उठा जिसमें से नीला का गूंजता, झनझनाता स्वर उसने दूसरों से अलग कर लिया। उसकी पत्नी ने उत्तर नहीं दिया, किन्तु छत से परे सीढ़ियों पर उसे नीला चढ़ती दिखाई दी। चेतन को लगा जैसे वह चढ़ती नहीं, अदृश्य हल्के परों के सहारे हवा में फ़ुदक रही है। वह जल्दी से उठ कर उसे छत पर ही मिला।

"आपको लाज नहीं आती!" नीला की मुस्कराती हुई आँखें नाच रही थीं और वह निर्निमेष उन की ओर देख रहा था। "बहन का नाम लेकर आप पुकार रहे हैं। वह लाज से मरी जा रही है।"

चेतन ने ज़ोर से ठहाका लगाया।

दो स्त्रियां दूर एक मकान की छत पर धूप में सूखने के लिए डाले हुए कपड़े वर्षा के भय से समेट रही थीं। वे पलट कर उधर देखने लगीं।

चेतन फिर हँसा और उस ने बहुत धीरे से कहा, "तुम किसी बहाने अपनी बहन की इस तीन लोक से न्यारी सहेली को ले जाओ।"

"तीन लोक......"

"यह केसरी मुझे कहती है कि मैं तीन लोक से न्यारा हूँ। वास्तव में वह स्वयं तीन लोक से न्यारी है। उस की बातें बड़ी अजीब हैं, मुझे नींद सी लाये देती हैं और तुम तो इतनी व्यस्त हो कि......

नीला एक बल खाती उस के पास से गुज़र गई। वह जाने क्या कह कर केसरी को ले गई और चेतन वहीं खड़ा उन सीढ़ियों को देखता रहा जहाँ वह अभी अभी ग़ायब हो गई थी और फिर वह चुपचाप चारपाई पर जा लेटा।

वहीं लेटे लेटे उसके सामने कल दिन की समस्त घटनाएँ घूम गईं और उस के मन की आग जो नीला को देखते ही भड़क उठी थी चन्दा का ध्यान आने से ठंडी पड़ने लगी।

उस ने अपने आप को कोसा। वह अब विवाहित है। किसी के प्रति विश्वास का बोझ उस के कन्धों पर जा रहा है और यही सोचते सोचते उसे ऊँघ आ गई। उस ने देखा कि वह एक सीमाहीन मरुस्थल में खड़ा है। दूर दूर तक झाड़ियाँ हैं और पलाश तथा बबूल के सूखे टेढ़े मेढ़े वृक्ष। तनिक और ध्यानपूर्वक अपने इर्द गिर्द देखने से उसे समझ आ जाती है कि वह तो बटावल नगर के उसी मरुस्थल में खड़ा है जो उस ने गाड़ी से देखा था। तब उसे आभास होता है कि वह किसी की खोज में किसी के पीछे भागता हुआ यहां आया है। एक झाड़ी से एक खरगोश निकलता है वह उस के पीछे भागता है। तभी वह देखता है कि एक लोमड़ी उस के पीछे पीछे चली आ रही है।

चेतन ने करवट बदली।

स्वप्न फिर चलने लगा। इस बार उस ने देखा कि वह एक बड़ा सा पतंगा बन गया है और एक बड़े से हंडे के इर्द गिर्द घूम रहा है। घूम रहा है, पर हंडा उसे दीपशिखा तक नहीं पहुँचने देता। वह उस के शीशे से टक्करें मारता है और दीपशिखा उस की इस मूर्खता पर अट्टहास कर उठती है।

—०—

२३

विवाह के तत्काल बाद चेतन अपनी पत्नी को लाहौर नहीं ले गया। कारण कई थे।

—उसकी माँ चाहती थी कि अपनी इस नयी बहू को कुछ दिन अपने पास रखे और समस्त गृह-कार्यों में उसे निपुण कर दे।

—भाई साहब चाहते थे कि अब जब उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी है तो चेतन भी अपना वचन पूरा करे और लाहौर में दुकान खोलने में उन्हें सहायता दे।

—भाई साहब की श्रीमती इस बात पर तुली हुई थीं कि वे जालन्धर रहते रहते ऊब गई हैं, इसलिए लाहौर जायेंगी। गर्मियों का मौसम था, बादल हों तो कुछ ठंड हो जाती, नहीं तो ग़ज़ब की गर्मी पड़ती और चँगड़ मुहल्ले के उन दो कमरों में चार छे व्यक्तियों के एक साथ रहने की बात स्वयं एक समस्या थी।

—फिर चेतन (मन की किन्हीं अज्ञात गहराइयों में) न चाहता था कि वह नीला से एकदम इतनी दूर चला जाय। उसके अर्ध-चेतन में कहीं यह बात भी छिपी थी कि चन्दा जालंधर अथवा बस्ती रहेगी तो वह नीला से मिलने के अधिक अवसर पा सकेगा।

इन सब कारणों से अपनी नव-पत्नी को अपनी माँ की देख-रेख में छोड़, अपने भाई साहब को, कुछ थोड़ा बहुत प्रबन्ध करके अपने पीछे आने के लिए कह और अपनी भावज को सान्त्वना देकर कि उसे शीघ्र ही बुला लिया जायगा, चेतन अतीव दुःख और अतीव सुख के इन कुछ दिनों के बाद अपने उसी समाचार-पत्र की चक्की में जुटने

के लिए लाहौर वापस चला गया।

/ सुख की अपेक्षा जीवन में दुःख की मात्रा कहीं अधिक है। पर इन दोनों को एक दूसरे से पृथक करके नहीं रखा जा सकता। सुख के क्षण दुःख को लिये हुए आते हैं और दुःख के सुख को और मानव इन्हीं मधु-विष मिश्रित प्यालों को पीता चला जाता है। /

माँ के दिल में बहू को घर के काम काज में दक्ष करने का जो शौक था वह शीघ्र ही पूरा हो गया, और दो महीने बाद माँ ने फ़तवा दे दिया कि यह नयी बहू बड़ी बहू से भी गई-गुज़री है। वह ज़बान की कड़वी हो, लड़ती झगड़ती हो, पर काम तो करती थी। यह तो बस गुम सुम पत्थर! अजगर की भाँति खाना और सोना जानती है। काम के नाम पर सिफ़र है। यह कहते कहते माँ पञ्जाबी भाषा की एक लोकोक्ति भी सुनाती।

बहू कम्म करन नूँ कही
बहू मुञ्ज भड़ोला जही
बहू खान नूं कही
दो सलूणियाँ दो बही*

और माँ उन दिनों की बातें सुनाती जब वह स्वयं ब्याही आई थी और परदादी गंगा देई के कठिन शासन के नीचे उसे अथक काम करना पड़ता था।

---

*बहू से काम करने को कहा, बहू का मुँह भड़ोला (नांद) बन [illegible] बहू से खाने को कहा, बहू ने दो ताज़ा और दो बासी रोटियाँ माँगने लगती। [illegible] की एक लोकोक्ति है जिसका यही अर्थ है—[illegible] न काम के [illegible] [illegible]

इस बीच में चेतन दो बार जालन्धर आया था। वर्ष भर में एक महीना और महीने भर में अढ़ाई दिनों की छुट्टी उसे मिलती थी। इन अढ़ाई दिनों को इतवार से मिला कर दोनों बार वह साढ़े तीन तीन दिनों के लिए जालन्धर आया था। तब मां के कठिन संयम से हारी थकी उस की पत्नी ने बस्ती चलने की इच्छा प्रकट की थी। उस की ऊबाहट को लक्ष्य कर चेतन ने कहा था :—

"मैं जानता हूँ, तुम्हारा दिल यहाँ नहीं लगता। मैं तुम्हें आज ले चलूं लाहौर, पर अभी भाभी गई है। वह दो-चार महीने रह ले, तब तुम्हें ले चलूं। इतनी जगह तो है नहीं कि तुम दोनों रह सको। अब माँ से मैं क्या कहूँ? उन्हें न नींद आती है, न भूख लगती है। दूसरों को भी वे ऐसा ही समझती हैं। जब तक यहाँ रहना है, यह सब कुछ सहते हुए ही रहना है। प्रातः उठने की और तनिक देर से खाने की आदत डालनी होगी। पुरुषों के खाने से पहले खा लेना माँ के धर्म में पाप है। मैं कह जाऊँगा। तुम न हो कुछ बासी-रूखी खा लिया करना।" और फिर कुछ रुक कर उस ने कहा था, "बस्ती जाने को बहुत मन हो तो हो आओ चन्द दिन बस्ती।"

चन्दा मन ही मन अपने इस सहृदय पति के चरणों में झुक गई थी और इसी बहाने चेतन दोनों बार बस्ती हो आया था।

चाँदनी रात थी और दिन भर बरसने के बाद तीतर के पंखों सी बदली आकाश पर छाई हुई थी, जिसके सम्बन्ध में पुराने लोगों का विचार है कि वह वर्षा के पुनरागमन की सूचना देती है। उमस नहीं थी और ठंडी ठंडी बयार चल रही थी। चाँद के इर्द गिर्द एक नन्हीं सी बदली साँप की तरह कुण्डली मार कर बैठी थी और आकाश

पर फैली हुई बदलियों में कहीं कहीं कोई तारा झाँक उठता था। अपनी ससुराल में छत पर चेतन लेटा हुआ था। पास ही नीला बैठी थी और वह मन्त्रमुग्ध सा उस की ओर देख रहा था।

दोनों चुप थे। नीचे बर्तनों के मले जाने की आवाज़ आ रही थी, कभी हैडरम्प का कर्कश स्वर भी आ जाता था या फिर चन्दा कभी (ऊपर अपने पति की उपस्थिति के कारण) सरगोशियों में बातें करती थी—"भाभी आटा देख लो काफ़ी है या नहीं?... 'अम्बो थाली कहाँ रख दी तैंने" ?..."चावल तो गल गये भाभी .."

उस दिन के बाद चेतन को आज नीला से दो बातें करने का अवसर मिला था। किन्तु उसे बातें सूझ ही न रही थीं और वह निर्निमेष उस के सुन्दर मुख को देख रहा था। नीला का क़द लम्बा न था, किन्तु ऐसा भी नहीं, जिसे ममोला कहा जा सके? वह पतली न थी लेकिन मोटी भी न थी सुडौल, सुगठित अङ्ग, तीखा लम्बा चेहरा, भरे गाल, जिन में हँसते समय गढ़े पड़ जाते थे; बड़ी बड़ी मुस्कराती आँखें और वय-सन्धि को पार करता और रेखाओं को उभराता शरीर। और चेतन उसे मोहित सा देख रहा था।

सोचने पर भी उसे कोई बात न सूझ पड़ी। नीला के सामीप्य और उस चाँदनी रात की तरल मादकता में मस्त वह लेटा रहा। कोने में कोई झिंगुर अनवरत चीं चीं करती रही और चेतन जैसे स्वप्न के संसार में खोया सा उसे सुनता रहा।

नीला चेतन के बालों पर धीरे धीरे हाथ फेरने लगी। अपनी कोमल अंगुलियों से उन्हें प्यार के साथ सुलझाते हुए उसने अनायास कहा "चेतन, ये तुम्हारे बाल कितने कोमल हैं कितने लम्बे और कितने

चेतन को फिर भी कोई उत्तर न सूझा। उस ने केवल नीला का एक हाथ अपने हाथ में ले लिया और कुछ क्षण आँखें बन्द करके चुपचाप पड़ा रहा।

नीला चुप रही। उस के बालों पर धीरे धीरे हाथ फेरती रही, उसके कुण्डलों को सुलझाती रही।

कुछ क्षण बाद चेतन ने कहा, "मैं सोचा करता हूँ नीला मैं दो बार चन्दा को देखने आया और दोनों बार मैंने तुम्हें देखा।"

"मैंने भी आपको दोनो बार देखा और मैं यह भी बता सकती हूँ कि पहले दिन जब आप बस्ती के अड्डे पर खड़े थे, आप ने कौन सा सूट पहन रखा था।"

एक हल्की सी लहर चेतन के शरीर में दौड़ गई। नीला के हाथ को प्यार से सहलाते हुए उस ने कहा, "यदि मुझे उस दिन पता चल जाता कि तुम चन्दा की ही बहन हो तो ..."

"तो जीजा जी .." नीला ने उत्सुकता से पूछा।

किन्तु चेतन चुप रहा। उसने सिर्फ एक लम्बा गहरा निश्वास छोड़ा।

दूसरी सुबह जब चेतन जाने लगा तो नीला अपनी नाचती मुस्कराती आँखें लिये आई। और उसने उस से लाहौर से फिर आते समय, रिबन और क्लिप लेते आने की फ़रमाइश की।

दूसरी बार जब चेतन आया था तो वह न केवल क्लिप और रिबन, बल्कि लिप-स्टिक, क्रीम और पाउडर का डिब्बा भी लाया था। और बड़ी सफ़ाई से अपने इस कृत्य की प्रशंसा उसने

अपनी पत्नी से पा ली थी ।

आते ही उसने चन्दा से कहा था कि रिबन और क्लिप वह नीला के लिए लाया है और लिप-स्टिक, क्रीम और पाउडर उस के लिए। फिर कुछ क्षण ठहर कर दो चार इधर उधर की बातें करके, उसने कहा था, 'मुझे तो जरा ज़रा सी ये दो चीज़ें तुम्हारी बहन को देते शर्म आती है। वह तुम्हारी बहन ठहरी, ये ज़रा ज़रा सी चीजें उसे क्या दूँगा" और फिर जैसे उसे उसी समय ख्याल आया हो, उसने कहा, "तुम यह लिप-स्टिक, क्रीम और पाउडर भी उसे दे देना । उसे कुछ तसल्ली तो हो। तुम्हारे लिए मैं अगली बार आता हुआ और ले आऊंगा। वह तुम्हारी बहन है और पहली बार उस ने कुछ मांगा है......'

और भोली चन्दा मान गई थी। लेकिन जब बस्ती जाने पर उस ने नीला को सब कुछ दिया जो उसके जीजा उसके लिए लाहौर से लाये थे तो वह हँस दी। क्लिप और रिबन उस ने रख लिये किन्तु शेष चीजें उस ने चन्दा को वापस दे दीं। इस पर चन्दा ने उस से कहा था, "इन्हें तुम स्वयं ही अपने जीजा को वापस देना ।"

तब पाउडर का डिब्बा और क्रीम तथा लिप-स्टिक की शीशियाँ उठाकर नीला ऊपर गई थी और तीनों चीजें उस ने चेतन के सामने रख दी थीं ।

"इन्हें आप बहन को दे दें ।" उसने कहा था ।

"लेकिन मैं तो केवल तुम्हारे लिए लाया हूँ ।"

"मैं कैसे इन का प्रयोग कर सकती हूँ ?"

"क्यों ?"

"[illegible] जीजा जी ! किसी कुंवारी लड़की को बस्ती में आप ने सुर्खी या पाउडर लगाये देखा है ?"

इतने ही से उस के गाल सुर्ख़ हो गये और इस से पहले कि चेतन कुछ कहता वह भाग गई।

किन्तु उसी शाम को दोनों चीज़ें अपनी पत्नी को वापस देते हुए उस ने कहा, "अच्छा हुआ नीला ने इन्हें नहीं लिया।"

चन्दा ने चुपचाप चीज़ें ले लीं।

"मुझे केवल तुम्हारा ध्यान था", चेतन ने एक खिसियानी सी हँसी के साथ कहा, "तुम्हारी बहन कहीं यह न कहे कि उस का जीजा महा-कँजूस है, नहीं मैं सोच रहा था कि यह चीज़ें नीला को देने के लिए कह तो दिया, पर तुम्हारे लिए कहाँ से लाऊँगा। इस महीने तो कुछ बचा नहीं पाया।"

चन्दा चुपचाप सुनती रही।

और ब्योरा देते हुए चेतन ने कहा "तुम्हें मैंने लिखा था न कि इस महीने का लगभग सारा वेतन मैंने भाई साहब को दे दिया है। उन्होंने चैम्बरलेन रोड पर दुकान खोल ली है। चल निकलने की पूरी आशा है। पहले ही महीने तीस रुपये आये हैं। लेकिन रुपये तो आते हैं दो-दो चार-चार करके पर क़िराया देना पड़ता है इकट्ठा। सो तीस तो उन्हें दे दिये। शेष दस से ये चीजें लाया और यहाँ भी आया। मकान का किराया अभी देना बाक़ी है। खाने का तो ख़ैर भाई साहब प्रबन्ध कर देंगे, पर मैं सोच रहा था . . . लेकिन यह अच्छा ही हुआ . . . तुम यह रक्खो! अगले महीने टिकुली और तेल आदि भी तुम्हें ला दूँगा।"

किन्तु उसी रात वह नीला से कह रहा था:

२४

सन्ध्या का सूरज कब और कहां छिपता है, छिपते छिपते पश्चिम का क्षितिज कैसा सुन्दर रूप धर लेता है, आकाश में कैसी रंगीन लहरियां बन जाती हैं और सघन वृक्षों के पत्तों में उन की आभा कैसे हीरे मोती जगमगा देती है, इस बात से लाहौर, विशेषतया अनारकली के अगणित वासी सर्वथा अनभिज्ञ रह जाते हैं। वहां तो बाज़ार में बिजली के हंडों के अचानक जग उठने, भीड़ के अधिकाधिक होते जाने, धुएँ और धूल के क्षण-प्रति-क्षण बढ़ते जाने से पता चल जाता है कि सन्ध्या बीत गई है।

चेतन दफ़्तर से साढ़े छः बजे तक, निरन्तर छः सात घंटे काम करके निकलता तो सीधा घर न आता। गनपत रोड से होता हुआ अनारकली का छोटा सा टुकड़ा पार कर अपने आपको मुक्त सा अनुभव करता, पैसे आध पैसे की गज़क लेकर चूसता हुआ या धेल-पैसे की मूंगफली लेकर कुटकता हुआ वह लोहारी के चौक तक चला जाता और वहाँ फ़ज़ल की दुकान पर एक दो साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं को देखा करता। उस की कविता अथवा कहानी जिस पत्र अथवा पत्रिका में छपी होती या जिसमें छपने की उसे आशा होती, उसे ही वह सब से पहले उठाकर देखता। प्रायः जब उस के हाथ में कोई ऐसी पत्रिका आ जाती जिसमें उस की कोई रचना छपी होती और वहीं स्टाल पर पत्रों की देख रेख करने वालों में उस का कोई परिचित होता, तो उसका मन उस अपने परिचित को इस बात से सूचित करने के लिए मचल उठा करता। कई बार ऐसा भी होता कि उस के पास ही कोई व्यक्ति खड़े खड़े उसकी ही कविता अथवा कहानी देख रहा होता, तब उस के मुख पर एक रंग आता और एक जाता। उसे प्रबल आकांक्षा होती कि उस

व्यक्ति को किसी तरह इस बात का पता चल जाय कि यह नवयुवक जो उसके पास ही खड़ा है, उस कहानी अथवा कविता का रचयिता है। किन्तु इस तरह की बात अपने किसी परिचित अथवा अपरिचित को समझाने में वह सदैव असफल रहा करता। हाँ अपनी कृतियों को छपे अथवा पढ़े जाते देख कर उसके मन को अपार प्रसन्नता होती। इसीलिए वह प्रायः धुएँ और धूल की परवाह न करके स्टाल पर कितनी ही देर खड़ा रहता। दुकान का मालिक उसे मुफ़्तखोर न समझ ले, इस विचार से, जैसे तैसे कुछ पैसे बचाकर, एक दो साहित्यिक पत्रिकाएँ भी वह कभी कभी खरीद लिया करता। दुकानदार से मेल जोल बढ़ाने के लिए उसने एक पत्रिका की एजेन्सी भी उसे ले दी थी।

आज चन्दा को लाहौर आना था और चेतन सुबह ही से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था, क्योंकि उसके छोटे भाई ने अपने पत्र में दिन तो लिखा था, पर समय और गाड़ी नहीं।

यद्यपि पहले चेतन की इच्छा अपनी पत्नी को पांच छै महीने जालन्धर रखने की थी, पर उसकी भाभी ने उसके साथ कुछ ऐसा रूखा व्यवहार किया कि दो महीने बाद ही चेतन को अपना वह संकल्प बदलने को विवश होना पड़ा।

हुआ यह कि चेतन अपनी भाभी के स्वभाव से बेतरह तंग आ गया। वह उसके कर्कश लड़ाकेपन से परिचित था, पर वह जिस प्रकार उसके पति के लिए काम कर रहा था (न केवल अपने वेतन का आधे से अधिक भाग उसे दे देता था, वरन् दिन रात दुकान को चलाने की चिन्ता में रत रहता था। समाचार पत्रों में विज्ञापन देता था, मित्रो में प्रचार करता था, अपने पद की परवाह न करके

अनारकली में विज्ञापन बाँटता था) उसे देख कर उसकी भाभी कम से कम उसकी प्रशंसा करेगी और उसे स्नेह देगी, इस बात का उसे विश्वास था। किन्तु श्रीमती चम्पावती उस कुटुम्ब में पली थीं जहाँ भाई को भाई न सुहाता था। विद्वेष उन्हें घुट्टी में मिला था और दो ही महीनों में उन्हें चेतन को अपने 'स्नेह' का कुछ ऐसा परिचय दिया कि एक दिन जब सांझ को उसके भाई आये तो उसने कह दिया कि जब तक भाभी यहाँ हैं वह घर में कदम न रखेगा। इसके बाद दोनों भाइयों में जो मन्त्रणा हुई उसके फल स्वरूप माँ को चिट्ठी लिखी गई कि वह तत्काल चेतन की पत्नी को नित्यानन्द के साथ लाहौर भेज दे। यह भी तय हो गया कि नित्यानन्द जाता जाता भाभी को ले जायगा।

चेतन का मन बड़ा खिन्न था। इसका एक कारण तो यह था कि सारा दिन दफ़्तर में प्रकट वह अँग्रेज़ी तारों का अनुवाद करता रहा था, किन्तु उसका मन जालन्धर से आने वाली प्रत्येक गाड़ी की प्रतीक्षा करता रहा था। किसी न किसी बहाने वह घर जा जाकर देखता और निराश होता रहा था और इसी कारण वह ग़लतियाँ करता और झिड़कियाँ खाता रहा था। दूसरा कारण यह था कि ड्योढ़ी के ऊपर रहने वाली विधवा ने उसे खूब चिढ़ाया था। "क्यों झूठ बोलते हो", उसने कहा था, "ब्याह तो तुम्हारा हुआ ही नहीं, पत्नी कहाँ से आयगी? पता नहीं किसके ब्याह की शीरीनी लाकर तुमने मुहल्ले में बाँट दी!" चेतन ने कहा था कि उसकी पत्नी आज अवश्य आ जायगी, लेकिन जब वह दो तीन बार घर गया और पूछने पर उसे पता चला कि वह नहीं आई तो उसे उनके सामने बहुत खिन्न होना पड़ा था।

फिर जब वह शाम को दफ़्तर का काम समाप्त करके, इस विचार

से कि उस की पत्नी घर न आई बैठी हो, फ़ज़ल की दुकान के बदले सीधा घर गया था तो उसे निराश होना पड़ा था। तब झुंझलाहट में खाना खाते-खाते वह अनायास भाभी से उलझ पड़ा था और खाने की थाली पटक कर उठ खड़ा हुआ था।

वास्तव में भाभी लाहौर आकर फिर जालन्धर न जाना चाहती थी। वह अपढ़ और असंस्कृत नारी थी। उस का विचार था कि उस के देवर और देवरानी उस के पति की कमाई खाना चाहते हैं, इसलिए, उसे जालन्धर भेज रहे हैं। अपने मन का यह भाव उस ने चेतन पर प्रकट कर दिया था। चेतन का रक्त खौल उठा था। और वह लड़ झगड़ कर खाना छोड़ चला आया था।

वहीं अपने अड्डे पर पहुँच कर वह पत्रिकाएँ देखने लगा। उस का मन लग न रहा था। हल्की हल्की सर्दी उतर आई थी। वह खादी की एक कमीज़ पहने और तहमद बांधे खड़ा था। सोच रहा था कि उस के पास गर्म कपड़ा कोई नहीं। उस ने जल्दी की थी, यदि वह सर्दियों में विवाह करता तो और कुछ न सही, उसे एक गर्म सूट तो मिल ही जाता। अब सर्द सूट तो उस ने अपने भाई को दे दिये थे। (वे उस से सिर्फ दो वर्ष बड़े थे और उस के सूट उन्हें फ़िट आते थे। फिर वे डाक्टर थे और सूटों की उन्हें बड़ी आवश्यकता थी) लेकिन लाहौर में सर्दी तो खूब पड़ती है। माना की राष्ट्रीय पत्र के जूनियर एडीटर को सूट-बूट अच्छा नहीं लगता, लेकिन वह एक गर्म अचकन तो सिलवा ही सकता था।

उसे कुछ कुछ भूख सी लग रही थी और वह सोच रहा था कि यदि जेब में कुछ पैसे होते तो सामने कोने के सिक्ख हलवाई की दुकान से डेढ़ पाव, आध सेर गर्म गर्म दूध पीता, जिस पर मलाई की मोटी परत

जमी हुई थी और जिस पर बादामों की गिरियाँ तथा छोहारे दूर ही से जमे दिखाई देते थे। कल्पना ही कल्पना में चेतन के मन मस्तिष्क में उस दूध की सुगन्ध बस गई। कुछ विचलित सा होकर उस ने हाथ की पत्रिका पर से दृष्टि उठाई।

एक ताँगा उस के पास से गुज़रा। पिछली सीट पर एक नव विवाहिता घूंघट निकाले बैठी थी। उस के साथ सफेद धोती पहने उस पर रेशमी चादर ओढ़े एक अधेड़ महिला थी। ज्योंही युवती पर से होती हुई उस की दृष्टि उस महिला पर पड़ी कि उसके मुँह से अनायास निकल गया—"माँ!"

पत्रिका को वहीं फेंक तहमद सम्हालता हुआ वह ताँगे के पीछे-पीछे भागा और उस ने दो एक आवाज़ें दीं—'माँ!' 'माँ!' और फिर 'नित्यानन्द!' नित्यानन्द!'

और माँ ने ताँगा रुकवा लिया।

—०—

२५४

यद्यपि अपनी इस नयी बहू को घर के काम काज में दक्ष बनाने के हेतु माँ का सारा उत्साह जालन्धर ही में भंग हो चुका था, इस पर भी जब चेतन ने अपना वैवाहिक जीवन आरम्भ करने के लिए पत्नी को बुलाया था और लिखा था कि उसे नित्यानन्द के साथ भेज दिया जाय तो वह भी साथ आ गई थी। शायद वह अपनी इस बहू को जीवन के कठिन मार्ग पर चलने से पहले हर तरह समझा बुझा देने का एक और

प्रयास कर देखना चाहती थी। और इसलिए जब अपनी देवरानी के खाने पर चेतन की भावज अनिच्छापूर्वक अपने देवर के साथ जालन्धर चली गई तो माँ उस के साथ न गई।

भाई साहब की दुकान के अन्दर (कदाचित् सामान आदि रखने के लिए) एक परछत्ती थी। उस की छत दुकान के एक तिहाई भाग पर थी और लकड़ी की एक तंग सीढ़ी उससे लगी हुई थी। अपनी छोटी भावज के आने और अपनी पत्नी के जाने के बाद भाई साहब ने अपना बोरिया बिस्तर वहीं लगवा लिया। बिस्तर तो खैर जैसा तैसा था ही, लेकिन बोरिये के नाम पर उन के पास एक सूटकेस ही था, जिस के कब्ज़े इतने पुराने हो चुके थे कि ऊपर का ढकना सदैव खुला रहता था। बस दो जून खाना खाने के लिए वे घर आते थे।

अपनी माँ की उपस्थिति, विशेषतया विवाह के उन पहले दिनों में, चेतन को उतनी अच्छी नहीं लगी। कमरे दो ही थे। अन्दर धीरे से भी बात की जाय तो बाहर सुनाई दे जाती थी। माँ की उपस्थिति में अपनी पत्नी से बातचीत करने का उसे अवसर न मिलता। माँ कुछ रोड़ा अटकाती हो, यह बात न थी। वह तो बाहर के कमरे में अधिक से अधिक फ़ासले पर बैठी, मौन रूप से विष्णुसहस्रनाम, प्रेम सागर अथवा रामायण का पाठ किया करती या केवल माला फेरती रहती। किन्तु अपनी माँ की उपस्थिति में अपनी पत्नी के साथ बातें करने में चेतन को बड़ी लज्जा लगती थी।

तभी इतवार आ गया।

इतवार को अधिकांश समाचार पत्रों के दफ्तरों मे छुट्टी होती है। चेतन के दफ्तर में उस दिन भी काम होता था। बात यह थी कि उस के पत्र का 'संडे एडीशन', (Monday) को निकलता था।

उस दिन दूसरे पत्रों से मुकाबिला न होता था। शनि के दिन भारत सम्बन्धी ब्रिटिश सरकार का ह्वाइट पेपर प्रकाशित हुआ था। इसलिए चेतन के जिम्मे इतवार को स्थानीय नेताओं से इन्टरव्यू* करने की ड्यूटी लगी थी। दूसरे समाचार पत्रों को छुट्टी के कारण यह सुविधा प्राप्त न थी। इसलिए सम्पादक महोदय चाहते थे कि वे उन से पहले ही ह्वाइट पेपर के सम्बन्ध में स्थानीय नेताओं की सम्मतियाँ छाप कर डायरेक्टरों की प्रशंसा और पाठकों का यश अर्जित कर लें।

चेतन दिन भर साइकिल लिये घूमता रहा। वह तीन तरह के नेताओं से मिला। एक जो राजनीतिक थे, राजनीति के सम्बन्ध में गंभीर थे, अपने दृष्टिकोण के बारे में दयानतदार थे और जिनकी राय को महत्व भी दिया जाता था। ये नेता पहले सारे के सारे ह्वाइट पेपर का अध्ययन करना चाहते थे। फिर अपने दल के नेताओं के वक्तव्यों की प्रतीक्षा करना चाहते थे। किसी प्रकार का ओछा वक्तव्य देना उन्हें स्वीकार न था – उन के वक्तव्य कुछ अस्पष्ट से थे, कुछ अपूर्ण से, जिनमें निश्चयात्मक रूप से कुछ भी न कहा गया था और विहगंम-दृष्टि से देखने पर ह्वाइट पेपर के असंतोषजनक होने का उल्लेख था।

दूसरे नेता सामाजिक थे और राजनीति में उन्हें इसलिए घसीटा जाता था कि उन के पास पैसा अधिक था या फिर उन का नाम बड़ा था। वे किसी न किसी साम्प्रदायिक सभा के प्रधान अथवा उपप्रधान थे। उन के वक्तव्य बड़े नपे तुले दुअर्थी शब्दों में वेष्ठित थे।

---

* भेंट=साधारणतः किसी विषय के सम्बन्ध में किसी नेता की सम्मति जानने अथवा किसी नेता अथवा पदाधिकारी के सम्मुख अपनी बात रखने के लिए की गई भेंट को इन्टरव्यू कहते हैं।

तीसरे ऐसे थे जो न राजनीतिक थे न सामाजिक! जो बस नेता थे। काँग्रेस की सभाओं में शुद्ध खादी पहन कर भाषण झाड़ आते थे और किसी सामाजिक पार्टी में अपटूडेट फैशन की भूषा में सज बज कर जा पहुँचते थे। वे न इसके सम्बन्ध में गंभीर थे न उसके—जीवन उनके लिए फूलों के उपवन सा था जिसमें वे भौंरे बने घूमना चाहते थे। इन में से कोई डाक्टर था, कोई वकील, कोई वैद्य, कोई वैरिस्टर, कोई धनी रिटायर्ड अफ़सर—जिसे ज्ञात न था कि अपने धन का क्या करे—अथवा कोई सम्पन्न बेकार—जिसे मालूम न था कि अपने समय का क्या करे।

उन्हींमें से एक लेडी डाक्टर से इन्टरव्यू करने के बाद चेतन सारा दिन हँसता रहा।

ये देवी जी प्रेक्टिस तो न जाने कहाँ करती थीं, पर माल रोड पर उन के पति की कोठी थी। देवी जी बी० ए० थीं और अपने नाम के साथ उन्होंने इस तरह डिग्री लगा रखी थी, जैसे वह डिग्री केवल उन्हीं के लिए बनी हो। एक बार म्यूनिसिपल कमेटी की सदस्या बन चुकी थीं, दो बार प्रान्तीय कौंसिल के लिए भी खड़ी हुई थीं और फिर नेताओं के ज़ोर देने पर (जिसका अर्थ यह है कि अन्य उम्मीदवारों से कुछ रुपये ऐंठकर) दोनों बार बैठ गई थीं।

चेतन ने जा कर घंटी का बटन दबाया। उन्हों ने दरवाज़ा स्वयं खोला। वह उन के पीछे पीछे ड्राइङ्ग रूम में चला गया—साफ़ चमकती हुई दरी, झमझमाते हुए ग़लीचे, झिलमिलाते हुए कुशन, साफ़ सुथरी मेज़-कुर्सियाँ, बहुमूल्य केबिनेट, क़ीमती चित्र और मेंटल-

र रखी हुई कई ऐसी सुन्दर वस्तुएँ जिनका वह नाम भी न
था । श्रीमती राधारानी (यही उन का नाम था) एक श्वेत
में सुसज्जित, एक कुर्सी सरका कर उस पर बैठ गईं—तीस बत्तीस
आयु, गेहुआं रंग, लेकिन बेहतरीन पेण्ट से चमकता हुआ ।
के नीचे माँस उभरा हुआ था । कुछ ऐसी सुन्दर तो न थीं, लेकिन
को मालूम था कि सभ्य-समाज में वे अनुपम सुन्दरी गिनी जाती

आप ने ह्वाइट पेपर पढ़ा ?"
कल रात जस्टिस नवल किशोर की पार्टी थी, मैं समाचार पत्र
पढ़ पाई ।"
में हलचल मच गई है । देश के भाग्य का निर्णय सुना
या है, पर इन श्रीमती जी को जो लीडर कहलाती हैं, उस से कुछ
नहीं ! किन्तु उन्हें ही क्या—चेतन ने सोचा—स्वयं उसे
पेपर से कितनी दिलचस्पी है ? कल जब उस के दफ़्तर में टेली-
र टेलीफ़ोन आ रहे थे, लोग ह्वाइट पेपर की शर्तें सुनने के
चैन थे, वह बड़े शांत भाव से इनफ़र्मेशन ब्यूरो से ह्वाइट पेपर
ी ले कर चला आया था । उस के मन में उसे देखने की तनिक
कता पैदा न हुई थी और इस बहाने जब उसे छुट्टी मिली
वह गोल बाग की ओर से आते हुए अपने घर से होकर अपनी
ीला पत्नी से दो बातें करते जाना भी न भूला था । इसके
समाचार पत्र में काम करने पर भी उसे बिल की उन धाराओं के
, जिनका उस ने स्वयं अनुवाद किया था, किसी दूसरी के सम्बन्ध
भी तो ज्ञात न था ।
स्तव में दो प्रकार के लोगों को राजनीति में किसी तरह की
ी लेने का अवकाश नहीं मिलता । एक तो धनी-मानी लोग,
स्टिस नवल किशोर की पार्टियों में शामिल होते हैं । कहीं अकाल

पड़े, कहीं भूकंप आये, ये उन अवसरों से भी (खैराती कन्सर्टों के द्वारा) कुछ न कुछ मनोरंजन का सामान जुटा लेते हैं। दूसरे वे जिनका मस्तिष्क तेरह-चौदह घंटे काम करने के पश्चात् इतना थक चुका होता है कि उस में राजनीति अथवा किसी दूसरी नीति के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। जब कभी ये दूसरे अपने अधिकारों को पहचानेंगे तभी पहलों को राजनीति में भाग लेने को विवश होना पड़ेगा।

चेतन ने कहा, "हमें आपका वक्तव्य तो अवश्य चाहिए, कल के विशेष साप्ताहिक अंक में सब नेताओं के वक्तव्य जा रहे हैं। आप का भी तो रहना चाहिए।"

"लेकिन मैंने तो अभी तक समाचार-पत्र ही नहीं पढ़ा।"

"आप देख लीजिए। श्रीमती सुशीला देवी, श्रीमती अमृत कौर, मिसेज़ निहाल चन्द, सब के वक्तव्य जा रहे हैं। ह्वाइट पेपर का प्रभाव जहाँ तक भारतीय नारी के अधिकारों पर पड़ता है, वहीं तक बस आप पढ़ लें!"

और वे 'ट्रिब्यून' लेकर दूसरे कमरे में चली गईं। चेतन आध घंटे तक वहीं बैठा रहा। समय काटने के लिए जल्दी जल्दी लिये गये वक्तव्यों को कातिबों* के हवाले करने के लिए ठीक करता रहा। तत्पश्चात् वह मन ही मन सांझ का प्रोग्राम बनाता रहा।

वह लाला गणेश दास एडवोकेट, मंत्री प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के यहाँ गया था। वे मिले नहीं थे और दयाल सिंह मैन्शन्ज़ से, जहाँ वे रहते थे उसे पता चला था कि रात को नौ बजे से पहले न आयँगे, और चेतन ने सोचा था कि सन्ध्या को ज़रा जल्दी खाना खा कर वह अपनी

* उर्दू में लिथो छपाई होने से, पहले सब मैटर कातिब (छापे सी सुन्दर लेखनी वाले) लिखते हैं, फिर उसे प्लेट या पत्थर पर अंकित किया जाता है, तब वह छपता है।

पत्नी को माल पर सैर के लिए ले जायगा और रास्ते में दयाल सिंह मैन्शन्ज़ से दस पन्द्रह मिनट में इन्टरव्यू लेता जायगा।

तभी पौन घण्टे के बाद श्रीमती राधारानी बाहर आईं और उन्होंने कुछ अन्यमनस्कता से कहा, "मैं तो कुछ नहीं लिख सकी, वास्तव में मेरा ध्यान बहुत सी बातों की ओर लगा है। मैं लिखने का 'मूड' नहीं बना सकी।"

चेतन ने कहा, "आप ज़बानी मुझे अपने विचार बता दें, मैं स्वयं लिख लूंगा।"

"मैं कुछ भी नहीं सोच सकी।"

लेकिन चेतन की सहज पत्रकार-बुद्धि को इतना समय नष्ट करके यों ही उठ जाना स्वीकार न हुआ। धैर्य के साथ उस ने कहा, "मैं समझ गया हूँ, आप के कैसे भाव हैं। आप ने भारत की नारी के सम्बन्ध में शर्तें तो पढ़ ही ली हैं, मैं आप की ओर से एक छोटा सा वक्तव्य लिखता हूँ। यदि आप को उस की कोई बात अपने विचारों से मेल खाती दिखाई न दे अथवा असंगत लगे तो काट दीजिएगा।"

उन्होंने कुछ 'न' 'न' की, लेकिन चेतन कहा, "यदि आप को कोई वाक्य पसन्द न हुआ तो मैं उसे बदल दूँगा या काट दूँगा।" और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये उसने लिखना आरम्भ कर दिया।

और यद्यपि उस ने स्वयं वे शर्तें न पढ़ी थीं, "किन्तु पहली दो महिलाओं के वक्तव्यों से जो उस ने अभी सँवारे थे, कुछ मसाला लेकर उसने एक गोल मोल सा वक्तव्य लिख डाला, जिसमें मिस्टर मैक्डानल्ड के प्रयास की सराहना भी थी, किन्तु उस के फलस्वरूप भारत की नारी को जो अधिकार मिले, उनसे असंतोष भी दिखाया गया था और यह भी आशा प्रकट की गई थी कि ह्वाइट पेपर की नींव पर जो इंडिया एक्ट बनाया जायगा, उस में भारतीय नारी को अधिक

अधिकार दिये जायेंगे।

वक्तव्य लिख कर चेतन ने श्रीमती जी को सुनाया। वे प्रसन्न हो गईं और उल्लसित स्वर में उन्होंने कहा कि कोई वाक्य काटने की आवश्यकता नहीं। चेतन ने उन के हस्ताक्षर कराये और चला आया।

इस इन्टरव्यू के बाद चेतन ने मन ही मन निश्चय कर लिया कि आज के लिए यह यथेष्ट है। तीन वक्तव्य वह इससे पहले ले चुका था। लाला गणेश दास का वक्तव्य वह शाम को ले लेगा और समय मिला तो दफ्तर में जाकर दे आयेगा, नहीं तो दूसरे अंक में छप जायगा।

घर जाकर उस ने कहा कि रात को उस की ड्यूटी नहीं, इस लिए उस की इच्छा है कि पत्नी को लारेंस की सैर करा लाए।

यह कह कर वह दफ्तर गया। दो घण्टे जम कर उस ने वह सब मसाला देख-दिखा कर कातिब को दिया। लिखे जाने पर पढ़ा और सम्पादक महोदय को नमस्कार करके चल पड़ा।

वह आज लोहारी के चौक की ओर नहीं गया सीधा घर आया। खाना खाया और फिर पत्नी से झट तैयार होने के लिए कहा। यह अजीब बात थी कि दहेज में कितनी ही चीज़ें आने पर भी उस की पत्नी के पास कोई ऐसी धोती अथवा ब्लाउज़ न था जिसे पहन कर वह उसके साथ सैर को जा सके। कीमती साड़ियाँ और रेशमी, दरियाई और सिल्मे के दो तीन सूट थे, लेकिन वे अनायास ही दृष्टि को अपनी ओर खींचते थे। चेतन के पास साधारण कपड़े भी अधिक न थे और वह अपने सीधे-साधे कपड़ों को पहने हुए रेशमी सूट अथवा बनारसी साड़ी में सुसज्जित पत्नी के साथ सैर को न जाना चाहता

पत्नी को माल पर सैर के लिए ले जायगा और रास्ते में दयाल सिंह मैन्शन्ज़ से दस पन्द्रह मिनट में इन्टरव्यू लेता जायगा।

तभी पौन घण्टे के बाद श्रीमती राधारानी बाहर आईं और उन्होंने कुछ अन्यमनस्कता से कहा, "मैं तो कुछ नहीं लिख सकी, वास्तव में मेरा ध्यान बहुत सी बातों की ओर लगा है। मैं लिखने का 'मूड' नहीं बना सकी।"

चेतन ने कहा, "आप ज़बानी मुझे अपने विचार बता दें, मैं स्वयं लिख लूंगा।"

"मैं कुछ भी नहीं सोच सकी।"

लेकिन चेतन की सहज पत्रकार-बुद्धि को इतना समय नष्ट करके यों ही उठ जाना स्वीकार न हुआ। धैर्य के साथ उस ने कहा, "मैं समझ गया हूँ, आप के कैसे भाव हैं। आप ने भारत की नारी के सम्बन्ध में शर्तें तो पढ़ ही ली हैं, मैं आप की ओर से एक छोटा सा वक्तव्य लिखता हूँ। यदि आप को उस की कोई बात अपने विचारों से मेल खाती दिखाई न दे अथवा असंगत लगे तो काट दीजिएगा।"

उन्होंने कुछ 'न' 'न' की, लेकिन चेतन कहा, "यदि आप को कोई वाक्य पसन्द न हुआ तो मैं उसे बदल दूँगा या काट दूँगा।" और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये उसने लिखना आरम्भ कर दिया।

और यद्यपि उस ने स्वयं वे शर्तें न पढ़ी थीं, "किन्तु पहली दो महिलाओं के वक्तव्यों से जो उस ने अभी सँवारे थे, कुछ मसाला लेकर उसने एक गोल मोल सा वक्तव्य लिख डाला, जिसमें मिस्टर मैकडानल्ड के प्रयास की सराहना भी थी, किन्तु उस के [illegible] भारत की नारी को जो अधिकार मिले, उनसे असंतोष भी [illegible] गया था और यह भी आशा प्रकट की गई थी कि ह्वाइट पेपर की पर जो इंडिया एक्ट बनाया जायगा, उस में भारतीय नारी को [illegible]

उन में भी उस की अपनी पत्नी के लिए ज्ञानार्जन की महत्ता उस का प्रिय विषय था। इस लिए इस सम्बन्ध में उस ने एक छोटा मोटा भाषण देना शुरू कर दिया। लेकिन तभी 'दयाल सिंह मैन्शन' पर उस की दृष्टि पड़ी और उसे याद आया कि उसे तो लाला गणेश दास से इन्टरव्यू लेना है।

दयाल सिंह मैन्शन्ज़ की शक्ल आधे कटे हुए अँडे की सी है। जहाँ से दुकानों की पाँत गोल होने लगती है वहीं प्रसिद्ध काँग्रेसी नेता लाला गणेशदास एडवोकेट का बोर्ड लगा था। क़ाफ़ी चौड़ी सीढ़ियाँ उन के फ़्लैट को जाती थीं। अपनी पत्नी को साथ ले जाने में उसे कुछ संकोच हुआ। उसे सीढ़ियों ही में खड़ी करके वह ऊपर गया। घंटी का बटन दबाया। नौकर ने उसे आफ़िस में बैठाया और बताया कि वकील साहब अभी आते हैं।

चेतन पाँच मिनट तक बैठा रहा, लेकिन वे नहीं आये। तब भाग कर और चन्द सीढ़ियां उतर कर उसने अपनी पत्नी से कहा; "घबराना नहीं, मैं अभी आया!" और वह भाग कर फिर कमरे में अपनी जगह पर जा बैठा।

वहीं बैठे-बैठे उसे पांच मिनट और बीत गये तब उस ने नौकर से फिर पूछा और उसे मालूम हुआ कि वे बस खाना खत्म ही कर रहे हैं, अभी पाँच मिनट में आ जायेंगे।

तब फिर चेतन भाग कर सीढ़ियों पर गया। अपनी पत्नी के कन्धे को थपथपाते हुए उस ने कहा, "देखो घबराना नहीं, संकुचाना नहीं। अव्वल तो यह माल रोड है, यहाँ भले आदमी बसते हैं, लेकिन कौन कह सकता है कि एक भला आदमी कब भलाई छोड़ दे और बुराई शुरू कर दे। इसलिए यदि कोई सीढ़ियों से गुज़रने वाला व्यक्ति किसी तरह की शरारत करना चाहे तो बेधड़क होकर उसे डांट देना

नाम है। बड़े से बड़ा अपराधी यदि अपने पाप समाज की दृष्टि से बचा सकता है तो वह पुण्यात्मा है और फिर दण्ड, क्षमा, कर्तव्य......इस अपराधी को क्षमा करके सिपाही अपने आप को दया का अवतार समझ कर छाती फुला सकता है। किन्तु यदि कोई बड़ा अफ़सर पास हो तो ऐसे व्यक्ति को जिस की साइकिल की बत्ती तेल समाप्त होने के कारण बुझ गई हो और जो सचमुच माफ़ी का अधिकारी हो, पकड़ कर चालान करके अपनी कर्तव्यपरायणता के लिए प्रशंसा भी पा सकता है।

और चेतन के ओठों पर एक मुस्कान फैल गई।

'नीला गुम्बद' पार करके दोनों माल रोड पर हो लिए। चेतन बहुतेरा चाह रहा था कि अपनी इस नयी पत्नी को अपने हँसमुख स्वभाव का कुछ परिचय दे—और कुछ नहीं तो दो एक ठहाके ही लगाये। लेकिन वह कुछ खिन्न सा हो रहा था। शायद उस के अर्द्ध-चेतन मन में कहीं से हीन-भाव आ बैठा था, जो श्रीमती राधारानी के ड्राइंग-रूम को देख कर पैदा हो गया था, या फिर शायद उस के कपड़ों की कमी अज्ञात रूप से उसके मन-प्राण पर छा गई थी।

तंग आकर उसने अपनी पत्नी को उन नेत्री महोदया की बात सुनानी शुरू कर दी। किन्तु बहुत समझाने पर भ', ह्वाइट पेपर क्या बला है, चंदा भली भाँति यह बात न समझ सकी...'हुँ' ..'हुँ'! वह जरूर करती रही, किन्तु वक्तव्य लिखने-लिखवाने के सम्बन्ध में श्रीमती राधारानी की घबराहट और उन के स्थान पर स्वयं ही वक्तव्य लिखने की बात कह कर चेतन अपनी पत्नी के ओठों से जिस हँसी की आशा करता था, उस का वहाँ कोई आभास न मिला! तब और भी खिन्न होकर उस ने अपनी पत्नी को बताया कि उसे अवश्य ही शीघ्रातिशीघ्र शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। स्त्रियों के लिए, विशेषतया लेखकों के साथ विवाह की गाड़ी में जुतने वाली स्त्रियों के लिए और

उन में भी उस की अपनी पत्नी के लिए ज्ञानार्जन की महत्ता उस का प्रिय विषय था। इस लिए इस सम्बन्ध में उस ने एक छोटा मोटा भाषण देना शुरू कर दिया। लेकिन तभी 'दयाल सिंह मैन्शन' पर उस की दृष्टि पड़ी और उसे याद आया कि उसे तो लाला गणेश दास से इन्टरव्यू लेना है।

दयाल सिंह मैन्शन्ज़ की शक्ल आधे कटे हुए अँडे की सी है। जहाँ से दुकानों की पाँत गोल होने लगती है वहीं प्रसिद्ध काँग्रेसी नेता लाला गणेशदास एडवोकेट का बोर्ड लगा था। क़ाफ़ी चौड़ी सीढ़ियाँ उन के फ़्लैट को जाती थीं। अपनी पत्नी को साथ ले जाने में उसे कुछ संकोच हुआ। उसे सीढ़ियों ही में खड़ी करके वह ऊपर गया। घंटी का बटन दबाया। नौकर ने उसे आफ़िस में बैठाया और बताया कि वकील साहब अभी आते हैं।

चेतन पाँच मिनट तक बैठा रहा, लेकिन वे नहीं आये। तब भाग कर और चन्द सीढ़ियां उतर कर उसने अपनी पत्नी से कहा; "घबराना नहीं, मैं अभी आया!" और वह भाग कर फिर कमरे में अपनी जगह पर जा बैठा।

वहीं बैठे-बैठे उसे पांच मिनट और बीत गये तब उस ने नौकर से फिर पूछा और उसे मालूम हुआ कि वे बस खाना खत्म ही कर रहे हैं, अभी पाँच मिनट में आ जायेंगे।

तब फिर चेतन भाग कर सीढ़ियों पर गया। अपनी पत्नी के कन्धे को थपथपाते हुए उस ने कहा, "देखो घबराना नहीं, संकुचाना नहीं। अव्वल तो यह माल रोड है, यहाँ भले आदमी बसते हैं, लेकिन कौन कह सकता है कि एक भला आदमी कब भलाई छोड़ दे और बुराई शुरू कर दे। इसलिए यदि कोई सीढ़ियों से गुज़रने वाला व्यक्ति किसी तरह की शरारत करना चाहे तो बेधड़क होकर उसे डांट देना

या मुझे बुला लेना। सीढ़ियां चढ़ते ही सब से पहले कमरे में हूँ!"

उसे यों आश्वासन देकर और स्वयं आश्वस्त होकर वह फिर कमरे में जा बैठा।

तभी नेता महोदय धोती बांधते-बांधते आ गये। एक निमिष के लिए चेतन ने उन्हें देखा। काला रंग, मोटा थल थल पिल-पिल शरीर, मंझला क़द, छोटी - कंधों में धँसी हुई गर्दन, उस पर बड़ा चौड़े मस्तक वाला सिर और उस पर बिना क्रीज़ की गोल सी बनी गांधी टोपी। और चेतन सोचने लगा कि किस प्रकार ऐसे भद्दे शरीर में ऐसा प्रखर मस्तिष्क है।

आकर लाला जी ने एक लम्बा वक्तव्य लिखवाया—"ह्वाइट पेपर तो बस ह्वाइट पेपर (कोरा काग़ज) ही है। जो अधिकार एक हाथ से दिये गये हैं, उन्हें दूसरे हाथ से छीन लिया गया है। न केवल यह, बल्कि जो अधिकार पहले प्राप्त थे उन पर भी हस्तक्षेप किया गया है। आदि आदि.........

जब चेतन वह महत्वपूर्ण इन्टरव्यू लेकर वापस आया तो उस की पत्नी खड़े खड़े थक कर और लगभग रुआंसी होकर वहीं सीढ़ियों पर बैठ गई थी।

लेकिन इस इन्टरव्यू के प्राप्त हो जाने से चेतन की खिन्नता कुछ दूर हो गई थी, इस लिए उसने अपनी पत्नी को तनिक गुदगुदा कर हँसा दिया।

सीढ़ियों से उतर कर चेतन ने सोचा कि अब क्या किया जाय? अभी सवा दस बजे थे। चेतन के मन में आया कि वापस जाये और अपनी कारगुज़ारी दिखाकर प्रशंसा पाये। लेकिन उसे मालूम था कि शंसा तो सम्पादक महोदय को मिलेगी और उसे और कई घण्टे काम रना पड़ेगा। किसी भव्य भवन के निर्माण का श्रेय तो इञ्जीनियरों

ही को मिलता है, राज मज़दूर तो बस दिन रात काम करते हैं। उस ने निश्चय किया कि आज जब इतने दिनों के बाद कुछ अवसर मिला है तो कहीं घण्टे डेढ़ घण्टे सैर करली जाय।

पत्नी ने कहा, "देर हो गई है, मां प्रतीक्षा करती होगी, इस लिए घर चलना चाहिए।" लेकिन चेतन का मन कुछ उमंग पर था। उस ने कहा, "अब तक तो इन्टरव्यू सिर पर सवार था, सैर का आनन्द तो अब आयेगा।

और वे दोनों लारेंस की ओर चल पड़े। चेतन ने प्रकाशो का किस्सा छेड़ दिया।

विक्टोरिया गेट के पास पहुँच कर चेतन ने कहा, "आओ तुम्हें लारेंस दिखा लायँ।"

"वह क्या है?"

"यहाँ का प्रसिद्ध बाग है!"

"लेकिन रात बहुत बीत गई है।"

"तो क्या हुआ?"

और वे विक्टोरिया गेट में से होकर चले। चिड़िया घर की ओर संकेत करके उस ने बताया कि यह चिड़िया घर है और वे जलचरों के तालाब के पास से होकर गुज़र रहे हैं। दूसरी ओर बारासिंघे और मृग हैं जिनको बाहर जाने से रोकने के लिए बड़े बड़े ऊँचे लोहे के जंगले लगे हुए हैं।

चन्दा ने उत्सुकता से इधर उधर देखा, किन्तु सड़क की बिजली के मद्धिम उजाले में जंगले के एक हिस्से के अतिरिक्त उसे कुछ भी दिखाई न दिया। हाँ, सड़े पानी की गंध उस के मस्तिष्क में बस गई और उस का दम घुटने सा लगा।

लारेंस बाग बोटेनिकल गार्डन्स के नाम से भी प्रसिद्ध है। भांति

भांति के देशी-विदेशी पेड़ पौधे वहां लगे रहते हैं। चिड़िया घर के तालाब से ज़रा आगे न जाने किस नाम के देशी या विदेशी दो बड़े बड़े घने विशालकाय पेड़ हैं, जिन पर चमगादड़ विचित्र डरावने स्वर में चीखते रहते हैं। वहां पहुँच कर चेतन की पत्नी डर गई—अँधेरी रात, सर्दी, ग्यारह का समय और सन्नाटा! चेतन का हृदय भी धक धक करने लगा......यदि कोई गुण्डा इधर निकल आये और उन्हें तंग करे तो वह क्या कर सकता है? उस की तो आवाज़ भी सुनाई न देगी......दो चार गुण्डे तो बड़ी आसानी से उस की पत्नी तक को छीन कर ले जा सकते हैं......

तभी उस की पत्नी ने पीछे से उसे छुआ, "मैं कहती हूँ चलिए, वापस चले चलिए।" उस की आवाज़ रोने की हद को पहुँच रही थी, "मुझे डर लग रहा है।"

उस समय चेतन के अन्तर का पुरुष जाग उठा। डर! वह तो पुरुष है। डर उस के सामने क्या वस्तु है? और उसने साहस के साथ कहा, 'नहीं नहीं अब इतनी दूर आकर वापस क्या जायँगे। यहां बड़ी रौनक हुआ करती है। और मन म उसने सोचा – म्यूनिसिपैलिटी ने ऐसी अँधेरी जगह बिजली का बल्ब क्यों नहीं लगवाया।

लगभग सौ गज़ चलकर वृक्षों में से छनता हुआ मिण्टगुमरी हाल के बल्ब का प्रकाश सामने दिखाई दिया।

चेतन का ख्याल था कि लान में कुछ रौनक होगी। अभी महीना डेढ़ महीना पहले, जब एक दिन उसे इधर आने का अवसर मिला था, उसने बारह बजे रात तक लारेंस में रौनक देखी थी। लेकिन वह भूल गया था कि सर्दी उतर आई है और लारेंस में आने वालों के पास इन सर्दियों में अपने आप को व्यस्त रखने के लिए सैर के अतिरिक्त दूसरे भी कई साधन हैं।

यद्यपि उस प्रकाश से उसे कुछ तसल्ली हुई थी और वह रात के उस सन्नाटे में अपनी पत्नी को लारेंस का परिचय देता रहा था, लेकिन उस का अलबेलापन ठंडा पड़ चुका था और उस समय तक नहीं जगा जब तक सड़क छोड़ महारानी विक्टोरिया की मूर्ति नहीं आ गई।

घर पहुँचा तो माँ ने रोकर कहा कि उसे दूसरे दिन ही गाड़ी पर चढ़ा दिया जाय।

उस समय तो चेतन बे-सिर-पैर के बहाने बनाकर और एक दो बार खिसियानी सी हँसी हँसकर सोने चला गया, लेकिन दूसरे दिन उसने माँ से क्षमा माँगी और कहा कि उसे एक जगह दफ़्तर का काम पड़ गया, जिससे देर हो गई। उसने अपनी पत्नी से भी कहा कि वह माँ के चरणों पर गिर कर क्षमा मांगे। किसी तरह के अपराध के बिना वह अपनी सास के क़दमों पर झुकी भी, लेकिन माँ नहीं मानी। वह प्रातः ही जाने को तैयार हो गई। वह कुछ बोली नहीं, गुस्सा नहीं हुई, जाते समय हँसी भी, उसने आशीर्वाद भी दिया, किन्तु नये ज़माने के यह लच्छन देख सकने की शक्ति न रखने के कारण उसने वहाँ रहना उचित नहीं समझा।

—०—

२५

माँ के चले जाने पर एक और समस्या चेतन के सामने आई। उसे तो उसका पता ही न चलता यदि भाई साहब बातों बातों में स्वयं ही इसकी ओर इशारा न कर देते।

बात यह थी कि चन्दा भाई साहब से हाथ भर का घूँघट निकालती थी। दोपहर के समय चेतन तो १२ बजे दफ़्तर चला जाता और भाई साहब काम से निबटकर एक डेढ़ बजे आते। तब चन्दा भाग कर पिछले कमरे में जा छिपती। भाई साहब किसी पड़ोसिन को बुलाते। उस से कहते कि तनिक चन्दा से खाना देने के लिए कह दे। वह खाना लाकर दे देती और तब तक बैठी रहती जब तक भाई साहब खाना समाप्त न कर चुकते। इस तरह भाई साहब को अपनी इस छोटी भावज से यदि कोई बात कहनी होती तो पहले वे उस पड़ोसिन से कहते, फिर वह चन्दा से कहती। इसी प्रकार चन्दा का उत्तर भी उसी के द्वारा भाई साहब तक पहुँचता।

"अब घर की अपनी कुछ ऐसी बातें भी होती हैं जो किसी पड़ोसिन के सामने नहीं भी कही जा सकतीं!" भाई साहब ने कहा था। "तुमने अच्छा आर्य समाजी घर में विवाह किया! मैंने कभी नहीं देखा कि छोटी भावज जेठ की छाया तक से दूर भाग जाय।"

उसी दिन चेतन ने अपनी पत्नी से कहा, "यह तुम्हारी कैसी मूर्खता है? विवाह के अवसर पर तो तुमने घूंघट निकाला नहीं, ससुर छोड़ ससुर के पिता तक उपस्थित थे। और अब जेठ ही से डेढ़ गज़ लम्बा घूंघट निकाले फिरती हो।"

उस की पत्नी हँसी—अपनी मोतियों की उज्जल हँसी—"मैं तो मां जी के डर से निकालती हूँ". उस ने कहा, "कहिए अभी हटा दूँ ?"

"लेकिन माँ यहाँ कहाँ बैठी है।"

"यदि उन्हें पता चल जाय ?"

"तो फिर कौन प्रलय आ जायगा ? उन का और परदादी गंगादेई का ज़माना अब लद गया !"

चन्दा ने उस दिन अपने पति को वचन दिया कि वह निश्चय ही घूँघट हटा देगी, किन्तु इसपर भी अपने जेठ के सामने घूँघट उठाने में उसे झिझक ही रही। जब भी वे बाज़ार में सामान खरीदने के लिए जाते तो यों होता कि एक ओर भाई साहब होते और दूसरी ओर चेतन और दोनों के मध्य घूँघट निकाले चन्दा चलती। पर्दे के कारण उसे जो कष्ट होता उसके विचार से भाई साहब आगे बढ़ जाते अथवा पीछे रह जाते। और यदि कोई ऐसी चीज मोल लेनी होती जिसमें उनके परामर्श की आवश्यकता न होती तो वे कोई न कोई बहाना करके चले जाते।

दीवाली का दिन था। चेतन बड़े भाई और अपनी पत्नी के साथ साँझ समय अनारकली की सैर को निकला। यद्यपि दीवाली के दिन अनारकली की सैर का आनन्द रात ही को आता है, लेकिन चेतन और उस के बड़े भाई का यही विचार था कि दिये जलने से पहले पहले अनारकली की सैर कर ली जाय और जो मिठाई आदि लेनी है, ले ली जाय। कारण यह था कि दिये जलते ही अनारकली में इतनी भीड़ हो जाती थी और उस भीड़ में गुंडों का इतना आधिक्य होता था कि किसी शरीफ़ आदमी के लिए अपनी बीवी या बहन को साथ लेकर निकलना और बेइज़्ज़ती से बचना

लगभग असम्भव था। उससे पिछले वर्ष दीवाली के अवसर पर अनारकली में जो हुआ था, उस के क़िस्से चेतन ने समाचार-पत्रों में पढ़े थे। अपने एक मित्र की पत्नी के मुँह से सुने भी थे और उस का खून खौल उठा था—उस का मित्र अपनी पत्नी और लड़की के साथ दीवाली की रात अनारकली की बहार देखने घर से निकला था। अभी वे 'पैसा अखबार स्ट्रीट' ही में थे कि उन्हों ने देखा कि स्वयं-सेवकों और सिपाहियों द्वारा सुरक्षित रस्सियों को तोड़ कर गुंडों का अपार समूह बाढ़ पर आई हुई नदी की तरह बह रहा है—उनके देखते देखते एक लड़का उछल कर एक तांगे में पिछली सीट पर बैठी हुई स्त्री के बराबर जा बैठा। इस से पहले कि अगली सीट पर बैठा हुआ पुरुष उस से कुछ कहता, उस स्त्री को छेड़, फिर उछल कर भीड़ में जा मिला। एक चलती मोटर के साथ लटकते हुए दो तीन युवकों को उन्हों ने देखा जो अन्दर बैठी लड़कियों से मज़ाक कर रहे थे और चेतन के मित्र 'पैसा अखबार स्ट्रीट' से वापस चले आये थे।

अभी सूरज डूबा न था जब चेतन, उस की पत्नी और भाई साहब 'नीला गुम्बद' की ओर से अनारकली में दाखिल हुए। पिछले वर्ष दीवाली के दिन जो गुंडागर्दी हुई थी, उस के विरुद्ध समाचार पत्रों में बड़ा हो-हल्ला मचा था। यही कारण था कि इस वर्ष महावीर दल, सेवा समिति, आर्य्य समाज, स्काउट्स—सभी मिलकर अनारकली के प्रबन्ध में व्यस्त थे।

"ये सब प्रबन्ध धरे के धरे रह जायंगे", भाई साहब ने दार्शनिकों के से अन्दाज़ में कहा, "मुझे तो उन स्त्रियों पर हँसी आती है जो यह सब जानते हुए भी तमाशा बनने चली आती हैं।"

"और मुझे कालेज के लड़कों पर गुस्सा आता है," चेतन बोला,

जो ऐसी अनुचित और भोंडी हरकतें करते हैं। उन के घर माँ बहनें नहीं क्या ?"

"माँ बहनें !" भाई साहब हँसे, मुझे बाबू राम की याद आ जाती है।"

"बाबू राम ?"

"हमारे साथ पढ़ता था", भाई साहब ने कहना शुरू किया। "लफंगा नम्बर वन था। कोई लड़की जाती (सूरत शकल कैसी भी क्यों न हो) वह छेड़खानी करने से बाज़ न आता था। एक दिन कालेज से छुट्टी हुई। हम लोग साइकिलों पर चले जा रहे थे कि दूर एक स्त्री एक युवती को साथ लिये हुए जाते दिखाई दी। उसे देखते ही बाबू राम ने साइकिल बढ़ाई। उस के साथियों ने उससे बाज़ी मारने की कोशिश की। पैडलों पर पैरों का ज़ोर बढ़ गया। साइकिलें हवा से होड़ ले चलीं। लेकिन ज्यों ही बाबू राम ने उस लड़की के पास पहुँच कर फबती कसी और लड़की ने मुँह घुमाया कि बाबू राम के ओठों से एक हल्की सी चीख निकल गई।

"क्या माल है !" लड़की की सुन्दरता देख कर एक ने आह भरी !

किसी ऐसे व्यक्ति की भाँति जिसे शिकंजे में कसा जा रहा हो, बाबू राम फुसफुसाया "मेरी बहन है, ज़रा साइकिल तेज़ चलाओ।"

चेतन ने बीच बाज़ार रुक कर ठहाका लगाया।

"भाई साहब ने अपने विचारों की रौ में तनिक उत्तेजित हो कर कहा, "ये कालेज के लड़के, जो आती जाती लड़कियों को छेड़ते हैं, उन्हें देख कर अत्यन्त अश्लील मज़ाक करते हैं; यह कभी नहीं सोचते कि उन्हीं के मित्र उन की बहनों को देख कर भी ऐसे ही अश्लील मज़ाक करते होंगे।"

"हमारे पाठ्य-क्रम में चरित्र और नागरिकता की शिक्षा को कोई महत्व प्राप्त नहीं।" चेतन को जैसे भाई साहब की उत्तेजना छू गई, "स्कूलों कालेजों में सन्ध्या-वन्दन, कुरान की तलावत अथवा बाइबल का पाठ धर्म-शिक्षा का चरम-ध्येय समझ लिया जाता है। अव्वल तो इन संस्थाओं में छात्र धर्म के नाम पर एक दूसरे का रक्त बहाने को तत्पर रहने पर भी धार्मिक पाठ-पूजा की ओर ध्यान नहीं देते। जो देते हैं वे बिना 'धर्म' के महत्व को समझे अंधाधुन्ध सन्ध्या-वन्दन किये जाते हैं। रहे सरकारी स्कूल और कालेज—वहाँ अपने धर्म के प्रति आस्था ही मिट जाती है और लड़के माँ बाप का रुपया उड़ाने के अतिरिक्त कुछ नहीं सीखते। स्वतन्त्र भारत के स्कूल कालेजों में ऐसा न होगा, नागरिकता की शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा और दासता की बेड़ियों के कटने पर हमारा युवक......"

चेतन भाषण देने के अन्दाज में बड़े जोर से हाथ को हवा में घुमा रहा था कि अचानक उसकी पत्नी उसे धरती में धँसती हुई दिखाई दी—पलक झपकते एक बाँह से चेतन ने और दूसरी बाँह से भाई साहब ने उसे थामा, नहीं वह धरती में समा गई होती अथवा औंधे मुँह गिर पड़ती।

बात यह थी कि जब दोनों भाई कालेज के लड़कों की इस उच्छृङ्खलता का आधारभूत कारण जाने बिना उनके दुश्चरित्र को कोसने में एक दूसरे से बाज़ी ले जाने में निमग्न थे, चन्दा पूर्ववत घूंघट निकाले दोनो के मध्य चली जा रही थी। बेली राम ड्रगिस्ट की दुकान के पास से होकर लोहारी के चौक तक धरती के अन्दर ही अन्दर जो नाली जाती है, उसमें कभी कभी कुछ जगह खुली पड़ी रहती है और म्युनिसिपल कमेटी उसे कई कई दिन तक ढकने का नाम नहीं लेती। वही नाली एक दो जगह से उस दिन खुली पड़ी थी। चन्दा ने घूंघट तो निकाल ही रखा

था। वह गढ़ा न देख पाई। उस का पाँव उस में फँस गया। यदि दोनों भाई अचानक दोनों ओर से उसे थाम न लेते तो वह औंधे मुँह गिर पड़ती, रेशमी साड़ी जो खराब होती सो होती, टाँग अलग टूट जाती।

जब तनिक स्वस्थ होकर चन्दा फिर चलने लगी तो उस ने पूर्ववत घूंघट निकाल लिया, बल्कि लज्जा के कारण लाल हो जाने वाले मुख को छिपाने के लिए और भी लम्बा कर लिया। किन्तु साड़ी को ठीक कर जब वह चलने लगी तो चेतन ने क्रोध के साथ पीछे से घूंघट खींच लिया।

चन्दा ने फिर घूंघट नहीं निकाला, किन्तु सारे मार्ग उस ने जेठ की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखा, दृष्टि नीचे किये वह पूर्ववत चलती गई।

किन्तु दो महीने के बाद जब भाभी फिर लाहौर आई और उस ने अपनी देवरानी को निर्लज्जों की भांति अपने जेठ के सामने हँसते और ठहाके लगाते देखा तो उस के आग सी लग गई।

चेतन की ससुराल में किसी लड़की की शादी थी और इस बात की सम्भावना थी कि शायद दोनों को वहाँ जाना पड़े। इसलिए भाई साहब ने अपनी पत्नी को बुला लिया था। उस के पत्र पर पत्र आते थे और फिर चेतन भी इसे ज़्यादती समझता था कि वह तो अपनी पत्नी के साथ लाहौर का आनन्द लूटे और उस के भाई साहब दुकान की उस परछत्ती पर पड़े सड़ते रहें।

लाहौर पहुँच कर श्रीमती चम्पावती देवी ने देखा कि जब उसके पति दुकान से आये तो उस की देवरानी ने न तो घूंघट निकाला—घूंघट निकालना तो दूर रहा, सिर पर कपड़ा तक नहीं लिया— न

अपना स्वर ही धीमा किया और न आँखें ही झुकाईं। उसी तरह ठहाके लगाती रही। और तो और अपने आदर-योग्य जेठ से भी एक दो मज़ाक करने से नहीं हिचकिचाई।

उस का देवर उस समय घर पर न था, नहीं वह अवश्य ही उस से इस निर्लज्जता का कारण पूछती।

इस के बाद एक दिन जब फिर चन्दा अपने जेठ की उपस्थिति में ज़ोर से हँसी तो चेतन की भाभी ने उसे रोक दिया, "ससुर जेठ की कुछ तो शर्म होनी चाहिए बहन, आँखों का पानी क्या बिल्कुल ही मर गया।"

चन्दा जब हँसती थी तो सुन्दर लगती थी। उस का मौन चेतन को न भाता था, इसलिए वह सदैव उसे हँसाता रहता था और चन्दा को हँसने की आदत भी पड़ गई थी। जेठानी की इस डाँट से उस की हँसी सहसा रुक गई और ग्लानि से उस के मुँह का रंग पीला पड़ गया।

उसी साँझ आँगन के ऊपर रहने वाली विधवा चेतन की भावज को यह सदुपदेश दे रही थी:

"तुम हँसने और घूंघट उठाने की बात कह रही हो, मैं कहती हूँ, वह सिनेमा और सैर तमाशे अपने जेठ के साथ जाती है। देखो बहन ज़माने की आँख में शर्म नहीं, अपने पति को सम्हाल कर अपने बस में रखो!"

चम्पावती ने रुद्ध-कंठ से कहा, "और मैं अपने देवर तक से घूंघट निकालती हूँ, ऊँचे स्वर से बात नहीं करती!"

"मुझे तो उस पर हँसी आती है जिसने अपनी पत्नी को इतनी

स्वच्छन्दता दे रखी है।" पड़ौसिन ने रदा जमाया था।

किन्तु चम्पावती को न अपनी देवरानी पर गुस्सा था न अपने देवर पर। उसे तो अपने पति पर क्रोध था।

जब रात को उस के पति खाना खाने आये तो उस ने कहा—

"भला वह तो बच्ची है, आप को शर्म आनी चाहिए जो इस तरह उस के हँसी-मज़ाक में योग देते हो।"

भाई साहब पूरे तितिक्षावादी थे—मीठी, कड़ुवी, तीखी, चुभती किसी बात का भी उन पर कुछ असर न होता था। वे चुपचाप खाना खाते रहे।

"जब वह आप के सामने बैठी 'हिं, हिं' करती है तो आप से रोका नहीं जाता उसे," भाभी ने मुँह बिचका कर कहा।

"मैं उस से कह दूँगा" यह कह कर हाथ मुँह धो, छड़ी उठा वे सैर को चले गये थे।

किन्तु अपने पति के इस वाक्य से चम्पावती की तुष्टि न हुई थी और जब उस की देवरानी उस के संग खाना खाने बैठी तो उस ने अपने आप पर बड़ा संयम रखकर उसे समझाया कि बड़ों के प्रति छोटों का क्या कर्तव्य होना चहिए, छोटों को बड़ों से कितना विनम्र व्यवहार करना चाहिए, किस प्रकार ससुर और जेठ से पर्दा करना चाहिए और किस प्रकार उन के सामने बोलना तक न चाहिए।

"पुरुष तो ऐसे ही होते हैं," चेतन की भाभी ने कहा था, "उन्हें तो लोकाचार का ज्ञान नहीं होता। इन सब बातों का ध्यान तो स्त्रियों ही को रखना पड़ता है। तुम्हारे जेठ ने बहुतेरा कहा, पर जब देवर सयाने हुए तो मैंने उन से पर्दा करना आरम्भ कर दिया!"

चन्दा ने उस समय तो अपनी जेठानी को कोई उत्तर न दिया, पर जब रात को दो बजे के लगभग चेतन दफ्तर से आया तो उस ने कहा, "अब मैं भाई साहब से पर्दा किया करूंगी !"

"क्यों ?"

उत्तर में सरला चन्दा ने दिन की सारी बातें बता दीं।

गहरी रात होने के बावजूद चेतन ने एक ऊँचा ठहाका लगाया—इतना ऊँचा कि अन्दर कोठरी में सोई चेतन की भाभी जग पड़ी और उस की बच्ची ज़ोर ज़ोर से रोने लगी। नींद भाभी की आंखों से उड़ गई और वह उस कमरे के अंधकारी में लेटी दत्तचित्त होकर अपने देवर और देवरानी की बातें सुनने लगी।

किन्तु दो तीन रातों से निरन्तर अधिक काम करने के कारण थका हारा चेतन 'वह तो पागल है" इतना कहने के अतिरिक्त कुछ और कहे बिना सिरहाने रखा दूध पीकर सो गया।

इस घटना के दूसरे दिन इतवार था। इसलिए चन्दा अपने पति की उपस्थिति में बाजा सीखने का अभ्यास कर रही थी।

एक दिन चेतन ने पड़ोस के एक विवाह में चन्दा को गाते सुन लिया था। उस के स्वर की मधुरता को देख कर उस ने मन में निश्चय कर लिया था कि वह उसे नियमित रूप से गाने की शिक्षा दिलायेगा। पेट काट कर किसी न किसी तरह वह एक हारमोनियम भी ले आया था और उस ने स्वयं एक संगीतज्ञ से एक दो गीत सीख कर उसे सिखा भी दिये थे। उसी समय भाई साहब आ गये।

"देखिए भाई साहब मैंने कितनी अच्छी धुन सीखी है," चन्दा ने सहसा प्रशंसा पाने के विचार से कहा।

भाई साहब चुप खड़े रहे। एक शब्द भी उन के मुँह से न

निकला। पहले वह इस तरह पूछती तो वे कहते, "कौन सी धुन ? ज़रा सुनें तो !" पर वे चुप खड़े रहे और फिर गहर-गम्भीर वाणी में उन्होंने कहा, "चन्दा तुम मेरे सामने न गाया करो !"

चेतन आश्चर्यचकित सा उन के मुँह की ओर देखने लगा और फिर जब भाई साहब ने उसी स्वर में उस से कहा, "तुम मेरे सामने इतने ज़ोर से हँसा भी न करो !" तो चेतन झल्लाकर बोला—"यह नहीं हो सकता भाई साहब, चन्दा हँसेगी, गायेगी। आप यह कैसी बात कर रहे हैं ? वह मुँह फुलाये बैठी अच्छी नहीं लगती। हँसती रहे तो अच्छी लगती है !"

भाई साहब ने इसका उत्तर नहीं दिया। केवल इतना कहा "तुम्हारी भाभी आपत्ति करती है !" और फिर चन्दा से कहा, "तुम्हें सास की तरह अपनी जेठानी का आदर करना चाहिए।"

यह अन्तिम बात चेतन के मन में लग गई और उस ने चन्दा को समझाया, "भाभी पुराने और संकुचित वातावरण में पली है। उस के विचारों और भ्रमों का कुछ न कुछ ध्यान रखना ही चाहिए। भाई साहब के सामने तुम नंगे सिर न रहा करो और कम हँसने की भी कोशिश किया करो !" और फिर बायीं आँख दबा कर शरारत से मुस्कराते हुए उस ने कहा, "विशेषकर जब भाभी सामने हो !"

—०—

२६

अपने इस वैवाहिक जीवन से चेतन कुछ अधिक संतुष्ट हो और चन्दा के लाहौर आ जाने पर नीला उसे बिल्कुल भूल गई हो, यह बात न थी। उसे चन्दा अच्छी लगती थी, वह उसके साथ हँसता-हँसाता और सैर-तमाशे भी जाता था। किन्तु इस पर भी जब उसने चन्दा से सुना था कि कान्ता की शादी है और शायद उन्हें इलावलपुर जाना पड़े तो अज्ञात रूप से वह निमन्त्रण की प्रतीक्षा किया करता था। भाभी को लाहौर ले आने के लिए भी उसने इसी विचार से अनुमति दे दी थी। चन्दा सरल थी, भोली भाली थी, उदार थी, सहृदय थी, विनम्र और संकोचशील थी। पर वह सुन्दर और शिक्षित न थी, इसी बात का खेद चेतन को रहा करता था। इतने दिन के वैवाहिक जीवन के बाद उस खेद में कमी न हुई थी, बल्कि वह कुछ बढ़ा ही था।

बातचीत के अचानक बन्द हो जाने से चंदा कुछ उदास हो जाती और धीरे से कहती:—

"दाल की अंग्रेज़ी मुझे नहीं आती।"

"दाल की दाल ही रहने दो, शेष वाक्य की अंग्रेज़ी बनाओ।"

चन्दा सोचती.........

"He eat........"

क्रोध को बरबस रोक कर चेतन कहता, "ग़लत! कल क्या नियम बताया था तुम्हें ?"

चन्दा चुप रहती।

"जिस वाक्य में 'ता है' या 'ती है' आये उसमें वर्ब (verb) अर्थात् क्रिया के साथ एस (s) या, ई-एस (es) लगता है।" क्रोध को किसी न किसी तरह दबा कर चेतन कहता और फिर एक दूसरे वाक्य की अंग्रेज़ी पूछता।

"नौकर बाज़ार से मिठाई लाता है। अंग्रेज़ी बनाओ।

"नोकर की अँग्रेज़ी मुझे नही आती।" चन्दा की आवाज़ चिढ़-चिढ़ी होती।

"नौकर को नौकर ही रहने दो!" चेतन के स्वर में क्रोध होता।

"लेकिन बाज़ार.........."

"तुम अँग्रेज़ी तो बनाओ। बाज़ार को बाज़ार ही कहते हैं।"

किन्तु अँग्रेज़ी उस से फिर भी न बनती। कार्तिक की स्निग्ध धवल ज्योत्सना गोल बाग की सुनसान वीथियों, वृक्ष-लताओं, पुष्प-पल्लवों घास से आच्छादित भूमिखंडों और तारकोल से काली सड़कों को स्वप्न की सी सुन्दरता प्रदान कर रही होती; दिन भर चँगड़ानियों की गालियाँ और कर्कश स्वर सुन सुन कर ऊबे हुए उस के कान पत्तों की मीठी मर्मर सुनने के लिए आकुल होते; उपलों से लदी हुई दीवारों

को देख देख थकी हुई उस की आँखें इस स्वप्न-संसार का रस लेना चाहतीं; सड़क के किनारे जहाँ एक चबूतरे पर पुराने समय की एक नन्हीं सी तोप पड़ी है, वह कुछ क्षण बैठना चाहती; पर उस का यह अरसिक पति जो कवि और कथाकार होने का दम भरता था......'ये कैसे कवि हैं,' वह सोचती......और वाक्य की अँग्रेज़ी उस से न बनती......

चेतन पहले तो झल्लाता, फिर शिक्षा पर एक छोटा सा भाषण झाड़ता और फिर चुपचाप, तनिक जल्दी-जल्दी, चलने लगता। चलते-चलते वह आगे हो जाता और वह पीछे घिसटती आती।

हर दूसरे तीसरे ऐसा होता। मानसिक तौर पर वह रूठता, शारीरिक तौर पर मान जाता।

अपने वैवाहिक जीवन के तीन चार महीने बाद ही उस ने एक दिन अनन्त को पत्र लिखना आरम्भ किया—

'......मैं कहता हूँ अनन्त मैंने क्या शादी कर ली! तुम ठीक कहते हो। मैं डरपोक हूँ मेरी दशा उस व्यक्ति की सी है जो एक हिंस्र पशु से डर कर दूसरी ओर भागता है तो उस के सम्मुख दूसरा आ जाता है, दूसरे से भयभीत होकर तीसरी ओर मुड़ता है तो उसे तीसरे का सामना करना पड़ता है।

मैं डर रहा था कि मैं गिर रहा हूँ। अपने चरित्र से गिर रहा हूँ। और मैंने सोचा कि दूसरों की क्यारियों में मुँह मारने की आज्ञा देने की अपेक्षा मन के इस उद्दंड पशु को अपनी एक निज की क्यारी बना दूँ। पर कदाचित् मन के इस पशु को दूसरे की खेतियों में मुँह मारना अधिक रुचता है।

दूसरे की आलमारी में लगी हुई पुस्तकें अनन्त बड़ी

अच्छी लगती हैं; उन्हें पढ़ने को बड़ा जी चाहता है, उन्हें पढ़ने में बड़ा आनन्द मिलता है, पर जब हम उन्हें खरीद लेते हैं तो वे प्रायः अनपढ़ी और उपेक्षित हमारी आलमारियों में पड़ी रहती हैं।

मेरे मन में सदैव द्वन्द्व मचा रहता है। चन्दा सीधी साधी, भोली भाली लड़की है। सहृदय, भावुक और उदार! किन्तु मुझे उस के ये गुण नहीं भाते। जब वह मेरे सामने आती है तो मैं अनायास ही नीला से उस की तुलना करने लगता हूँ......'

चेतन अभी इतना ही लिख पाया था कि चन्दा उस के पास आ गई। चेतन ने जल्दी से पत्र मेज़ के दराज़ में रख दिया।

"क्या लिख रहे थे?" पत्नी ने हँसते हुए पूछा

"योंही एक कविता आरम्भ की थी"

"सुनाइए।"

"खत्म होने पर सुनाऊँगा।" उसने कहा और फिर दीर्घ-निःश्वास भर कर बोला..."लेकिन तुम कविता अविता क्या समझोगी? काश कहीं तुम भी कुछ परिश्रम करके थोड़ा बहुत पढ़ लेतीं!" फिर सहसा बात का रुख बदल कर उस ने पूछा "वह पुस्तक पढ़ डाली तुमने?"

"मैंने पढ़नी आरम्भ की थी पर......।"

चेतन ने उस के मुख की ओर देखा। निर्निमेष वह देखता रहा और वहीं उस के मुख पर उसे किसी दूसरे मुख की रेखाएँ बनती दिखाई दीं और उस ने बड़े प्यार से हल्की सी चपत उसके गाल पर लगा दी।

उस की पत्नी चकित सी खड़ी उस की ओर देखती रही। तब चेतन ने अपने प्रिय विषय 'शिक्षा' पर एक छोटा सा भाषण दे डाला।

"जवानी के चार वर्ष तो चन्दा योंही बीत जायँगे। यों, फुर से!"

और उस ने चुटकी बजाई, "पता भी न चलेगा। यौवन में शारीरिक आकर्षण ही पति-पत्नी को एक दूसरे के समीप रखता है। किन्तु युवावस्था बीतते देर नहीं लगती और समय आ जाता है कि पति के लिए घर में कोई आकर्षण नहीं रहता। पति पत्नी को नहीं समझ पाता और पत्नी पति को। यदि तुम मुझ सी अध्ययनशील बन जाओ चन्दा, साहित्य में तुम्हें भले बुरे की तमीज हो जाय तो हमारे बीच पति-पत्नी के बदले संगी और संगिनी का नाता स्थापित हो जायगा, हम एक दूसरे को भली-भांति समझते जायँगे और दिन प्रति दिन हमारे प्रेम की ज़ंजीर मज़बूत होती जायगी।"

चन्दा चुपचाप अपने पति की ओर देखती रही। फिर उस ने धीरे से कहा, "मैं पढ़ने लगती हूँ तो मुझे नींद आ जाती है।"

"यह नींद तो प्रगति की घातक है। नींद आलस्य है, नींद मृत्यु है।" और चेतन को पता न था कि वह क्या बक रहा है। वह कहता चला गया—"अज्ञान भी एक नींद है चन्दा - महानिद्रा सी भयानक! इस महानिद्रा पर विजय पाने के लिए तुम्हें अपनी साधारण नींद से कुछ घड़ियों का त्याग करना होगा, नहीं तो अज्ञान की महानिद्रा अपने अंधकार से तुम्हें लील जायगी।"

चन्दा ने तनिक हँस कर कहा, "ब्याह होने पर मैं समझा करती थी कि पढ़ाई समाप्त हो गई, किन्तु मैं आप के आदेश का पालन करने की पूरी कोशिश करूँगी।"

"तुम्हारी पढ़ाई तो वास्तव में अभी आरम्भ हुई है।" चेतन ने कहा, "ज्ञान जाग्रति है और जाग्रति मानव को किसी समय भी अप्राप्य न होनी चाहिए।"

"मैं और अधिक लगन से पढ़ने का यत्न करूँगी।"

और वह बाहर जाकर चारपाई पर लेटे-लेटे पढ़ने लगी।

चेतन ने पत्र निकाला और उसे फिर लिखने लगा, किन्तु अपनी पत्नी की सरलता और सहृदयता उस पर कुछ ऐसी छा गई कि वह उस पत्र को और आगे न बढ़ा सका। पढ़ कर उसने उसे फाड़ दिया। मन ही मन अनन्त को सम्बोधित करके उस ने केवल इतना कहा—"तुम नहीं जानते अनन्त, मेरे मन में कैसा द्वन्द्व मचा रहता है, प्रति दिन मुझे कैसी यन्त्रणा सहनी पड़ती है।'

२७

आखिर वह निमन्त्रण आ गया, जिसकी प्रतीक्षा चेतन इतने दिनों से मन ही मन कर रहा था। इलावलपुर में उस के ससुर की ननिहाल थी। वहीं उन के मामा की पोती का विवाह था। ससुर के ननिहाल से साधारणतया दामाद को दूर का भी वास्ता नहीं होता, किन्तु पंडित दीनबन्धु और वेणी प्रसाद को वास्तव में उन के मामा ही ने पाला था। दोनों बच्चे ही थे, जब उन के सिर से उन के पिता की छाया उठ गई थी। नाना भी जीवित न थे किन्तु मामा ने अपने इन भानजों को अपने बच्चों से भी अधिक समझा। पडित वेणी प्रसाद ओवरसियर हो गये, पंडित दीनबन्धु ने भी खूब व्यापार किया। इस प्रकार उन्होंने जो कमाया वह इस पिता तुल्य अपने मामा को भेजते रहे। यही कारण था कि प्राइमरी स्कूल का अध्यापक होने पर भी मामा ने दूर-दूर तक ईंटों के भट्ठों का व्यवसाय फैला रखा

था और इलावलपुर छोड़, वहाँ से बाइस मील दूर, जालन्धर में आकर अपना एक पक्का मकान बनवा लिया था। उन के लड़के हरमोहन और कुलदीप राजकुमारों की भांति रहते और हरमोहन के बारे में तो एक बार इतना भी सुना गया था कि मामा उसे विलायत तक भेजने की सोच रहे हैं।

मामा के बड़े लड़के चूनी लाल की मृत्यु हो चुकी थी। गर्मियों के दिनों में अपनी कुमैत घोड़ी पर सवार हो कर अपने एक दूर के भट्टे पर गया था। मार्ग में उसे प्यास लगी। एक खेत में पक्के हरे तरबूज़ बिखरे थे। उतर कर उस ने दो बड़े-बड़े तरबूज़ तोड़े। हथेलियों का ज़ोर देकर उनकी फाँकें की और खा गया। प्यास तो मिट गई, परन्तु भट्टे पर पहुँचते पहुँचते पेट में तीव्र शूल उठने लगा। जाते ही धरती पर लोट गया। ऊसर, उजाड़ स्थान, समीप के गाँव में कोई हकीम न वैद्य, हैज़े का सख्त दौरा, सन्ध्या होते होते तड़प कर ठंडा हो गया।

इसी चूनी लाल की बड़ी लड़की कान्ता का विवाह था। माँ बाप के मर जाने के बाद दादा ने उसे अपनी दूसरी पोतियों से कहीं ज्यादा लाड़ से पाला था। और वह चाहता था कि उस की शादी भी ऐसी धूम धाम से करे कि बच्ची को पिता का अभाव न खटके। चन्दा कान्ता के साथ खेली कूदी और बड़ी हुई थी। उसे कान्ता ने स्वयं अपने हाथ से पत्र लिखा था और अनुरोध किया था कि वह अपने साथ जीजा जी को भी लायें। पर जीजा जी तो दूर रहे, चन्दा स्वयं भी जाने के लिए कुछ वैसी आतुर न थी।

बात यह थी कि चेतन के रोज़ रोज़ के भाषणों से तंग आकर अन्त में चन्दा नियमित रूप से स्कूल जाने लगी थी। "यदि आप मुझे सचमुच शिक्षित देखना चाहते हैं," उस ने कहा था, "तो आप

मुझे किसी स्कूल में दाखिल करा दें । आप स्वयं मुझे न पढ़ा सकेंगे। एक शब्द पढ़ायेंगे तो चार बार झिड़केंगे और चार घंटे लैक्चर देंगे ।" उस ने यह बात इतने भोलेपन से कही था कि चेतन हँस दिया था और उस ने उस के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था और वह बड़े शौक से पढ़ने लगी थी । उस की अध्यापिका का कहना था कि उस ने अत्यन्त प्रखर बुद्धि पाई है। चन्दा को स्वयं भी पढ़ने का बहुत शौक हो गया था और जो भी समय उसे मिलता, उस में वह पढ़ने में लगी रहती । वह जब दाखिल हुई थी तो लड़कियों ने एक बार सारी पुस्तकें समाप्त कर ली थीं, पर उस की अध्यापिका ने विश्वास दिलाया था कि यदि चन्दा जी लगा कर पढ़ेगी तो वह तीन महीने ही में हिन्दी-रत्न की परीक्षा दे लेगी। यद्यपि अध्यापिका ने यह भी आश्वासन दिलाया था कि यदि वह फ़ेल हो गई तो भी दूसरे वर्ष उसे भूषण में दाखिल कर लिया जायगा, पर चन्दा असफल न होना चाहती थी। रत्न में पढ़ने वाली छोटी छोटी लड़कियों में बैठते हुए उसे पहले ही बड़ी लज्जा आती थी, असफल होकर वह उन में कहाँ बैठ सकेगी! और उस ने जी जान से पढ़ना शुरू कर दिया था।

यही कारण है कि जब उसे निमन्त्रण मिला तो वह स्वयं इलाबलपुर जाने के लिए कुछ उतनी व्यग्र न थी । लेकिन जब चेतन दफ़्तर से आया तो उस ने अपने पति से इस बात का ज़िक्र नहीं किया, "कान्ता की शादी है," उस ने कहा, "ताऊ जी का पत्र आया है। कान्ता और नीला ने आप से आने का अनुरोध किया है।" चेतन को संक्षिप्त में उस ने पत्र का सारांश बता दिया, पर अपनी ओर से किसी प्रकार की इच्छा प्रकट नहीं की।

चेतन का हृदय धक-धक करने लगा, पर अपने आन्तरिक उल्लास को छिपा कर उस ने अत्यन्त संयत स्वर में बेपरवाही से कहा, "अच्छा

लाओ तो देखें क्या लिखा है ?"

चन्दा ने पत्र अपने पति को दे दिया। वास्तव में यह निमन्त्रण हरमोहन की ओर से था। किन्तु एक अलग काग़ज़ पर कान्ता ने उस ने आने के लिए कहा था। इस पर चन्दा के ताऊ और पिता की ओर से 'ताकीद,†थे' और नीला के हाथ की लिखी हुई दो पंक्तियों में 'ताकीद मज़ीद'* थी, जिनमें उस ने अपने इस प्यारे जीजा जी को सानुरोध बुलाया था।

"आज कल दफ़्तर में बड़ा काम है," चेतन ने पत्र पढ़ कर लौटाते हुए कहा, "दो सम्पादक तो बीमारी के कारण छुट्टी पर गये हुए हैं, तीसरा बीमार होने की फ़िक्र में है। फिर भाई मैं तो ब्याह-शादी के झमेलों से बड़ा घबड़ाता हूँ, और शादी नगर में हो तो बात भी है, यहां जाना होगा उन के गांव में......."

"हां विवाह तो वे अपने यहां ही करेंगे," चन्दा ने कहा, "लेकिन इनायतपुर गांव नहीं कस्बा है !"

"अरे यहां के गांव और कस्बों में कौन सा बड़ा अन्तर होता है और मैं तो अपने सम्बन्धियों तक के ब्याह-शादियों में शामिल नहीं होता। फिर............"

बात काट कर उस की पत्नी ने कहा, "फिर निकट सम्बन्धी हों तो भी कुछ बात है, आप को दफ़्तर में काम है और मैं स्कूल से छुट्टी लेना पसन्द नहीं करती। कान्ता की बात दूसरी है। उस से मिलने को जी चाहता है, परन्तु उसे एक बार यहां बुला लेंगे। वहां जाने की कोई आवश्यकता नहीं।"

अन्तिम बात सुन कर चेतन कुछ [illegible]। वह सोचता था

---

† ताकीद = अनुरोध। * ताकीद मज़ीद = और भी अनुरोध।

उस की पत्नी अनुरोध करेगी, वह 'न' 'न' करेगा और आखिर बड़ी मुश्किल से, उस पर एहसान का बोझ लादते हुए, जाने को तैयार हो जायगा। पर चन्दा की यह बात सुनकर क्षण भर के लिए वह अप्रतिभ सा उस के मुँह की ओर तकता खड़ा रहा। फिर उस ने शीघ्र ही पैतरा बदला।

"दूर निकट की बात नहीं," वह बोला, "प्रायः भाई-भाई भी इतने दूर चले जाते हैं कि शत्रु उन से समीप जान पड़ते हैं। इस के विपरीत पराये कई बार इतने समीप आ जाते हैं कि अपने हो जाते हैं। प्रश्न समय का है। मेरे पास समय कम है।" फिर कुछ रुक कर वह बोला, "किन्तु मैं सोचता हूँ कि तुम्हारे पिता और ताऊ तो उन्हें अपना-सा ही समझते हैं। इसलिए यह तो एक तरह से उन्हीं के यहाँ जाना है। निमन्त्रण भी तो उन्हीं की ओर से आया है, कहीं वे हमारे न जाने का बुरा न मानें?"

और वह कुछ क्षण चुप रहा ताकि चन्दा पर इस तर्क की प्रतिक्रिया जाने। पर उस का मुख भाव-शून्य था। चेतन ने फिर कहा—

"तुम इतने महीनों से इस ब्याह की बात कर रही थीं, मुझे साथ चलने को तैयार कर रही थीं, अब....."

"पहले मुझे कोई परीक्षा तो पास करनी न थी, शादी-ब्याह में शामिल होती रही तो दे चुकी परीक्षा और फिर कहीं फेल हो गई तो आप ही जान खायंगे।"

चेतन हँसा, "वहाँ कौन से इतने दिन लगेंगे, चार पाँच दिन के लिए ही तो जाना होगा।"

चन्दा चुप रही। वह सोच में पड़ गई। फिर लम्बी साँस लेकर चेतन ने कहा :

"और मैं सोचता हूँ इस बहाने तुम्हें भी कुछ आराम मिल

और मैं भी समाचार-पत्र की इस चक्की से कुछ दिनों के लिए छुट्टी पा लूंगा।"

अपने आराम की बात तो शायद चन्दा पर उतना असर न डालती, पर अपने पति के लिए हँसी-खुशी के दो दिन उपस्थित करने को वह झट से तैयार हो गई।



और नीला के जीवन में एक ऐसी ही महत्वपूर्ण घटना बन गया।

वसन्त के आरम्भ की सुन्दर सन्ध्या थी; सूरज पश्चिम की सुनहरी झील में धीरे धीरे उतर रहा था; उस की सुनहरी किरणें नाचते हुए मोर के पंखों सी आकाश में गोलाकार फैल रही थीं; और चेतन अपने साले रणवीर के साथ इलाबलपुर को चला जा रहा था।

चन्दा को उसने पहले भेज दिया और स्वयं एक कवि सम्मेलन में भाग लेने के लिए जालंधर रुक गया था। वहाँ उससे जाने क्या बद-पहरेज़ी हो गई कि इलाबलपुर के लिए गाड़ी में सवार होते समय तक उसके सिर में तीव्र पीड़ा होने लगी। इलाबलपुर के स्टेशन पर जब वह उतरा तो उसका शरीर बुरी तरह काँप रहा था।

अपना हाथ रणवीर की ओर बढ़ाते हुए उस ने कहा, "रणवीर तनिक मेरा हाथ तो देखो, मुझे बेहद जाड़ा लग रहा है।"

"जीजा जी आप का शरीर तो तवे की तरह गर्म है।" रणवीर ने उस की कलाई छूते ही दुश्चिन्ता से कहा।

"ज़रा तेज़ चलो, मेरा जी घबरा सा रहा है।"

दोनों और तेज़ चलने लगे।

रास्ते की धूल से चेतन का सफेद पायजामा मैला हो रहा था और मन ही मन वह सोच रहा था कि उस के पास तो कोई दूसरा पायजामा भी नहीं।

कस्बे के बाहर एक जौहड़ में अत्यन्त दुर्गन्ध भरा पानी इकट्ठा हो रहा था। उस में एक दो बेडौल से सूखे पेड़ों के तने पड़े थे। किनारे पर कुछ टूटी हुई बैलगाड़ियों के पहिए, जुए, ऊंठने, उलारू आदि इधर उधर बिखरे पड़े थे। एक बेपहिए की पूरी की पूरी लँडूरी

बैल-गाड़ी भी एक ओर पड़ी थी । इर्द गिर्द कूड़े के ढेर थे । एक सूखा, टेढ़े मेढ़े तने वाला पीपल का पेड़, जिस के सिरे पर ही केवल चन्द हरी टहनियां लहरा रही थीं, इस सारे दृश्य को एक दार्शनिक की उदासीनता से निरख रहा था ।

तीव्र गति से चलते और ज्वर के वेग से कांपते हुए चेतन को यह सब अत्यन्त नीरस और उदास प्रतीत हुआ । उस का जी मतलाने लगा और जब वह तीन चार संकरी, दुर्गन्धयुक्त, गंदी मैली, गलियों से गुज़र कर मामा चिरंजीव लाल के पक्के तीन-मंज़िले मकान के बालाखाने पर पहुंचा तो उसे ज़ोर की कै हुई ।

रणवीर ने नीचे आकर बताया कि जीजा जी को ज्वर हो आया है और वह पानी लेकर फिर ऊपर को भागा ।

अतीव पीड़ा से फटे जाते से सिर को थामे, नाली पर बैठे बैठे, ज्वर के वेग से जलती तपती आंखों से चेतन ने देखा कि एक लड़की भागती भागती आई और देखते देखते उसने अन्दर चौबारे में बिस्तर बिछा दिया और रणवीर ने कहा कि वह जीजा जी को वहां लिटाये ।

कुल्ला करके, वैसे ही सिर थामे, रणवीर के सहारे जब वह बिस्तर पर जा लेटा और जब उस पर लिहाफ़ डाल दिया गया तो उस ने अपने मस्तक पर ठंडा, प्यार भरा हाथ फिरता महसूस किया और उस के कानों में आवाज़ आई —मधुर और स्नेह भरी—

"जीजा जी!"

तो उस ने लगभग गीले, थरथराते स्वर में कहा:

"नीला, सिर फटा जा रहा है।"

इस बीमारी में चन्दा अपने पति के पास ज़्यादा नहीं आई। जब सिर-दर्द से व्याकुल होकर चेतन ने उस का नाम लेकर पुकारा तो वह एक बार आई और सहमे हुए स्वर में उस से कहा:—

"आप मेरी माँ को यहाँ मुँह दिखाने योग्य न रहने देंगे। यह जालन्धर या बस्ती नहीं, यह गाँव है। बड़े पुराने विचारों के लोग रहते हैं यहाँ। आपको जिस चीज़ की ज़रूरत होगी, उस का मैं पूरा-पूरा ख्याल रखूंगी। मैं नीला से कहे देती हूँ। आप की आवश्यकताओं की ओर वह पूरा-पूरा ध्यान देगी। मेरे माता-पिता की इज़्ज़त का ख्याल रखें—मुझे नाम लेकर न पुकारें!"

और अत्यन्त अनुनय के स्वर में यह सब कह कर वह भाग गई थी। नीला से कुछ कहने की उसे आवश्यकता ही न पड़ी थी, क्योंकि अपने जीजा जी की आवाज़ सुन कर वह चन्दा के पीछे ही भाग आई थी।

चेतन के कमरे में उस समय बच्चे शोर मचा रहे थे और उस का सिर फटा जा रहा था। "भगवान के लिए इनको यहाँ से भगाओ!" चेतन ने सिर थामते हुए किसी न किसी तरह कहा।

नीला ने बच्चों को झिड़क-डाँट कर भागा दिया, किवाड़ भेड़ कुंडी चढ़ा दी और चेतन के सिरहाने आ बैठी। चेतन उस समय पीड़ा से कराह रहा था। नीला धीरे धीरे उस का सिर दबाने लगी।

इसके बाद चेतन पर कुछ अर्ध-चेतनावस्था सी छा गई। नीला का स्वर जैसे कहीं बहुत दूर से आते हुए, मीठे मद-भरे संगीत की शान्ति-प्रद तान सा उस के कानों में आता रहा। नीला क्या क्या बातें

करती रही, उसे यह सब याद नहीं। लेकिन उस अर्ध-चेतनावस्था में भी उन की कुछ बातें चेतन के मानस पट पर अमिटरूप से अंकित हो गईं।

......उस के लम्बे-लम्बे घुँघराले बालों में अपनी कोमल अंगुलियाँ फेरते हुए नीला ने कहा था, "जीजा जी तुम्हारे बाल कितने सुन्दर हैं! लम्बे, काले घुँघराले—"

.....और फिर पूछा था, "क्यों जीजा जी! ये घुँघर आप ने कैसे बनाये हैं। आप ने बनाये हैं, या स्वयं ही बन गये हैं? मेरे तो बाल ऐसे नहीं बन पाते। लम्बे तो हैं, पर घुंघराले नहीं।"

और उस ने अपनी वेणी लेकर जीजा जी को अपने बाल दिखाये थे कि वे कैसे कोमल और लम्बे हैं, पर घुँघराले नहीं।

......"जीजा जी मैं तो ब्याह न करूँगी। कोई मेरी शादी बरबस थोड़े ही कर देगा।"

......"क्यों जीजा जी, जब लोग ब्याह के बाद ब्याह को कोसते हैं तो वे क्यों करते हैं शादी? न करें! सुख से रहें। मैं तो कभी न करूँगी। मैं तो साफ़-साफ़ कह दूँगी पिता जी से।"

और उसने अपनी बड़ी बहन की कहानी सुनाई थी।

और नीली कुछ क्षण चुप शून्य में तकती रही थी। फिर उसने कहा था :

"......तब उस समय जीजा जी दूसरा व्याह करने को तैयार न हुए। बाद में बहन के एक छोड़ तीन बच्चे हुए, पर उसका वैवाहिक जीवन सफल न हुआ। अब जीजा जी को शिकायत है कि जीजी कुरूप है, फूहड़ है, शिक्षित नहीं, संस्कृत नहीं!"

"ज़बरदस्ती कौन करेगा जीजा जी? मैं विवाह करूँगी ही नहीं।"

"......बच्ची नहीं हूँ, चौदह वर्षों की होने आई हूँ।"

और मस्तक दबाते दबाते नीला ने उसके गालों पर हाथ फेरा।

"......जीजा जी दाढ़ी आपके बड़ी बढ़ आई है। आप हजामत क्यों नहीं बनवा लेते?" और वह हँसी थी, "मैं बना दूँ उसतरा ले कर?"

"......जीजा जी आपके ओठों पर पपड़ियां जम गई हैं, इन पर ज़रा सा मक्खन लगा दूँ।"

चेतन से कुछ बोला न गया था। उसका गला सूज गया था। उसे बड़ी तकलीफ़ थी, पर उस समस्त कष्ट और पीड़ा के होते भी उसे बड़ी पुलक और शान्ति मिली थी।

रात को नीला ने दूध में बनफशा उबालकर उसके गले पर बाँध दिया।

दूसरे दिन गाँव के अस्पताल का कम्पाउन्डर आया जो अपने आपको डा० विधान चन्द्र राय से कम न समझता था। कुनीन मिक्सचर और फ़ीवर मिक्सचर की खुराकें वह उसे पिलाता रहा, किन्तु चेतन को आराम न हुआ। हार कर उसने एक देहाती हकीम से, जो अत्तार

भी था, 'अत्तरीफ़ल ज़मानी* मँगाया। दूध के साथ उसे पिया और जब पेट साफ़ हुआ तो वह कुछ ठीक ढंग से सोचने योग्य बना। उसने हजामत बनाई, मुँह हाथ धोया और चारपाई पर आराम से लेट गया।

एक-एक करके सारी बातें उसके मस्तिष्क में घूमने लगीं।...

गले में शोथ होने के कारण वह अधिक न बोल पाया था और बातें अधिकतर नीला ही करती रही थी। लेकिन जितनी देर वह पास बैठी बातें करती रही थी, चेतन को एक अपार तुष्टि, एक अपार आनन्द का आभास मिलता रहा था।.....उसके लम्बे, काले, सुकोमल, सुगंधित बाल; पतली पर मांसल अंगुलियाँ......हृदय को भेद कर, सोई हुई भावनाओं को जगाने वाली उसकी दृष्टि......लेकिन चन्दा......

और अचानक अपनी पत्नी का ध्यान आ जाने से उसने उसे आवाज़ दी।

भागकर नीला ऊपर आ गई।

बिना उसकी ओर देखे, बिना उससे दृष्टि मिलाये चेतन ने कहा, "तुम ज़रा अपनी बहन को भेज दो।"

"क्या काम है जीजा जी?" जैसे उसकी नाचती हुई वाणी ने पूछा

"तुम ज़रा उसे भेज दो।"

और कुछ चकित सी नीला चुपचाप चली गई। दूसरे क्षण चन्दा उसके पास खड़ी थी।

"कहिए!"

चेतन चुप रहा। वह सोच रहा था कि अभी जो बात उसके मन में अचानक उठी थी, उसे कहे या न कहे।

---

*एक यूनानी दवाई।

चन्दा उसके पास बैठ गई और उसके लम्बे-लम्बे बालों पर हाथ फेरते हुए उसने कहा

"आप ने मुझे बुलाया था, क्या हाल है अब तबीयत का ?" और एक स्निग्ध मुस्कान उसके ओठों पर फैल गई ।

"तुम्हारी बला से !" चेतन ने रुखाई से कहा, 'तुम्हारी ओर से कोई मरे या जिये, तुम अपनी सखी सहेलियों और गाने-बजाने में मस्त रहो ।"

"क्यों क्या बात है ?" चन्दा का गला भर आया । उसकी मुस्कान विषाद में विलीन हो गई और उसकी चकित आँखें पति के क्षीण और तनिक पीले चेहरे पर जम गईं !

"मैं आज चार पाँच दिन से बीमार हूँ । इतना ज्वर चढ़ आया, तुमने पूछा भी आकर ?"

"क्यों मैं तो बराबर आप की खबर रखती हूँ । आप को किस बात का कष्ट हुआ है, नीला जो थी ......।"

"नीला जो थी...नीला जो थी...नीला..."झल्लाकर चेतन ने लगभग चीखते हुए कहा, "तुम मेरे पास बैठो !"

अत्यन्त विनीत और आर्द्र स्वर में चन्दा ने कहा, "आप नहीं जानते, मैं आपके पास आ बैठी तो बीस तरह की बातें होंगी । कुटुम्ब की स्त्रियाँ जो मुँह में आया बकेंगी । नीला..."

"मैं कहता हूँ चन्दा तुम पागल हो", चेतन ने खीज कर कहा "नीला अब बच्ची नहीं, चौदह वर्ष की हो गई है वह, और मैं— देखती नहीं हो—पुरुष हूँ, दुर्बल पुरुष......"

चन्दा ज़ोर से हँस पड़ी, "आप ने तो मुझे डरा ही दिया था । मुझे इस बात का डर नहीं । वह मेरी छोटी बहन है । ताऊ की लड़की हुई तो क्या, मैंने उसे बहन ही की भाँति समझा है । उसकी इज़्ज़त

आप के हाथ में है। वह चंचल है, बालिका है, छोटी मोटी ग़लती कर सकती है, पर आप तो नहीं कर सकते।"

और एक असीम, अपार, उदार विश्वास से अपने पति को देखते हुए उस ने उस के मस्तक पर हाथ फेरा।

"यदि तुम मेरे पास नहीं बैठना चाहती, तो फिर मुझे यहाँ से ले चलो।"

उस दृष्टि से जो स्निग्ध-स्नेह से, भर कर एक बच्चे के चंचल भोलेपन को देखती है, चन्दा ने अपने पति की ओर देखा और उस के कन्धे को प्यार से थपथपा कर उस ने कहा, "मैं कहीं जा तो नहीं रही, सदैव आप के पास ही तो मुझे रहना है। आप ही के कहने पर मैं यहाँ आई थी। अब जिस काम से आई हूँ, उस की समाप्ति के पहले कैसे चली चलूं ? इस तरह जाना तो बचपन होगा। बस दो चार दिन और किसी प्रकार काट दें। मैं तो दिन रात आप के पास बैठी रहूँ, किन्तु रिश्तेदारों का डर है। यों कहने को मैं चाहे नीचे आंगन में बैठी रहती हूँ, पर मेरी समस्त वृत्तियाँ आप ही की ओर लगी रहती हैं।"

चेतन ने अपनी दृष्टि अपनी पत्नी की आँखों में जमा दी। इस सरल हृदया पत्नी से कभी वह विश्वासघात कर सकता है ? एक असीम दया और निर्मल प्रेम से उसके मन-प्राण प्लावित हो उठे। कितना बड़ा दिल पाया है इस नारी ने ! फिर कितना भोला ! नहीं जानती कि मानसिक सम्बन्ध के अतिरिक्त शारीरिक सम्बन्ध भी कोई चीज़ है। मन से मनुष्य अपने सङ्गी का बना रहना चाहता है, शरीर नहीं रहने देता। मन शरीर को अपने अधिकार में, अनुशासन में रखना चाहता है, किन्तु वह प्रायः बिदके हुए घोड़े की तरह भाग खड़ा होता है।

उसने मन ही मन निश्चय किया कि इस घोड़े को ज़रा बिदकने न देगा। वह उस पर पूर्ण अधिकार रखेगा।

नीला उसके बाद कई बार आई, पर वह तना रहा। उसे किसी चीज़ की आवश्यकता हुई तो उसने नीला को नहीं उसकी छोटी बहन शीला को बुलाया और साँझ को जब पंडित वेणी प्रसाद अपने हिलते हुए शरीर को लिये हुए उस का हाल चाल पूछने उस के पास आकर बैठे तो लैम्प के उस धीमे प्रकाश में, उस ने धीरे-धीरे, एक दो बातों को छोड़ कर, संकेत रूप से सब कुछ उन्हें बता दिया और सलाह दी कि नीला अब युवती हो गई है, अब उसका विवाह कर देना चाहिए। माँ सिर पर नहीं और आप भी उतना ध्यान नहीं दे सकते......और ज़माना अच्छा नहीं........बस्ती में अपढ़ लड़कियों की संगति...... और व्यस्त रहने के लिए उस के पास कुछ है नहीं......आदि... आदि......

इसके बाद नीला उस के पास न आई थी। यदि चेतन को कुछ आवश्यकता भी हुई तो उसकी छोटी बहन शीला ही आई। चेतन का दम घुटने लगा। वह चाहने लगा कि उसी क्षण उठ कर भाग जाय, सीधा लाहौर चला जाय, फिर कभी जालन्धर अथवा इलावलपुर न आये।

लेकिन इसके बाद भी उसे चार दिन वहाँ रहना पड़ा। वे चार दिन जैसे चार वर्षों से बीते। चारपाई पर वह अकेला लेटा छत की कड़ियाँ गिनता रहा। उसे पहली बार अनुभव हुआ जैसे कमरे में से रूह उड़ गई है और वह एक मृत-व्यक्ति-सा मुँह बाये उस के पास पड़ा है। एक ही दिन में उस के स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ गया। वह योंही चन्दा को आवाज़ें देता और जब हर आवाज पर नन्हीं शीला फुदकती हुई आती तो मन ही मन झल्ला कर रहा जाता।

अन्त में तीसरे दिन शीला को अपने पास बैठा कर, उस के सिर

पर प्यार से हाथ फेरते हुए, उस ने पूछा था, "क्यों शीला, नीला को इधर नहीं देखा, क्या करती रहती है वह !"

"रोती रहती है।"

"रोती रहती है, पर क्यों ?"

किन्तु इस 'क्यों' का उत्तर वह निरीह बालिका क्या देती ? चेतन को लगता जैसे कोई उस का हृदय कचोट रहा है।

चौथे दिन भी नीला न आई। चेतन के लिए अब पल भर भी उस कमरे में बिताना कठिन हो गया। कान्ता अपनी ससुराल से एक दिन के लिए आकर जा चुकी थी। विवाह पर आये हुए सगे सम्बन्धी जाने लगे थे। उस ने चन्दा को बुलाया और आग्रह किया कि मुझे इसी क्षण यहाँ से ले चलो। कान्ता की माँ और उस की सास ने बहुतेरा कहा कि अभी तुम्हारा जी ठीक नहीं, अभी दो चार दिन और यहाँ रहो, पर वह न माना। आत्म-ग्लानि से उसके मन-प्राण जल रहे थे! विवश हो चन्दा उसे लेकर चल पड़ी।

मामा चिरंजित लाल के उस तीन-मंज़िले मकान से उतरते हुए उस के मन में प्रबल आकांक्षा हुई कि यदि नीला कहीं मिल जाय तो वह उस से फिर एक बार माफ़ी माँग ले। पर उसे उतरते देख वह भाग कर कमरे में जा छिपी। चेतन को ऐसा लगा था जैसे किसी ने ज़ोर से उस के मुँह पर थप्पड़ दे मारा हो।

—०—

२९

कल्लोवानी के अपने उसी कमरे में चुपचाप बिस्तर पर लेटा हुआ चेतन अन्यमनस्क सा खिड़की के बाहर देख रहा था ।

जिस दिन वह इलाबलपुर से जालन्धर लौटा था, उसी दिन घर पहुँचते ही उसे मालूम हुआ था कि उस के दादा का देहान्त हो गया है और ग्यारह दिन तक उस के लिए वहीं रहना अनिवार्य्य है । यद्यपि इलाबलपुर में उस का ज्वर उतर गया था, किन्‍ रास्ते की थकन, गर्मी और दादा के देहान्त के बाद घर में खाने की असुविधा हो जाने के कारण वह फिर बीमार पड़ गया था ।

चेतन के दादा को मरे आज पूरे ग्यारह दिन हो गये थे और ग्यारह दिन तक उन के घर में एक प्रकार की चहल पहल रही थी। रोना और पीटना भी हुआ था । पर चेतन के दादा ७० वर्ष के हो कर. अपनी आयु पूरी भोग कर, एकादशी के शुभ दिवस परलोकगामी हुए थे.। ऐसी अच्छी मौत तो सब को आये । क्योंकि पुराने ख्याल के हिंदुओं में ऐसे दिन परलोक वासी होने वाला सीधा स्वर्ग जाता है. इस लिए, पीटने रोने के साथ हास-परिहास भी होता रहा था। 'सियापे' में भी दादा को (यद्यपि जीवन में वे पटवारी से गिरदावर तक न बन पाये थे) 'पंजाब का राजा' बना दिया गया था। जब सियापे की परेड के लिए घेरा बाँध कर खड़ी हुई स्त्रियों के मध्य बैठी हुई रानी (नाइन) ने अपने बारीक सानुनासिक स्वर में बैन गाया था ।

"हाय हाय वे पंजाब देया राजिया !"

और मुहल्ले की स्त्रियों ने छातियां पीटते हुए उसका अनुकारण किया था तो बड़ी बूढ़ियों ने सियापे के सुरताल में किसी प्रकार की रुकावट डाले बिना, उसी समान-गति से छातियों पर हाथ जमाते हुए, कहा था : "राजा, सच राजा !"

बूढ़े लोगों के मरने पर दुख के बदले सुख अधिक मनाया जाता है। चेतन के दादा की अरथी भी बाजे गाजे के साथ निकली थी; गुलाल से सिर मुँह रंगे गये थे; छोहारों, तालमखानों और भुने हुए चावलों की वर्षा अरथी पर की गई थी। पर उन की मृत्यु पर घर में दुख भी कम न था। एक तो वे इतने बूढ़े न दिखाई देते थे, फिर वे इतने बीमार न पड़े थे और फिर उन की उपस्थिति पंडित शादी राम के हाथों दुखी उस घर की आत्मा पर एक शान्त, सुखद लेप का काम देती थी। इन ग्यारह दिनों में स्वयं चेतन की आंखों के सामने कई बार दुनिया के तीन पांच से बेखबर, भोले, उदार, धर्मपरायण दादा का चित्र घूम गया था। रह रह कर चेतन को उन दिनों की याद आ जाती जब उन के दादा ने अपनी कमज़ोर आँखों से महीनों चूल्हा झोंका था।

'कलायत' के स्टेशन पर रामानन्द को और 'सैला .खुर्द' के स्टेशन पर चेतन को प० शादी राम ने जिस निर्दयता से पीटा था, उसकी पुनरावृति को रोकने के लिए (ज्यों ही पंडित जी की बदली रिलीविंग में हुई) मां अपने सब लड़कों को जालन्धर ले आई थी। (बहाना सीधा था कि रिलीविंग में जब पंडित जी स्टेशन स्टेशन घूमेंगे, बच्चों की पढ़ाई खराब होगी।) चेतन के बड़े भाई को भी मां ने अपने मायके से, जहाँ पिता की मार के डर से उसने उसे भेज रखा था, वहां बुला लिया था और वे सब स्थानीय स्कूल में शिक्षा पाने लगे थे। इस के बाद यद्यपि दो तीन साल रिलीविंग में रह कर चेतन के पिता मकेरियां पर पक्के नियुक्त होगये थे और मकेरियां में एक छोड़ दो

हाई स्कूल थे, लेकिन मां बच्चों को वहां न ले गई थी। जब चेतन और उस के भाइयों को जालन्धर ही में छोड़, महीने के वेतन को शराब अथवा जुए की भेंट होने से बचाने के लिए, मां अपने पति के पास मकेरियां चली जाती तो चेतन के दादा ही सब को खाना पका कर खिलाते। अपने बूढ़े दादा के स्नेह-सौहार्द, सरलता, सहृदयता का ध्यान आ जाने से चेतन की आँखों में आँसू छलक आते। यद्यपि स्वभाव उन का भी कर्कश था, किन्तु हृदय इतना कोमल था कि उन की सब कर्कशता भूल जाती थी। वे दुर्गा के उपासक थे। बच्चों को खाना खिला, स्कूल भेज, वे स्वयं कुएं पर जा कर स्नान करते और फिर दो अढ़ाई घंटे तक चंडी का पाठ करते। पाठ पूजा से निवृत्त हो कर वे अपने लिए खाना तैयार करते और कई बार दो बजे और कई बार अढ़ाई तीन बजे जा कर स्वयं खाना खाते। वे पीटते थे, लेकिन प्यार भी करते। पीटने पर पाश्चाताप भी करते। वे चंडी के उपासक हैं इस लिए उन के स्वभाव में कठोरता और कर्कशता आ गई है—ऐसा उन का विचार था। किन्तु यह कठोरता उन के हृदय को कठोर न बना सकी थी। वे बच्चों पर नाराज़ होते, पर जब वे रोने लगते तो उन्हें मिठाई के लिए पैसे भी दे देते। जब चेतन के पिता सब कुछ गँवा देते, वेतन तक न भेजते, तो वे उन्हें गालियाँ देते, किन्तु यदि कहीं ऐसे समय पंडित शादीराम स्वयं वहाँ आ पहुँचते और अपने पिता के पाँव पर सिर रख देते तो चेतन के दादा उन के सब दोष क्षमा कर देते और पेन्शन से जोड़-जोड़ कर रखे हुए रुपये उन्हें लाकर दे देते। चेतन के पिता प्रायः उन से इस प्रकार रुपये हथिया ले जाते, किन्तु जानते हुए भी उस के दादा हर वार ठगाई खा जाते।

वहीं चारपाई पर लेटे-लेटे दादा का समस्त जीवन चेतन के सामने

घूस गया । अपने इस पुत्र के लिए उन्होंने कितने कष्ट न उठाये थे ! चेतन के पिता तीन वर्ष के थे जब उन की माँ मर गई थी । तब उस के दादा ने जिस कठिनाई से उन्हें पाला, महामारी के उन दीनों में जिस प्रकार वे शिशु को पीठ से लगाये हुए घूमते थे, इसका ज़िक्र कई वार आँखों में आँसू भर कर दादा ने किया था । और इस सब तपस्या का फल उन्हें क्या मिला ! सदा की जलन, दुःख और पीड़ा ! पेन्शन लेकर वे इसलिए घर आये थे कि उन की आँखों की ज्योति मँद पड़ गई थी और उन का विचार था कि उन का बेटा, जो अब स्टेशन मास्टर हो गया था, उन्हें जीवन के शेष दिन आराम से बिताने में सहायता देगा । उन के इस बेटे ने उन्हें यह विश्वास भी दिलाया था । पर क्या उन्हें कभी एक घड़ी को भी सुख मिला ! एक घड़ी को भी शान्ति नसीब हुई ! वे अपने इस पुत्र के करतूतों पर सदैव जलते भुनते रहे । बुढ़ापे में प्रायः अपनी अंधी आँखों से अपने पोतों के लिए खाना पकाते रहे और बड़ी मितव्यता से जोड़ा हुआ (आठ रुपये प्रति मास) पेन्शन का धन सदैव अपने इस स्टेशन मास्टर पुत्र और उस के बेटों पर खर्च करते रहे ।

चेतन को लगा जैसे उस के दादा सदैव एकाकी रहे अपने इस पुत्र के हाथों (अपने पौत्र ही की भांति) उन्हों ने भी कम यातनाएँ नहीं सहीं । अपने इकलौते पुत्र को वे सदैव धर्मपरायण, सत्यवादी, साधु-सन्तों गौ-ब्राह्मणों की सेवा करने वाला, धन का यथेष्ठ भाग दान पुण्य तथा सत्कार्यों में लगाने वाला देखना चाहते थे । उसे शराबी, जुआरी, वेश्यागामी, धन को पाप के कामों में गँवाते देखकर, उन्हें कितना दुःख, कितना क्लेश, कितनी आन्तरिक व्यथा होती होगी ? किन्तु इतने पर भी जब यही दुराचारी पुत्र उन के सामने आकर अपनी विपत्तियों का रोना रोता तो उस वृद्ध का सरल-हृदय द्रवित हो

उठता और वे अपना तन मन तक उस के अथवा उन के बच्चों के हेतु अर्पण करने को तत्पर हो जाते।

माँ ने चेतन को बताया था कि मरने से चार दिन पहले तक वे स्वयं कुएँ पर जाकर स्नान और पाठ पूजा करते रहे थे। अचानक उन के मूत्राशय में कुछ तकलीफ़ हो गई। वे स्वयं जाकर हकीम नबीजान को दिखा आये और एक दिन उन्होंने उस का जोशाँदा भी पिया। फिर जब कष्ट बढ़ा तो डाक्टर बस्तीराम को बुलाया गया। फिर ऐसा दिखाई दिया कि आराम आ जायगा। पर रात को उन की तबीयत कुछ ज्यादा खराब हो गई। वे अचेत हो गये। पंडित शादी राम को तार दिया गया। वे उन दिनों बहराम स्टेशन पर नियुक्त थे। तार जब पहुँचा तो उस समय शायद वे पी पिला कर बेहोश पड़े थे। सुबह उन को फिर तार दिया गया और उधर भैरो बज़ार से कैप्टन डाक्टर लहना सिंह को बुलाया गया। पर दोनों उस समय पहुंचे जब दादा की सरल निरीह आत्मा पिंजर छोड़ चुकी थी।

पंडित शादी राम ने उसी समय शपथ खाई कि मैं अब कभी शराब न पियूंगा और आज क्रिया कर्म के दिन तक उन्होंने उसे मुँह न लगाया था।

"यह कम्बख्त कहता है कि इसे विश्वास नहीं आता।" उस के पिता की गर्ज फिर सुनाई दी। "मुझे अभी बनारसी दास ने बताया है। सब मेरी हँसी उड़ा रहे हैं। और मैंने ग्यारह दिन तक शराब को हाथ तक नहीं लगाया।"

"यदि इतने दिन नहीं लगाया तो अब जो लगा लिया, अभी आज ही तो क्रिया समाप्त हुई है"! माँ ने कहा।

निरखने लगा । सहसा उस का अपना मन विशाल शून्य से भर गया । एक अज्ञात अकथ, अनाम अवसाद उस के मन-प्राण पर छाकर उस की आत्मा को अनायास मसलने लगा । चेतन ने अनुभव किया जैसे उस अवसाद के सामने वह नितान्त बेबस है । अपने निर्जीव से शरीर को उसने और भी ढीला छोड़ दिया और निस्पन्द लेटा रहा ।

दो दिन निरन्तर वर्षा होते रहने के बाद आकाश कुछ खुला था । ऊँची, गीली दीवारों, उन से बेतरह चिमटे हुए भीगे भीगे उपलों, कीचड़ से भर कर बह निकलने वाली नालियों. चंगड़ों के आँगनों में पशुओं के खुरों से बन जाने वाले गोबर और कच्ची मिट्टी के तगारों और न जाने किन किन रसायनिक द्रव्यों की मिली-जुली दुर्गन्ध सारे वातावरण पर छा रही थी; नाक में घुस कर जैसे नस नस में चुभी जा रही थी; अनुभूति को, चेतना को, मानो शिथिल कर रही थी और चेतन एक प्रकार की अचेतावस्था में दीवार के उस पार चंगड़ानियों का शोर सुन रहा था ।

सांझ के सूरज की कुन्दन-धूप गली के सिरे पर बने सरदई खिड़कियों वाले तिमंज़िले मकान के शिखर को दीपित कर रही थी और ऊपर आकाश में बिखरे हल्के सफेद बादलों के टुकड़ों में आग लग आई थी । उस ऊँचे मकान और उस के सुनहरे शिखर को देखते देखते, चेतन को उस मकान के पैरों में किलबिलाने वाली सृष्टि का ध्यान हो आया—उस साधनहीन सृष्टि का, जिसका एक अंग वह भी था । उस ने लम्बी सांस ली । जीवन......! इस के पैरों में कितनी गंदगी, कूड़ा कर्कट, बीमारी, ग़रीबी, दुर्गन्ध, कुरूपता बिखरी रहती है, परन्तु अपने सिर पर यह सदैव उस मकान के शिखर की भाँति स्वर्ण-मुकुट पहने रहता है । और चेतन की आंखों के सामने अपना अतीत वर्तमान और भविष्य घूम गया और उस ने सोचा—क्या वह सदैव जीवन के पैरों ही में पड़ा रहेगा ?

उस के ताज का मोती बनना क्या उसे कभी नसीब न होगा ?

इन उदास विचारों से वह घबरा सा उठा। उस ने चाहा कि उठे और सैर करता गोल बाग तक हो आये। पर वातावरण की उदासी और सील भरी बू कुछ इस प्रकार उस की चेतना पर छा गई थी कि वह अपने इन असम्बद्ध, असंगत, अस्त-व्यस्त विचारों की उलझन में फँसा वहीं लेटा, आकाश की ओर तकता रहा और मकान के शिखर पर दमकती हुई कान्ति किसी मरणासन्न रोगी के नयनों की दीप्ति-सी धीरे-धीरे अंधकार में विलीन हो गई।



३१

एक सप्ताह के बाद भाभी आ गई। और उस के आगमन के एक सप्ताह बाद ही चेतन को दूसरे मकान की खोज में रत हो जाना पड़ा।

भाभी एक बार पहले भी आई थी। पर तब चेतन विवाहित न था और वह सब कष्ट सहता हुआ दुकान पर रहने लगा था, पर अब उसे ऐसा करना कठिन दिखाई देता था।

अपनी पत्नी को जालन्धर भेज कर, चेतन ने अपने अवकाश के समय में कुछ साहित्य-सृजन का निश्चय कर लिया था। चन्दा को वह

एक दम भूल गया हो, अथवा वह अवसाद जो उस बेबसी के क्षण में, चन्दा को जालन्धर भेजने के बाद, उस के मन प्राण पर छा गया था, सर्वथा मिट गया हो, ऐसी बात न थी। पर स्थिति कैसी भी क्यों न हो, उसे अपने अनुसार बना कर उस का अधिकाधिक लाभ उठाना, उस ने बहुत पहले सीख लिया था। अपने अवकाश और अवसाद को उस ने रचनात्मक कार्य में लगाने का निश्चय कर लिया। उस का विचार था कि कम से कम पाँच छै महीने अपनी पत्नी को नहीं बुलायेगा और इस लिए मन ही मन उस ने एक बड़ा उपन्यास लिखने का प्रोग्राम बना लिया। किसी महान लेखक के सम्बन्ध में उस ने पढ़ा था कि जब वह सैर को जाता तो अपनी कहानियों की अध-कच्ची, अस्पष्ट रेखाओं में रंग भरता और उन को उभारता-सँवारता था। चेतन ने भी यह नियम बना लिया कि सन्ध्या को आकर खाना खाने के बाद अकेला सैर को चला जाता और अपने उपन्यास का ढाँचा तैयार करता।

उपन्यास और उस की कला के सम्बन्ध में उस का ज्ञान नहीं के बराबर था। पुस्तकें खरीदने के लिए पैसे का और पुस्तकालयों में जाकर उन की अलमारियों में भरी हुई सम्पत्ति से लाभ उठाने के लिए समय का उस के पास नितान्त अभाव था। अपने कालेज के पाठ्य-क्रम में उस ने जो दो एक उपन्यास पढ़े थे, उन की भी कुछ धुँधली सी ही स्मृति उसे थी। रही भाई साहब के लाये हुए उपन्यासों को पढ़ने की बात, सो अव्वल तो वे एक उपन्यास पढ़ने के बाद शीघ्र ही दूसरा लाने के विचार से उसे तत्काल लौटा दिया करते थे, फिर चेतन को पढ़ाई का शौक था और परीक्षाओं के दिनों में वह उपन्यासों को हाथ न लगाता था। इस के अतिरिक्त भाई साहब की रुचि कुछ वैसी स्पष्ट अथवा संस्कृत न थी। वे किसी तमीज़ के बिना उपन्यास पढ़ते। कई बार ऐसा हुआ कि वे कोई अच्छा उपन्यास पढ़ रहे होते, पर उस के पास समय

न होता। फिर जब उस के पास समय होता तो वे ऐसा उपन्यास पढ़ रहे होते जिसे पढ़ना उसके विचार में समय नष्ट करने के बराबर होता।

किन्तु उपन्यास कला के सम्बन्ध में अपनी इस अज्ञता के होते भी उस ने एक बड़ा उपन्यास लिखने प्रोग्राम बना लिया और मन ही मन उसका ढाँचा बना कर उस के कुछ पहले परिच्छेदों की रूप-रेखा भी तैयार कर ली :—

१. नायक अभिजात कुल का दीपक है। भोला भाला और माता पिता के लाड़-प्यार में पला। अभी अभी उसने कालेज से डिग्री ली है। उसकी माँ चाहती है कि वह एक बड़े सम्पन्न घराने में विवाह करे, पर वह इनकार कर देता है। वह कुछ और आगे पढ़ना चाहता है और इतनी जल्दी विवाह के बंधन में बँधना उसे पसन्द नहीं।

२. उस के पिता को रुई के सट्टे में हानि उठानी पड़ती है। यद्यपि उसका पिता उसे कुछ नहीं कहता, पर वह प्रातः सायं उस के मुरझाये हुए चेहरे को देखता है। अपनी माँ से उसे पता चलता है कि स्थिति न सुधरी तो उन्हें दीवालिया होना पड़ेगा और उसका पिता इतना चुप है कि आशंका से उसका दिल दहल जाता है। उसे डर है कि कहीं उस का पिता अपने प्राणों पर न खेल जाय और एक दिन जब फिर उसकी माँ उस से उसी सम्पन्न घराने में विवाह करने का अनुरोध करती है तो वह मान जाता है। इस विचार से कि इस से पहले कि उस का पिता दीवालिया हो और शादी की मंडी में उसका मूल्य घट जाय, वह शादी कर ले और दहेज के आभूषणों से अपने पिता की सहायता करे।

३. वह अपने मन में भविष्य के आचरण की एक रूप-रेखा बना लेता है। उस का विवाह हो जाता है। उदास उदास सा वह उसमें भाग लेता है। उसे लगता है जैसे वह शादी उस की नहीं किसी दूसरे की है और वह दुल्हा नहीं केवल बाराती है।

४. वह अपनी दुल्हिन को देखता है। उस की सुन्दरता खड़्ग की नोक सरीखी उस के अन्तर में खुब जाती है। वह उस से प्यार भी करता है और उससे दूर भी हटता है। वह अपनी सोची हुई स्कीम को कार्य-रूप में परिणत भी करना चाहता है, पर जब वह अपनी बधु को देखता है तो उसे साहस नहीं होता। इसी द्वन्द्व में दिन बीत जाते हैं और उस के संकल्प के पांव डगमगाते से दीखते हैं। तभी एक दिन अपने पिता से उसका साक्षात्कार होता है और वह उसका दिन-प्रति-दिन पीला होता मुख देख है और उसका मन एक दम कठोर हो जाता है। द्वन्द्व मिट जाता है। वह निश्चय करता है कि जो कुछ उसे करना है जल्दी करेगा।

५. वह एक झूठा पत्र अपनी पत्नी को दिखाता है। उस पत्र में उसकी पत्नी के विश्वासघात का उल्लेख है कि वह अपने ट्यूटर से प्रेम करती थी कि उससे विवाह करने का वचन उसने अपनी अँगुली के रक्त से लिख कर दिया था और उसने धन के लालच में उस वचन को तोड़ दिया आदि...आदि...।

६. उस की पत्नी यह अभियोग सुन कर भौंचक्की रह जाती है। वह इनकार करती है, पर वह नहीं सुनता और कृत्रिम क्रोध का अभिनय करते हुए, उस के गहने उतरवा लेता है और उसे साथ लेकर अपनी ससुराल जाता है और अपनी पत्नी को उस के घर के दरवाजे पर छोड़ आता है। वह अपने पिता के नाम एक चिट्ठी लिख देता है और हरिद्वार को चल देता है।

इस के बाद चेतन ने सोचा था कि नायक (शरत बाबू के देवदास की भाँति) मारा मारा फिरेगा! हरिद्वार में एक लड़की उस से प्रेम करने लगेगी। पर वह उस के प्यार का प्रतिदान न देगा। अपनी भोली-भाली पत्नी और उसके प्रति किये गये पाप की याद एक दुर्धर-चट्टान

बन कर उस प्रेम के मार्ग में आ खड़ी होगी। पर वह उस बाला से जितना खिंचेगा उतना ही वह उस पर मिटेगी। अन्ततोगत्वा वह उसे छोड़ कर चल देगा। इस बीच में उस के पिता की स्थिति अचानक अच्छी हो जायगी। वह अपने समधी के घर जाकर अपनी बहू को सान्त्वना देगा और नायक को खासी दयनीय दशा में खोज निकालेगा। नायक का पिता, उस की माँ, उसका ससुर, जहाँ तक कि उसकी पत्नी तक उसे क्षमा कर देगी, पर वह अपने आपको माफ़ न करेगा। फिर कभी उस के ओंठो पर हँसी न आयेगी। उस की प्रेमिका उस के विरह में चारपाई पकड़ लेगी। वह उस से मिलेगा, पर कब?—जब उस की अन्तिम हिचकी अपने प्रेमी की प्रतीक्षा में उस के कंठ में अटकी होगी।

यह रूप रेखा बना कर वह मोहनलाल रोड से एक मोटी कापी ले आया था। वह मैली न हो जाय, इस विचार से उस ने उस पर काग़ज़ भी चढ़ा दिया था और उस के पहले पृष्ठ पर उपन्यास और उस के लेखक का नाम सुन्दर मोटे अक्षरों में लिख, नीचे ऊपर सुन्दर बेल बना दी थी।

अवकाश रहने पर वह घर पर भी काम करता था और इस कापी को दफ़्तर भी ले जाता था। जब रात को एक बजे के बाद काम अपेक्षाकृत कम होता तो वह कुछ लिखने का प्रयास करता।

भाभी के आने पर उसका यह उपन्यास धरा का धरा रह गया और घर में रहना अथवा वहां बैठ कर काम करना उस के लिए कठिन से कठिनतर होता गया।

बात यह थी कि जब उस की पत्नी वहाँ थी तो भाई साहब दुकान पर सो जाते थे। अब उन की पत्नी आ गई तो वे घर में उठ आये थे और दुकान पर सोने की बारी चेतन की थी। परन्तु उसे अब वहाँ सोना बड़ा कठिन लगता था। जब रात के एक दो बजे वह दफ़्तर से चलता तो उसे इतनी दूर दुकान पर जाना दूभर मालूम होता।

रहा घर, सो वहाँ इतनी जगह ही न थी कि भाई, भाभी और उन के दो बच्चों के साथ वह भी सो सके। या सो सके तो उन चंचल बच्चों की उपस्थिति में सुबह नौ बजे तक सोया रह सके। फिर उस की सब से बढ़ कर यह बात थी (और इसी ने वास्तव में लिए उस मकान का निवास असह्य बना दिया) कि भाई साहब जितने सुस्त, और शान्त स्वाभाव के थे, उन के बच्चे उतने ही चंचल और उद्दंड थे। इतना लड़ते-भिड़ते और शोर मचाते कि अवकाश के समय किसी प्रकार का आराम अथवा रचनात्मक काम करना नितान्त असम्भव था।

एक दिन शाम को जब वह वापस आया तो उस ने देखा कि उस का प्रिय शीशे का क़लमदान (जो उस ने कबाड़ी की दुकान से नगद एक रुपये में खरीदा था और जो उस की उस थर्ड हैंड मेज़ को सुशोभित करता था) देहरी में रखा हुआ है और भाई साहब के सपूत सुरेश महाशय उस की लाल नीली स्याही से अपनी छोटी बहन के मुँह पर बेल बूटे बना रहे हैं, ताकि वह पूर्ण रूप से सीता बन जाय और वे राम-लीला का खेल खेल सकें।

चेतन ने क़लमदान छीन कर मेज़ पर रखा; बका-झका; अपने भतीजे को पीटा और इसके फलस्वरूप भाभी से लड़ा, किन्तु इस का परिणाम कुछ भी न निकला। दूसरे दिन जब वह संध्या को दफ्तर से आया तो उस ने देखा कि सुरेश महाशय उस की मेज़ पर चढ़े दीवार

से चिपटी एक मकड़ी को पकड़ने के प्रयास में तल्लीन हैं और उस के लेखों, कहानियों तथा कविताओं की मोटी फ़ाइल उन के पाँवों के नीचे बेतरह कुचली जा रही है। उसे देखकर जो वे चौंके तो मेज़ समेत सब कुछ धड़ाम से नीचे आ रहा। क़लमदान टूट गया, कागज़ बिखर गये और जब रोते झींखते उस ने सब कुछ फिर से सजाया तो उसे मालूम हुआ कि मेज़ की वह टाँग, जिसे कबाड़ी ने बड़ी चतुराई से जोड़ रखा था, टूट गई है।

और वह अपना समस्त रचनात्मक कार्य्य छोड़, मकान ढूँढने की मुहिम पर निकल पड़ा।

और गर्मियों की एक सुबह वह अनन्त को पत्र लिख रहा था।

"......हम ने मकान बदल लिया है। यह नया मकान भी यद्यपि चंगड़ मुहल्ले ही में है, पर यही यथेष्ट है कि पीपल बेहड़ा में नहीं।

तुम सोचोगे कि चंगड़ मुहल्ले में ऐसा सुन्दर मकान मुझे मिल कैसे गया? वास्तव में यह मकान सरदार जगदीश सिंह (लैंड लार्ड एंड हाउस प्रोप्राइटर) का निजी मकान है। यह सरदार जगदीश सिंह वही महाशय हैं जिन्होंने अपनी अधिकांश जायदाद पार्टियों, कंसर्टों और यार दोस्तों की भेंट कर दी। जायदाद खा-उड़ा कर अब उन्होंने अपने निवास-स्थान को विभक्त कर उस में किरायेदार बसा लिये हैं। उनके साथ वाले भाग में हम आ गये हैं। तुमने शायद समाचारपत्र में यह खबर पढ़ी होगी कि अब इन सरदार महोदय ने अदालत में श्रीमती राधारानी के पति और अपने तीन मित्रों के विरुध

सोलह हज़ार रुपया ठग लेने के अभियोग में मामला चलाया है।......

मकान बहुत अच्छा है। जिस तरह चाकू के खुरदरे असुन्दर छिलके के अन्दर सुन्दर गूदा होता है, उसी प्रकार इस मैले, गंदे इलाके में यह सुन्दर, सुनिर्मित मकान है। जगह बहुत नहीं—एक बड़ा कमरा है जिसे एक लकड़ी के पार्टीशन द्वारा दो कमरों में बांट दिया गया है। स्नानगृह नहीं है, पर रसोई घर इतना खुला है कि उस के एक कोने में बने हुए चबूतरे से स्नानागार का काम लिया जा सकता है। कमरों की पिछली दीवार में खिड़कियाँ हैं, दीवारों पर सफेदी और किवाड़ों पर बेहद अच्छा सरदई रंग का वारनिश है। इस के अतिरिक्त बड़े कमरे की छत में बिजली का पंखा भी लगा हुआ है। अनन्त! जब कभी मैं खिड़कियाँ खोलकर, पंखा चला, चारपाई पर लेटता हूँ तो मन एक अनिर्वचनीय आनन्द से विभोर हो उठता है। एक अत्यन्त गन्दी सीलभरी, अँधेरी, कोठरी के बाद एक खुले, रोशन, हवादार कमरे साँस लेने का आनन्द शायद तुम नहीं जान सकते।........

—o—

३२

रात अत्यधिक अँधेरी थी। वर्षा अपना वेग दिखा कर नन्हीं नन्हीं बूंदों में बरस रही थी। चेतन ने घड़ी की ओर देखा, अढ़ाई बज गये थे। सामने सम्पादक महोदय प्रेस-कापी तैयार कर के वहीं कुर्सी पर टाँगें सिकोड़े सो गये थे। चेतन उपन्यास लिख रहा था, किन्तु प्रयास करने पर भी उस से अब आगे न लिखा जाता था। उसका श्रान्त मस्तिष्क थके हुए घोड़े की भांति अड़ गया था और बार बार पानी के छींटों के रूप में चांटे मारने पर भी आगे न बढ़ रहा था। उस ने कापी बन्द की, सम्पादक को जगा, उस से छुट्टी ली, छाता उठाया और चल दिया।

बाहर ड्योढ़ी की चौखट पर खड़े होकर उस ने गली में दृष्टि डाली। शुक्ल-पक्ष होने के कारण बिजली की बत्तियाँ बन्द थीं। यद्यपि काजल-काली घटाओं ने शुक्ल-पक्ष को कृष्ण-पक्ष से भी अधिक काला बना दिया था, पर कानून तो कानून ठहरा, बदलों के छा जाने से उस में कैसे परिवर्तन हो, गहन अंधकार के बावजूद बत्तियाँ बन्द थीं। गली के तिमंज़िले मकान इस अंधकार को और भी निविड़ बना रहे थे। नीचे पानी की नदी ठाठें मार रही थी और ऊपर से परनालों का पानी शोर मचाता हुआ उस से मिल रहा था।

चेतन ने सोचा कुछ क्षण और प्रतीक्षा कर ले। किन्तु यह विचार कि अढ़ाई बज गये हैं, जैसे बरबस उसे आगे ढकेलने लगा। एक हाथ में छाता और उपन्यास की कापी थाम कर दूसरे से तहमद को ऊपर उठाता हुआ वह सीढ़ियाँ उतर गया।

गली में घुटनों तक पानी था। रोशनी से सहसा अँधेरे में आने से कारण उसे कुछ दीख न रहा था। माप माप कर पग धरता हुआ वह आगे बढ़ा।

वह लाख चाहता था कि परनालों की निरन्तर बहती धाराओं से बच जाये, पर वे सब 'हरर-हरर' करते ठीक गली के मध्य गिर रहे थे। दीवार के साथ चलने में पाँव के नाली में फँस जाने का भय था। उस का छाता दो तीन वर्ष उस की सेवा करने के उपरान्त जर्जर-प्रायः हो गया था। इसलिए वह भगवान शिव की भांति उन अगनित धाराओं को अपने सिर पर वहन करने को विवश था।

अभी कठिनाई से उसने आधी गली पार की होगी कि उसे अचानक ऐसा लगा जैसे किसी ने निचुड़ता हुआ कोड़ा पूरे ज़ोर से उस की गर्दन पर दे मारा हो। उसे एक 'शॅ' की आवाज़ सुनाई दी और अँधेरे में को भयानक सी चीज़ उस की ओर बढ़ी। वह उछला। उसका हृदय धक धक करने लगा और पानी की एक गर्म गर्म धारा उसे अपनी गर्दन से वक्ष की ओर बहती प्रतीत हुई।

जब वह गली के सिरे पर पहुँच गया तो उस ने पीछे मुड़ कर देखा। उस की आँखें अंधकार से अभ्यस्त हो चुकी थीं। तब उसे पता चला कि वह तो पड़ोस में रहने वाले प्रोफेसर साहब की उद्दंड, मरकही गाय है जिस की गीली दुम उस के गले से बेतरह लिपट गई थी।

वहीं गली के सिरे पर खड़े खड़े उस ने पहले प्रोफेसर साहब, फिर उन की गाय और फिर म्युनिसिपेल कमेटी को कोसा। फिर वह धीरे-धीरे चल पड़ा।

बाजार में गली की अपेक्षा अंधकार कुछ कम था। और यद्यपि वर्षा फिर होने लगी थी, पर बादलों की तह शायद हल्की हो गई थी। डूबा हुआ चाद उभर आया था और उस की मन्यम-ज्योत्स्ना बादलों में से

छन कर उस सूचीभेद्य अँधकार को कम कर रही थी।

और वह चलता चलता महान लेखक के कथनानुसार समय का लाभदायक उपयोग करने के विचार से मन ही मन उपन्यास के कथानक पर विचार करने लगा।

एस० पी० एस० के हाल के पास पहुँचकर उसने देखा कि मोहन लाल रोड और चंगड़ मुहल्ले का संगम प्रयाग का संगम बना हुआ है। उस के सामने पानी में डूबी हुई चंगड़ मुहल्ले की सड़क घूम गई। यदि वह उधर से जायगा तो दीवान चन्द हलवाई की दुकान तक उसे पानी में चलाना पड़ेगा और चंगड़ मुहल्ले के बाज़ार का पानी—ध्यान मात्र ही से उसका जी मतलाने लगा। तब उसने सोचा कि वह वन्देमातरम प्रेस के पास से होकर जाने वाली गली से घर जायगा। और वह उधर को चल पड़ा।

गली के आरम्भ में नाली की छोटी सी लोहे की पुली टूटी हुई थी और पानी बड़े वेग से बह रही था। दस बारह कदम चलने के बाद गली ऊँची थी। पैरों से टटोलता टटोलता चेतन बढ़ा जा रहा था और अनजाने ही उस महान लेखक के कथन का भी पालन कर रहा था और उसके मस्तिष्क में उपन्यास का कथानक बन-सँवर कर अपना पूरा आकार पा रहा था कि उसे लगा जैसे उसके हाथ से कोई चीज़ फिसली जा रही है। कथानक के निर्माण में तल्लीन उसने उसे थामा भी, पर तभी नाली में उसका पांव फँस गया और वह चीज़ फिसल कर छप से पान गिर गई।

वह चौंका। नाली बहुत गहरी न थी, इस लिए उसका पांव टूटने से बच गया। पर यदि उसका पांव टूट जाता तो शायद उसे इतना दुख न होता जितना उसे यह जान कर हुआ कि वह चीज़ उसके उपन्यास की कापी थी।

उसने बेतहाशा पानी में इधर उधर हाथ मारा। पर फिर वह अपनी इस मूर्खता पर स्वयं ही हँसा—कापी यहाँ कहाँ? वह तो पानी के प्रवाह में मोहन लाल रोड के संगम तक चली गई होगी—उस ने सोचा और कुछ क्षण तक वहीं मूक-मर्माहत सा भीगता खड़ा रहा। चारों ओर निविड़ अंधकार छाया था। वर्षा की रिमझिम, परनालों और बहते हुए पानी का शोर रात की निस्तब्धता भंग कर रहा था। एक ताँगा 'छप' 'छप' करता हुआ उस के पीछे से निकल गया। चेतन ने सोचा कि वह दूसरी सुबह आकर अपनी कापी ढूंढेगा, किन्तु चलते समय उस ने फिर अनायास पैर से इधर उधर टटोल कर देख लिया।

नाली को पार करके वह चुपचाप चलने लगा। यद्यपि उस महान लेखक ने कहा था कि चलते समय का उचित प्रयोग लाभदायक तौर पर सोचना है, किन्तु निरन्तर प्रयास करने पर भी वह इस अमूल्य कथन का पालन न कर सका। वह सोचता तो रहा, पर वह सब लाभदायक था, इसमें सन्देह है। जब वह घर पहुँचा तो उस का मन खिन्न, शरीर क्लान्त और पलकें भारी थी। रह रह कर उस के सामने वह मोटी कापी, उस के सुन्दर पृष्ठ, नीली नीली लकीरें और उन पर बड़े यत्न से सुन्दर लेखनी में लिखे हुए उपन्यास के परिच्छेद घूम घूम जाते। उसे ऐसा लग रहा था जैसे वह उपन्यास वह फिर न लिख सकेगा—इतना संताप वह कहाँ से लायेगा? यह सोचते-सोचते वह सीढ़ियाँ चढ़ गया और दरवाज़े पर पहुँच कर उस ने दस्तक दी।

सरदार जगदीश सिंह के नौकर ने (जो पार्टीशन के इस ओर बरामदे में सोता था) आकर दरवाज़ा खोला. और कहा:

"बीबी जी आ गई हैं।"

बीबी जी! कौन बीबी जी?"

"आप की बीबी!"

"माँ।"

"नहीं जी आप की बीबी" नौकर ने तनिक हँसते हुए कहा।

तभी चन्दा ने आकर रसोई घर का दरवाज़ा खोला। वह शायद अब तक जाग रही थी। उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। चेतन के मन में उल्लास की लहर दौड़ गई और कापी के खो जाने का दुख निमिष-मात्र में हवा हो गया।

नौकर चला गया था। वहीं सीढ़ियों पर खड़े-खड़े वे कितनी देर तक बातें करते रहे। चन्दा ने उसे बताया कि उस का जी वहाँ ज़रा भी न लगता था। वह बहुतेरा हँसने, प्रसन्न रहने का प्रयास करती थी, पर उदासी अनायास ही उस के मन-प्राण पर छा जाती थी। माँ ने उसे बस्ती भेज दिया, पर वहाँ भी उस का मन न लगता था—रोने-रोने को हुआ करता था। आखिर जब रणवीर लाहौर आने लगा तो माँ ने क्रुद्ध हो उसे उस के साथ चले जाने को कहा और वह चली आई। "मुझे आप का डर था......" उस ने कहना चाहा, किन्तु चेतन उसकी बात काट कर बोला, "बड़ा अच्छा किया, मेरा अपना मन बड़ा उदास है।"

और उसने चन्दा को कापी के खोने की घटना सुनाई।

चन्दा ने उसे सान्त्वना दी।

कुछ क्षण दोनों वहीं चुप खड़े रहे। फिर चन्दा ने कहा, "चल कपड़े बदल डालिए। सर्दी न लग जाय!" और वे दोनों ई-घर में आ गये। कमीज़ उतार कर चेतन ने खूँटी पर दी और बदन पोंछ कर तहमद बदल, वहीं रसोई-घर में एक को उलट कर उस पर बैठ गया। चन्दा उस के पास धरती प

बैठ गई।

वहीं बैठे बैठे चन्दा ने बताया कि माँ ने एक चिट्ठी भी दी है। और उस ने अपने ब्लाउज़ से एक चिट्ठी निकाल कर चेतन को दी। चेतन उस समय ज़रा भी चिट्ठी पढ़ने के मूड में न था। उस ने अन्यमनस्कता से पत्र को पढ़ना आरम्भ किया— माँ ने चन्दा के व्यवहार की शिकायत की थी और ताने दिये थे—किन्तु चेतन ने दो चार पंक्तियाँ पढ़ कर ही पत्र को अलग रख दिया।

चन्दा आई थी तो डरती थी कि कहीं इस प्रकार बिना पूछे चले आने पर चेतन गुस्सा न हो, पर उस के व्यवहार से उत्साह पाकर, उस के पास बैठी बैठी वह अनवरत बातें सुनाती सुनाती चली गई—सोहनी, केसरी, लक्ष्मी, पारो, शीला, करतारी—अपनी सभी सहेलियों की बातें.....।

कई बार चेतन को इच्छा हुई कि वह चन्दा से नीला की बात भी पूछे, पर हर बार वह अपनी इस इच्छा को बरबस दबा कर रह गया।

सामने रसोई घर की खिड़की से प्रातः का झुटपुटा दिखाई देने लगा था जब भाई साहब ने जग कर पार्टीशन के दूसरी ओर से लगभग पितृ-स्नेह से भरी आवाज़ में कहा :

'अब सो जाओ चेतन, दोपहर को तुम्हें फिर दफ़्तर जाना है।"

—o—

३२

देवरानी और जेठानी के इकट्ठे रहने से चेतन को नित्य किसी न किसी नयी समस्या से दो चार होना पड़ता। सब से पहली समस्या खाना पकाने की थी। चन्दा पढ़ती थी, इस लिए खाना पकाने का काम भावज ही को अधिक करना पड़ता था। यद्यपि चन्दा को शिकायत रहती थी कि उस की जेठानी चेतन की तरकारी में तड़का कम लगाती है और उस के दूध में मलाई नहीं डालती, पर चेतन संतुष्ट था कि चन्दा को पढ़ने-पढ़ाने के लिए समय तो मिल जाता है। और वह उसे समझा देता था कि ऐसी ज़रा ज़रा सी बातों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए।

वास्तव में जब चन्दा ने कुछ ही महीनों के परिश्रम से अच्छे नम्बरों से हिन्दी रत्न की परीक्षा पास कर ली तो चेतन की दृष्टि में उस का महत्त्व बढ़ गया था। वह न चाहता था कि उसे खाना पकाना पड़े, किन्तु उसकी भाभी को अपनी देवरानी का यों रानी बने बैठना एक आँख न भाता था और वह भाई साहब से रोज़ तगादा करती थी कि उसे भी स्कूल में दाखिल करा दिया जाय। भाई साहब हँस देते—"अब तुम पढ़ कर क्या करोगी?" वे कहते, "बच्चे पालो और राम का नाम जपो" और वे छड़ी उठा कर सैर को निकल जाते।

दिन प्रति दिन भाभी के तगादे और भाई साहब की बेपरवाही बढ़ने लगी। आखिर जब भाभी का अनुरोध बढ़कर क्रोध और भाई साहब की बेपरवाही चुप की सीमा को पहुँच गई तो एक दिन भाभी

बैठ गई।

वहीं बैठे बैठे चन्दा ने बताया कि माँ ने एक चिट्ठी भी दी है। और उस ने अपने ब्लाउज़ से एक चिट्ठी निकाल कर चेतन को दी। चेतन उस समय ज़रा भी चिट्ठी पढ़ने के मूड में न था। उस ने अन्यमनस्कता से पत्र को पढ़ना आरम्भ किया — माँ ने चन्दा के व्यवहार की शिकायत की थी और ताने दिये थे — किन्तु चेतन ने दो चार पंक्तियाँ पढ़ कर ही पत्र को अलग रख दिया।

चन्दा आई थी तो डरती थी कि कहीं इस प्रकार बिना पूछे चले आने पर चेतन गुस्सा न हो, पर उस के व्यवहार से उत्साह पाकर, उस के पास बैठी बैठी वह अनवरत बातें सुनाती सुनाती चली गई—सोहनी, केसरी, लक्ष्मी, पारो, शीला, करतारी—अपनी सभी सहेलियों की बातें.....।

कई बार चेतन को इच्छा हुई कि वह चन्दा से नीला की बात भी पूछे, पर हर बार वह अपनी इस इच्छा को बरबस दबा कर रह गया।

सामने स्टोर घर की खिड़की से प्रातः का झुटपुटा दिखाई देने लगा था जब भाई साहब ने जग कर पार्टीशन के दूसरी ओर से लगभग निद्रा-[illegible] से भरी आवाज़ में कहा :

“अब सो जाओ चेतन, दोपहर को तुम्हें फिर दफ़्तर जाना है।”

भाभी चीख उठती, "आप तो डाक्टर हैं और वह चालीस रुपये का ! उसकी बीवी तो स्कूल में पढ़े, बाजे बजाये और मैं बैठी मुटर तका करूँ। उन को सब कुछ लेकर देने के लिए तो आप के पास आ जाते हैं और मेरे लिए......"

ऐसे समस्त अवसरों पर डाक्टर साहब के लिए भोजन विष बन जाया ा। किसी न किसी तरह दो चार कौर निगल कर वे उठ खड़े होते। उठाते और चुपचाप बाहर निकल जाते।

अपनी भाभी की इस ईर्षा से तंग आकर चेतन ने अपनी पत्नी से कह ा कि वह अपनी जेठानी को भी बाजा सिखा दिया करे।

चन्दा ने उसी दिन से श्रीमती चम्पावती को गाना सिखाना आरम्भ दिया। भाभी के गले में रस का सर्वथा अभाव था। स्वर उन का ा का सा था, किन्तु इस से वे तनिक भी हतोत्साह न होती थीं और ा फाड़े सुर-बेसुर गाये जातीं।

उन्हीं दिनों एक और घटना घटी जिस ने भाभी की ईर्षाग्नि पर तेल काम किया।

बात यह हुई कि चेतन के पास उस के वेतन के अतिरिक्त कुछ र रुपये आ गये। कृषकों के हितचिन्तक, पूंजीपतियों के एक ताहिक-पत्र के स्वामी ने चेतन से प्रति-सप्ताह एक कृषि सम्बन्धी कहानी ी का वादा किया था और पहली कहानी के रुपये भी उन्होंने दे ये थे। सर्दी ज़ोरों से पड़ने लगी थी और चन्दा के पास एक भी गर्म ड़ा न था। इस लिए चेतन ने उसे एक स्वेटर कोट ले दिया। जब ान घर से चला था तो उस का यही ख्याल था कि एक सस्ता सा

स्वयं मोहनलाल रोड गई और कैलीग्राफी*की दो चार कापियाँ ख़रीद लाई। सारा दिन बैठी, एकनिष्ठ हो, वह उन्हें रंगती रही। जब शाम को भाई साहब ने आकर खाना माँगा तो उसने इनकार कर दिया। "वह यदि पढ़ती है, तो क्या मैं नहीं पढ़ती," उस ने अगूठा मटका कर कहा, "वह तो पढ़ने के बहाने खाट पर टांगें फैलाये लेटी रहे और मैं बांदी बनी घर का सब काम करूँ!"

जब भाई साहब का समझाना-बुझाना अनुनय-विनय, सब वृथा गया तो आख़िर चेतन ने फ़ैसला किया कि भाभी सुबह और चन्दा शाम को खाना पकाये। यह भी तै हो गया कि छुट्टी के दिन चन्दा सुबह पकायेगी ताकि वे शाम को सैर के लिए जा सकें।

इस समस्या से छुटकारा मिला तो बाजे की समस्या भयावह रूप धारण कर सामने आ गई।

पहले तो भाभी को इस बात की जलन थी कि चन्दा अपने जेठ के सामने क्यों गाती है। जब चेतन ने उसे रोक दिया तो भाभी ने स्वयं बाजा सीखने की रट लगा दी। जब भी भाई साहब शाम को घर आते तो खाना परोसते समय भाभी बाजा सीखने की इच्छा प्रकट करती।

इन बातों के उत्तर में भाई साहब चुप और व्यंग्य से हँसते। दुकान में अभी जितने ही औज़ार कम थे; कुर्सी भी सस्ती और पुरानी [illegible] थी; बाहर का बोर्ड भी छोटा था; दुकान में लकड़ी और शीशे के दर्शों की बहुत ज़रूरत थी; बिजली का पंखा तक न था—वे पत्नी को समझाने की कोशिश करते, पर भर्तृहरि ने कहा न कि अज्ञ को [illegible] से समझाया जा सकता है, पर मूर्ख को.....

* कैलीग्राफी (Calligraphy); सुलेखन, [illegible]

और भाभी चीख उठती, "आप तो डाक्टर हैं और वह चालीस रुपये का क्लर्क! उसकी बीवी तो स्कूल में पढ़े, बाजे बजाये और मैं बैठी मुटर मुटर तका करूँ। उन को सब कुछ लेकर देने के लिए तो आप के पास पैसे आ जाते हैं और मेरे लिए......"

ऐसे समस्त अवसरों पर डाक्टर साहब के लिए भोजन विष बन जाया करता। किसी न किसी तरह दो चार कौर निगल कर वे उठ खड़े होते। छड़ी उठाते और चुपचाप बाहर निकल जाते।

अपनी भाभी की इस ईर्षा से तंग आकर चेतन ने अपनी पत्नी से कह दिया कि वह अपनी जेठानी को भी बाजा सिखा दिया करे।

चन्दा ने उसी दिन से श्रीमती चम्पावती को गाना सिखाना आरम्भ कर दिया। भाभी के गले में रस का सर्वथा अभाव था। स्वर उन का कौवे का सा था, किन्तु इस से वे तनिक भी हतोत्साह न होती थीं और गला फाड़े सुर-बेसुर गाये जातीं।

उन्हीं दिनों एक और घटना घटी जिस ने भाभी की ईर्षाग्नि पर तेल का काम किया।

बात यह हुई कि चेतन के पास उस के वेतन के अतिरिक्त कुछ और रुपये आ गये। कृषकों के हितचिन्तक, पूंजीपतियों के एक साप्ताहिक-पत्र के स्वामी ने चेतन से प्रति-सप्ताह एक कृषि सम्बन्धी कहानी लेने का वादा किया था और पहली कहानी के रुपये भी उन्होंने दे दिये थे। सर्दी ज़ोरों से पड़ने लगी थी और चन्दा के पास एक भी गर्म कपड़ा न था। इस लिए चेतन ने उसे एक स्वेटर कोट ले दिया। जब चेतन घर से चला था तो उस का यही ख्याल था कि एक सस्ता सा

स्टेवर कोट वह चन्दा को ले देगा। परन्तु जब वह चन्दा को लिए हुए 'विलक होज़री' के अन्दर जा बैठा और उस ने सामने के बड़े शीशे पर दृष्टि डाली और अपनी आकृति दर्पण में निरख (मन ही मन उस की प्रशंसा करते हुए) अपने मुलायम बालों पर उस ने हाथ फेरा और देखा कि उस की पत्नी की आँखों से एक सलज्ज मुस्कान निकल कर उस के ओंठों पर फैलती हुई चेहरे को द्युतिमान कर रही है, तो न जाने उसे क्या हुआ कि वह सस्ता स्वेटर खरीदने की बात एक दम भूल गया। उस ने ऐसे गर्व के स्वर में सेल्ज़मैन से स्वेटर दिखाने को कहा कि घटिया स्वेटर लाने का उसे साहस ही न हो।

पर उस के स्वर में जो गर्व था, उस की ओर ध्यान न देकर सेल्ज़मैन ने दो अढ़ाई रुपये तक के स्वेटर उस के सामने लाकर रख दिये।

चेतन ने कहा, "कुछ और अच्छे दिखाओ!"

सेल्ज़मैन चार पाँच तक के उठा लाया।

शायद चेतन को इस में अपना अपमान लगा। कुछ असंतोष से उस ने कहा, "और दिखाओ भाई, जो सब से अच्छा हो वह दिखाओ!"

तब सेल्ज़मैन [illegible] रंग का एक स्वेटर कोट लाया जिस के दामन पर [illegible] धारियाँ थीं।

"इस का क्या मूल्य है?" चेतन ने पूछा।

"आठ रुपये।"

चेतन [illegible] में आठ ही रुपये थे। चार रुपये उसे मालिक मकान को किराये के [illegible] में देने थे और चार रुपये उस ने स्वेटर कोट के लिए [illegible] थी, इस लिए जब उस ने चन्दा [illegible] स्वेटर कोट [illegible]।

तब हँसते हुए और शीशे में अपनी शक्ल देख कर बालों पर हाथ फेरते हुए गुलाबाँसी स्वेटर कोट की ओर संकेत कर के चेतन ने पूछा, "यह तुम्हें अच्छा नहीं लगता क्या ?"

अरमान भरी आँखों से चन्दा ने स्वेटर-कोट की ओर देखा और फिर आँखें झुका लीं।

चेतन भूल गया कि चार रुपये उसे मालिक मकान को देने हैं। एक विचित्र प्रेम भरे दयामिश्रित भाव से उस ने अपनी पत्नी की ओर देखा और आठ रुपये जेब से निकाल कर सेल्ज़मैन के सामने रख दिये, "यह गुलाबाँसी स्वेटर बँधवा दो।"

भाभी ने इस स्वेटर को देखा तो ईर्षा की एक टीस उसके हृदय की गहराई में उठी।

"चन्दा को तो आठ रुपये के स्वेटर लेकर दिये जायँ और मैं सर्दी में ठिठरूँ ?" भाई साहब के आने पर भाभी ने कहा।

"मुझे तो यह भी मालूम नहीं कि उस ने क्या ख़रीदा है।" भाई साहब व्यंग्य और विवशता से हँसे। चन्दा को बुला कर उन्होंने स्वेटर कोट देखा और एक दबी हुई साँस उन्होंने दिल में दबा ली। चेतन दफ्तर जा चुका था। इस डर से कि उन्हें बहुत उल्टी-सीधी सुननी पड़ेंगी, खाना खा, छड़ी उठा, भाई साहब सैर को चले गये।

दूसरे दिन उन्होंने अलग ले जा कर चेतन को समझाया कि तुम्हारी भाभी भी स्वेटर के लिए शोर मचा रही है। मेरे पास तो पैसा है नहीं। जब उसे बाहर जाना हो तो स्वेटर-कोट तुम उसे दे दिया करना।

यद्यपि पहले वह स्वेटर कोट भाभी ही ने पहना और कुल मिला कर भी भाभी ही स्वेटर को ज्यादा पहनती रही, फिर भी अपने निजी स्वेटर के लिए उस ने भाई साहब का पीछा न छोड़ा।

वह हँस कर यह भी कहता, "भाई साहब मैं बच्चा ही बना रहना चाहता हूँ। बूढ़ा बनना मुझे पसन्द नहीं। लेकिन बचपन में कितने भी लाभ क्यों न हों, हानि भी कम नहीं और एक बार अपने इसी बचपने के फल-स्वरूप वह और उस की पत्नी बीमार पड़ गये।

बात कुछ भी न थी। चेतन सन्ध्या को दफ़्तर से आया था। उसे ज़ोर की भूख लगी हुई थी। भूख उसे जब भी लगती, वह कुछ न कर पाता। कई बार ऐसा भी होता कि चन्दा उस के लिए अलग तरकारी छौंक कर रख देती और कहती, "बस कुछ देर नहीं, आइए बैठिए, फुलका* अभी सेंके देती हूँ।" वह आकर रसोई घर में बैठ जाता और रोटी के सिंकते सिंकते सब्जी ख़तम कर देता और चन्दा जब फिर उस के लिए सब्जी छौंकती तो वह इस बीच में रूखा फुलका ही खा जाता।

कई बार ऐसा भी होता कि वह भूख के कारण कोई पुस्तक लेकर पढ़ने बैठता, पर पढ़ने में उस का मन न लगता और वह पुस्तक छोड़ कर नीचे चला जाता और घूम फिर कर मन को दूसरी ओर लगाता।

उस दिन जब भूख से बेकल हो कर वह अपने मकान की सीढ़ियां उतरा तो उस ने गोल बाग़ का एक चक्कर लगा आने की सोची। मोहन लाल रोड से निकल कर वह लोअर माल पर हो लिया और ज़िला कचहरी के पास से होता हुआ गोल बाग़ में एक पेड़ के साथ बनी हुई गोल बैंच पर जा बैठा।

उसे इतनी भूख लग रही थी कि वहां बैठना और किसी दूसरी बात के सम्बन्ध में सोचना उसे दुष्कर प्रतीत होने लगा। एक उदास सी दृष्टि उस ने अपने चारों ओर डाली—सन्ध्या का समय था और लोग बाग़ की सैर को निकल आये थे। दायें ओर के लान में दो एक

---

*फुलका = छोटी रोटी

काली मामाएँ लाल लाल गोरे गोरे बच्चों को खेला रही थीं। गोरे गुलगोथने, गुबले गुबले, बच्चे अपनी नीली नीली आँखों, सफेदी-मिश्रित हल्के भूरे बालों और अपनी स्वस्थ स्फूर्ति के कारण चेतन को बड़े भले मालूम हुआ करते थे और कई बार वह गोल बाग़ से गुज़रता हुआ उन का खेल देखने को रुक जाया करता था पर उस अनमनेपन में वे उसे अत्यन्त घिनौने दिखाई दिये। उसे लगा जैसे उन के शरीर का प्रत्येक लोथड़ा और उन के रक्त का प्रत्येक कण अगनित काले बच्चों के मांस और रक्त से बना है। उसे लगा जैसे समस्त काला संसार मामा बना दिन रात गोरे संसार की सेवकाई कर रहा है और उस के मन में आई कि वह उल्का बन कर इस गोरे संसार पर फट पड़े और उसे नष्ट-भ्रष्ट कर उस भूखे काले संसार को मुक्त कर दे।

विकलता से वह उठा। सामने टेनिस कोर्ट में खेल शुरू हो गया था। अपने गोरे गोरे शरीर पर श्वेत टेनिस-शर्ट और नेकर पहने एक सुन्दर स्वस्थ रमणी अपना कौशल दिखा रही थी। यद्यपि चेतन को टेनिस अथवा क्रिकेट के खेल बड़े प्रिय थे और स्वयं कभी न खेल सकने पर भी वह उन दोनों खेलों को देखने और उनके टूर्नामेंटों के विवरण पढ़ने में बड़ा आनन्द पाता था, पर उस समय टेनिस कोर्ट उसे आकर्षित न कर सका। एक बार खेलने वालों की ओर अनमनी सी दृष्टि डाल कर वह घर की ओर चल पड़ा। उसे ऐसा लग रहा था जैसे गोल बाग़ में आये उसे बहुत देर हो गई है, उसे चलना चाहिए; चन्दा खाना पका कर बैठी उस की प्रतीक्षा कर रही होगी। इस प्रतीति के साथ ही उस की कल्पना के सम्मुख तरकारी से भरी कटोरियाँ और गर्म गर्म फूली फूली रोटियों से भरी थाली घूम गई।.....पर जब कचहरी तथा ला कालेज रोड की धूल

फाँक कर वह अपने घर पहुँचा और अतीव उत्सुकता के साथ उस ने रसोई-घर में झाँका तो उस के बदन में आग लग गई---चूल्हे के पास घुटनों में सिर दबाये चन्दा मज़े में आलू बैठी छील रही थी।

"तुम अभी आलू ही छील रही हो और मैं मील भर का चक्कर लगा आया हूँ।" उस ने चीख कर कहा, "खाना पकाना भी नहीं सिखाया किसी कम्बख्त ने तुम्हें!"

न जाने चन्दा की तबीयत खराब थी अथवा उस ने चेतन की आकृति पर प्रति क्षण गहरे होते रोष की रेखाओं को नहीं देखा, इस लिए वहीं घुटनों पर सिर रखे आलू छीलते छीलते उसने कहा, "खाना पकाना कोई खेल तो है नहीं, पका तो रही हूँ।"

चेतन का शरीर क्रोध से कांपने लगा। उसने बांह पकड़ कर अपनी पत्नी को उठाया और उसे लगभग घसीटता हुआ सा बड़े कमरे में ले गया। वहाँ चारपाई पर उसे बैठा दिया और बोला, "यहाँ बैठो, देखो, कितनी जल्दी पकाता हूँ खाना!"

चन्दा रोने लगी थी। किन्तु उसकी ओर ध्यान दिये बिना, वह जैसे अंगारों पर चलता हुआ रसोई घर में आया। आलू लगभग छीले जा चुके थे। उसने उन्हें काट कर धोया और चढ़ा दिया। फिर आटा साना और उसमें मुट्ठियाँ भर कर और पानी छिड़क कर उस पर कपड़ा रख दिया। फिर उसने तरकारी को देखा। अभी पकी न थी। तब कुछ क्षण वह घुटनों पर सिर रखे चुपचाप बैठा विष घोलता रहा।

जब चेतन के पिता रिलीविंग में न होते और किसी स्टेशन पर उनकी नियुक्ति हो जाती तो माँ उनके पास चली जाती थी ताकि कम से कम उनका वेतन तो मदिरा के चंगुल से घर के लिए बच जाय। तब उसकी अनुपस्थिति में चेतन के दादा खाना पका लिया करते थे।

में गया और किसी न किसी तरह हँसने की चेष्टा करते हुए उस ने कहा—"चलिए श्रीमती जो भोजन तैयार है! अब कृपा कर जीम लीजिए और देखिए कि इस बीच में किस प्रकार मैंने रसोई घर का जीवन सुधार दिया है।"

किन्तु चन्दा वहीं की वहीं बैठी रही। न हिली न डुली। उस ने सिर्फ़ इतना कहा, "मुझे भूख नहीं!"

अपनी पत्नी से अच्छे और सुचारु ढङ्ग से सब काम कर लेने के गर्व ने चेतन के जिस क्रोध को दबा दिया था, यह बात सुन कर वह पूरे वेग से भड़क उठा। भारी भारी पग धरता हुआ वह रसोई घर में गया, परोसा हुआ खाना उसने ढक दिया और भूखा ही बाहर निकल गया।

तीन दिन तक दोनों तने रहे। न चन्दा ने खाना खाया, न चेतन ने। भाई साहब समझा समझा कर हार गये। तीसरे दिन चेतन बीमार पड़ गया और चन्दा की तबीयत भी खराब हो गई। भाई साहब ने माँ को तार दिया। वह आई और दोनो को जालन्धर ले गई।

—०—

२५

अपनी इस मूर्खता के बाद चेतन बीमार रहने लगा था। उसे ज्वर सा रहता था। सिर में चक्कर आया करते और कमर में पीड़ा रहती। जब वह अपनी समझ से स्वस्थ होकर लाहौर आया था तो भी सर्दियाँ

उसे छुट्टियाँ लेते ही बीती थीं। चार दिन अच्छा रहता तो छः दिन बीमार पड़ जाता। उसे अपने ऊपर जो अटल विश्वास था, उसके पाँव डगमगा गये थे।

इन्हीं दिनों उसकी भेंट कविराज रामदास से हो गई।

कविराज रामदास यौन रोगों का उपचार करने वाले एक प्रसिद्ध वैद्य थे। कम से कम उनका नाम बहुत बड़ा था। यौन संबंधी विषयों में युवकों का पथ-प्रदर्शन करने के हेतु उन्हों ने कई पुस्तकें लिखी थीं और ऐसे ढंग से लिखी थीं कि यदि अच्छा भला युवक भी उन्हें पढ़ लेता तो अपने आप को बीमार समझने लगता और दूसरे ही दिन उनके दवाखाने जा पहुँचता।

चेतन ने भी उनमें से एक पुस्तक पढ़ी थी और भाई साहब की मनाही के होते भी वह कविराज से भेंट करने को उत्सुक था। वह तत्काल चला जाता, लेकिन उसने सुन रखा था कि पाँच रुपये तो केवल कविराज जी के परामर्श की फ़ीस है, दवाई के दाम अलग रहे। और पाँच रुपये तो दूर, वह पाँच आने व्यय करने में भी असमर्थ था।

उन्हीं दिनों उसने अपने एक मित्र से सुना कि कविराज साहित्यिकों का बड़ा आदर करते हैं। यह सुन कर उसके उल्लास का ठिकाना न रहा। उसने अपनी कहानियों का मसौदा लिया, तनिक सा साहस बटोरा और उनके औषधालय में जा पहुँचा।

बात यह थी कि वह अपनी कहानियों का संग्रह छपवाना चाहता था और प्रकाशक उसे मिल न रहा था। "नाम बिकता है," उसने अपने एक पत्र में अनन्त को लिखा था, "नये लेखक को इस बात की आशा न करनी चाहिए कि साहित्य अथवा कला के नाम पर प्रकाशक

उस की पुस्तक छाप कर उस का उत्साह बढ़ायेंगे। उन का साहित्य पैसा है और कला पैसा बटोरने की रीति! अधिकांश उन में अपढ़ और कला से कोरे हैं। जिसका नाम बिकता है, उसी के पीछे भागते हैं।" और उस ने सोचा था कि वह एक दो पुस्तकें स्वयं छपवायेगा। प्रेस का उस ने प्रबन्ध कर लिया था, पर कागज़ के लिए उस के पास पैसे न थे। जब उस ने सुना कि कविराज साहित्यिकों, विशेपतया नये साहित्यिकों की सहायता करते हैं तो वह साहस बटोर कर (अपने अर्ध-चेतन मन में उन से अपनी शारीरिक दुर्बलता के सम्बन्ध में परामर्श लेने की इच्छा को छिपाये) अपनी कहानियों का पुलंदा बग़ल में दबाये, उन के औषधालय की सीढ़ियाँ चढ़ गया।

जब सब रोगी परामर्श ले चुके और वह अन्दर गया तो उसे बैठने का भी साहस न हुआ। उस ने तहमद और खादी की कमीज़ पहन रखी थी। छाती का बटन टूटा होने के कारण बार बार काज को काल्पनिक बटन से मिलाते हुए, खड़े-खड़े ही उस ने अपना परिचय दिया। बताया कि वह एक उदीयमान कलाकार है। उस की कहानियों का पहला संग्रह तैयार है; एक 'महान आलोचक' ने उस की भूमिका लिखी है; उस ने प्रेस का प्रबन्ध कर लिया है; पर कागज़ के लिए उस के पास पैसे नहीं। और झिझकते-झिझकते उस ने अपना मन्तव्य प्रकट किया कि यदि वे किसी प्रकार कागज़ का प्रबन्ध कर दें तो वह साहित्य-क्षेत्र में चमकने का अवसर पा सके।

कविराज ने उसे बड़े प्यार से बैठाया, उसे प्रोत्साहन दिया और कहा, "मैं कागज़ का प्रबन्ध कर दूँगा, तुम चिन्ता न करो!" फिर बातों-बातों में उन्हों ने उसे यह भी समझा दिया कि जीवन में सदैव अपनी सहायता आप करनी चाहिए। स्वावलम्बी के लिए किसी के आभार का बोझ सिर पर लेना उचित नहीं। "मन पर भार रह जाता है,"

उन्हों ने कहा, "आदमी ऊँचा उठ जाता है, पर उस की आँखें झुकी रहती हैं।" और चेतन को इस घोर-संकट से बचाने के लिए उन्हों ने यह प्रस्ताव किया कि वे उस से रुपये वापस लेने के बदले उसी मूल्य की पुस्तकें ले लेंगे। "मैं अपनी नयी पत्रिका 'स्वास्थ्य' के ग्राहकों के लिए तुम्हारी पुस्तक पुरस्कार स्वरूप रख दूँगा," उन्हों ने कहा, "जो भी नया ग्राहक बनेगा, उसे तुम्हारी पुस्तक पुरस्कार-स्वरूप दी जायगी। तुम्हारी पुस्तक भी छप जायगी, उसे अधिक लोग पढ़ भी लेंगे और तुम्हारी दूसरी पुस्तक के लिए क्षेत्र भी बन जायगा!" और वे मूंछों में मुस्कराये।

"जी, जी!" चेतन ने प्रसन्न हो कर कहा, "मैं छपते ही आप की सेवा में ले आऊँगा। इस समय आप काग़ज़ का प्रबन्ध कर दें।"

"वह सब हो जायगा, तुम इस की चिन्ता न करो। ख़ूब जी लगा कर लिखो।" फिर हँसते हुए उन्हों ने कहा था, पर अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान रखो, लगता है कि तुम इस ओर ध्यान नहीं देते।'

"जी...जी...!" और एक शर्मीली सी हँसी के अतिरिक्त चेतन कुछ न कह सका था और दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार करता हुआ वहाँ से उठ आया था।

वह कविराज जी के औषधालय से उतरा तो इतना प्रसन्न था जैसे उसे अचानक कोई निधि मिल गई हो। आते ही उस ने कहानी-संग्रह का मसौदा मेज़ पर फैलाया और उस में एक और पृष्ठ बढ़ा कर समर्पण-स्वरूप लिखा:

"कविराज रामदास जी को
पहली ही भेंट पर जिन के प्रति मन
श्रद्धा से प्लावित हो उठता है।"

—o—

३६

कविराज जी ने न केवल काग़ज़ से उस की सहायता करने का वचन दे कर चेतन का सहास बढ़ाया था, वरन् अपनी नई पत्रिका 'स्वास्थ्य' के लिए उस से स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों पर लेख भी लिखवाये थे और साहित्यिकों की जो सरपरस्ती वे किया करते थे, उस का ज़िक्र करते हुए, उसे उन लेखों के पैसे भी दिये थे।

"अभी पत्रिका नयी है, इस लिए मैं तुम्हें चार आने प्रति पृष्ठ ही दूँगा," उन्हों ने कहा था, 'पर मुझे पूरा विश्वास है कि मेरी पुस्तक की भाँति यह पत्रिका भी लाखों की संख्या में बिकेगी। तब तुम्हारा पुरस्कार भी चार आने से चार रुपये तक हो सकेगा।"

चेतन के उल्लास का वारापार न रहा था। एक पृष्ठ के चार आने तो दूर उसे तो कभी पूरी की पूरी कहानी के चार आने न मिले थे।

वह स्वयं नये विषय चुनता और बारह तेरह घंटे दफ़्तर में काम करने के बाद घर पर लेख लिखता। इस तरह जो पैसे बनते वे अपने बड़े भाई को देता। भाई साहब की दुकान पर अब एक बड़ा भारी बोर्ड लग गया था। बाहर एक शीशे का और अन्दर प्लाईवुड का पार्टिशन शोभा देता था। वेटिंग रूम का रूप निखर आया था। और परछती के ऊपर भी एक गहरे नीले रंग का पर्दा दिखाई देता था। उस के पीछे भाई साहब ने दोपहर को आराम करने की जगह बना ली थी।

किन्तु जिस इच्छा को ले कर वास्तव में चेतन कविराज से मिलने गया था वह अभी तक उन पर प्रकट न कर सका था। उस के सिर में

पीड़ा कुछ अधिक रहने लगी थी, कमर भी अधिक दुखती थी और चक्कर भी कुछ ज़्यादा आने लगे थे। आखिर एक दिन झिझकते झिझकते, उस ने अपने स्वास्थ्य की चर्चा छेड़ कर, अपनी वह इच्छा भी प्रकट कर ही दी। अपने शारीरिक कष्ट की बात कहते हुए उस ने कहा, "मैं कई बार आप से निवेदन करना चाहता था कि यदि आप भली भाँति मेरा निरीक्षण कर मेरे लिए कोई औषधि बता दें तो बड़ी कृपा हो।"

कविराज ने एक बार उस के मुख की ओर देखा, निमिष भर सोचा और फिर हँसे। "तुम्हें औषधि की नहीं, आराम की ज़रूरत है," उन्हों ने कहा, "दो तीन महीने के लिए अपने थके हुए मस्तिष्क को विश्राम दो, सैर करो, आराम करो, व्यायाम करो, और परहेज़ रखो, तुम ठीक हो जाओगे।" फिर उन्होंने जैसे अपने आपसे कहा था, "दैनिक पत्र का जीवन भी कोई जीवन है। इसमें पिसते हुए आदमी स्वस्थ रह भी कैसे सकता है कुछ दिनों के लिए इससे छुटकारा पाओ।" और उन्हों ने स्वास्थ्य और उसे अच्छा बनाये रखने के प्राकृतिक साधनों पर एक छोटा सा मोटा भाषण दे डाला था—"जान है तो जहान है।" उन्होंने कहा, "यदि जान में जान है तो एक छोड़ बीस काम हो सकते हैं और यदि जान को रोग लगा है तो आदमी क्या तीर मारेगा?"

"मैं पहले ही बहुत छुट्टियाँ ले चुका हूँ।" चेतन ने विवशता से कहा, "मुझे दफ़्तर से जितनी छुट्टियाँ मिल सकती हैं, उनसे भी कहीं अधिक!"

"तुम कल आना," उन्हों ने तनिक सोच कर कहा, "मैं कोई न कोई मार्ग निकालूँगा।"

दूसरे दिन जब वह उन के पास गया तो उन्होंने अपनी पत्नी का

उल्लेख किया :

"मैंने बीबी जी से (उनका अभिप्राय अपनी सहधर्मिनी से था) तुम्हारे विषय में बात की थी। उनका हृदय बड़ा कोमल है। अपने पाँवों पर आप खड़े होने का प्रयास करने वाले तुम जैसे युवकों से उन्हें बड़ी सहानुभूति है। जब मैंने उन्हें बताया कि तुम दैनिक पत्र में किस प्रकार दिन रात काम करके अपना जीवन-निर्वाह करते हो और किस प्रकार तुम्हारा स्वास्थ्य दिन प्रति दिन गिर रहा है, तो उन्होंने मुझसे कहा—आप उसे अपने साथ शिमले क्यों नहीं ले चलते ?"

और कविराज जी ने चेतन को बताया कि वे प्रति वर्ष ग्रीष्म-ऋतु में किसी न किसी पहाड़ पर जाया करते हैं। "स्वास्थ्य भी ठीक रहता है और काम भी अधिक होता है," उन्हों ने कहा "मैं समय को व्यर्थ नष्ट करने के पक्ष में नहीं। धन अपने में कुछ महत्व नहीं रखता—समय ही सब से बड़ा धन है। मैं सदैव पहाड़ पर जाकर काम करता हूँ और मेरी समस्त पुस्तकें किसी न किसी पहाड़ पर ही लिखी गई हैं।"

और उन्होंने बताया कि वे इस बार शिमले जा रहे हैं और चेतन चाहे तो उनके साथ चल सकता है।

"पर नौकरी......" चेतन ने कहना चाहा।

"जीवन होगा तो बीस नौकरियाँ मिल जायँगी।" वे उसकी बात काट कर बोले, 'तुम्हें यहाँ कितने रुपये मिलते हैं ?"

"चालिस !" चेतन ने कहा।

"मैं तुम्हें पचास दे दूंगा, खाना वहाँ किसी होटल से खा लिया करना और मेरे यहाँ पड़े रहना। और तुम क्या चाहते हो ?" फिर कुछ देर बाद उन्होंने कहा, "स्वास्थ्य से बढ़ कर और कोई चीज़ नहीं। दफ़्तर से तीन महीने की छुट्टी ले लेना। बाद में स्वास्थ्य अच्छा हुआ तो काम करना, नहीं तो सात आठ महीने मेरे लड़के को पढ़ा

देना। इस बीच में तुम्हें कोई न कोई नौकरी मिल जायगी।"

"पर छुट्टी......" चेतन ने कहना चाहा।

"इसकी चिन्ता तुम न करो, मैं तुम्हारे डाइरेक्टर को चिट्ठी लिख दूँगा।"

"और काम......"

इस पर कविराज जी ने एक मीठा सा ठहाका लगाया, "स्वास्थ्य बनाओ भाई! इससे बड़ा काम कौन सा है? वहाँ तुम स्वास्थ्य बनाने के लिए जा रहे हो। यही तुम्हारे लिए सब से बड़ा काम है, इतना तुम समझ लो।"

"पर मैं......"

हँसते हुए कविराज जी ने कहा, "भई, काम तुम कोई भी कर लेना। यह तो बाद की बात है। तुम्हारा पहला काम तो अपना स्वास्थ्य बनाना है।" और फिर हँसते हुए उन्होंने कहा, "मैं शीघ्र ही शिमले के लिए चल दूँगा। मकान और दुकान का वहाँ प्रबन्ध हो चुका है। तुम तैयारी कर लो! काम तो होता ही रहेगा।"

चेतन इतना प्रसन्न हुआ कि आते ही उसने अनन्त को एक पत्र लिखा जिसमें उसने अपने सम्पादक और उन जैसे अगनित लोगों की नीचता का उल्लेख करते हुए कविराज जी की सहृदयता, करुणार्द्रता और दयाशीलता पर छोटा-मोटा निबन्ध लिख डाला।

> "मेरी भेंट सचमुच ही एक महान-आत्मा से हुई है (उसने लिखा) कविराज रामदास का नाम तो तुमने सुना ही होगा। अरे वही जिन्होंने यौन-सम्बन्धी पुस्तकें लिखी हैं। आज तक हम उन्हें एक विज्ञापनबाज़ वैद्य ही समझते आये हैं। उनके सम्बन्ध में तरह तरह की बातें भी सुनते आये हैं।

पर मैं तो पहली ही भेंट में उनका भक्त हो गया। ऐसी सहृदय, महान, उदार आत्मा पाई है उन्होंने।"

न केवल यह, उसने कविराज की पत्नी से अपने अज्ञात परिचय का उल्लेख करते हुए उनकी प्रशंसा में एक 'क़सीदा' † लिख डाला और कविराज के भाग्य को सराहा जिन्हें उन ऐसी सदय और सहृदय पत्नी मिली थी।

रात को जब भाई साहब घर आये तो उसने बड़े उल्लास से उन्हें बताया कि वह शिमले जा रहा है। अपने दफ़्तर से छुट्टी ले लेगा, मज़े से शिमले की सैर करेगा, कहानियाँ लिखेगा, पहाड़ियों पर घूमेगा और खूब मोटा होकर आयेगा।

"पर तुम काम क्या करोगे ?" भाई साहब ने ससन्देह पूछा।

"काम अभी तो उन्होंने कुछ बताया नहीं। बस इतना कहा है कि सैर करो, खाओ-पियो और स्वास्थ्य बनाओ !"

भाई साहब के मन में कई शंकाएँ उठी थीं, पर चेतन के पास उन्हें निवारण करने का समय न था। वह जाकर अपने सारे मित्रों को यह समाचार देना चाहता था कि वह गर्मियों में शिमले जा रहा है। इस लिए उनकी शंकाओं का समाधान किये बिना ही वह घर से निकल गया था। समय पर दफ़्तर पहुँचने की भी उसने चिन्ता नहीं की।

—o—

---

† [illegible]

३७

जून का दूसरा सप्ताह अभी आरम्भ हुआ था, जब चेतन कविराज के क्लर्क जयदेव, उन के नौकर यादराम और उसकी पत्नी मन्नी के साथ शिमला पहुँचा। वह चला था तो उस का उल्लास अपने में समा न पाता था, पर शिमला पहुँचते पहुँचते उस का उत्साह बहुत मन्द पड़ गया था।

चेतन के लिए शिमला की सैर विलायत की सैर से कम महत्वपूर्ण न थी। आग उगलती गर्मी में तेरह तेरह घंटे काम करने वाले उप-सम्पादक के लिए शिमले के प्रवास की कल्पना स्वप्न से कुछ कम नहीं।

जिस दिन कविराज ने उसे साथ ले चलने का वचन दिया था, उसी दिन से वह शिमला की तैयारियों में लग गया था। विवाह में आई नर्म गर्म रज़ाई-दुलाई उस के पास थी ही। किसी प्रकार जोड़-तोड़ करके खादी के दो पायजामे और दो कमीज़ें उस ने सिलवा ली थीं। कोट का उसके पास सर्वथा अभाव था, इसलिए उसने अपने पिता का वही पुराना सरकारी ओवर कोट (जिसे भाई साहब काफ़ी समय तक पहन चुके थे) साथ ले लिया। उन दिनों यह नियम था कि तीन वर्ष बाद स्टेशन-मास्टर को नया कोट मिल जाता था और पुराना उसी का हो जाता था। यह कोट पिता के पास अपनी अवधि समाप्त करके भाई साहब के पास आ गया था और जब वे तीन चार वर्ष तक उसे पहन चुके तो उन्होंने बड़ी कृपा कर चेतन को दे दिया था। चेतन ने उसे

चेतन से कहा था, "शायद तुम्हें बहुत चक्कर आयँ, इस लिए तुम गाड़ी ही से जाओ।" और उन्हों ने जयदेव को आदेश दिया था कि वह चेतन के आराम का पूरा पूरा ध्यान रखे।

उन्हें सपत्नीक मोटर में सवार करा के जयदेव, यादराम और उस की पत्नी के साथ चेतन शिमला को जाने वाली डिबिया सी गाड़ी में तीलों की भाँति ठस कर जा बैठा था।

उस नन्हीं सी गाड़ी में बैठ कर शिमला की सैर का आनन्द लेने की आकांक्षा चेतन के हृदय में बचपन से दबी पड़ी थी। चौथी कक्षा में उन की पुस्तक में 'शिमला की सैर' शीर्षक से एक बड़ा मनोरंजक लेख था। जिस दिन उसने वह लेख पढ़ा था, वह घर आ कर घंटों बैठा कल्पना ही कल्पना में शिमले की सैर का आनन्द लेता रहा था। 'शिमले को जाओ तो बड़ा मजा आता है'— पुस्तक में लिखा था—'रेल छक छक करती धीरे धीरे चलती है, कभी इधर मुड़ती है, कभी उधर मुड़ती है, साँप की भाँति बल खाती हुई सुरंग में दाखिल हो जाती है। डिब्बे में अंधेरा छा जाता है। बत्तियाँ जल उठती हैं, लगता है जैसे रात हो गई हो.....' इस परिच्छेद में शिमले को जाने वाली छोटी सी पटरी और उस पर चलने वाली नन्हीं सी गाड़ी का एक चित्र भी दिया गया था, जिस में उस ७० मील लम्बी रेल की पटरी का एक छोटा सा टुकड़ा बल खाता हुआ दिखाया गया था। उस पर एक छोटी सी गाड़ी भी थी जो एक सुरंग से निकल रही थी। उस रात जब चेतन अपने बिस्तर पर लेटा तो बार बार उस के मस्तिष्क में वह चित्र घूमता रहा और बार बार वह अपने आपको उस छोटी सी गाड़ी की खिड़की में बैठे, 'शिमले की सैर' का आनन्द लेते पाता रहा।

कालका से शिमले को जाने वाली इस गाड़ी के डिब्बे में बैठते

हुए चेतन के मस्तिष्क में वह चित्र और उस से सम्बन्ध रखने वाला शिमला की सैर का वृत्तांत घूम गया। मन ही मन उस ने इस सैर का अवसर देने के लिए कविराज जी को धन्यवाद भी दिया।

किन्तु उस का यह उल्लास शीघ्र ही भंग हो गया और उस की कृतज्ञता का वेग भी कम हो गया। डिब्बा यात्रियों से इतना भर गया कि उस के लिए सिर तक हिलाना कठिन हो गया। एक दो बार उसने जयदेव की ओर करुणा भरी दृष्टि से देखा, किन्तु वह स्वयं इस प्रकार बैठा था कि उस के लिए गर्दन तक मोड़ना कठिन था।

'बड़ोग' तक पहुँचते पहुँचते एक ही जगह बैठे बैठे उस का शरीर अकड़ गया था। रात का जगा वह घुटने तक फैलाने को तरस गया। इतनी भीड़ थी कि उस का दम घुटने लगा और सिर में असह्य पीड़ा होने लगी। गाड़ी जब स्टेशन पर रुकी तो वह बड़ी कठिनाई से खिड़की से कूद कर बाहर निकल पाया।

बड़ोग के स्टेशन पर दुर्भाग्य से उसे कुछ भूख सी लगी और उस ने स्टेशन पर दो चार कचौरियाँ खा लीं। इस के बाद जाकर जब वह बैठा और गाड़ी सांप की भाँति बल खाने लगी और दायें बायें गिरिमालायें बनने मिटने लगीं तो उस का सर चकराने लगा। तभी उस के साथ बैठी एक स्त्री ने बाहर को मुँह करके कै की। चेतन का अपना जी मतला उठा......। इस के बाद उसे ,इतना ही याद है कि जब शिमले के स्टेशन पर जयदेव ने उसे कंधे से हिलाया तो वह घुटनों में सिर रखे अचेत सा पड़ा था।

'शिमले को जाओ तो बड़ा मज़ा आता है'—सड़क पर चलते-चलते उस लेख की याद आ जाने पर बेज़ारी से सिर हिला कर चेतन ने एक

'ऊँह' की ! उस के माथे में अब भी पीड़ा थी और शरीर, लगता था, जैसे पत्थरों से पिस गया है। यादराम के झकझोरने पर जब वह गिरता पड़ता स्टेशन के बाहर आया था तो उस ने जैसे पहली बार उस धूप को देखा था जो बाहर पेड़, पौधों, सड़कों और मकानों पर खिली हुई थी। निखरी धुली चमकती तेज़ - पर जलाने वाली नहीं, शरीर को हल्की हल्की गर्मी पहुँचाने वाली। किन्तु चेतन को कुछ भी अच्छा न लग रहा था — जयदेव ने सामान गिनवा कर कुलियों की पीठ पर लदवाया और खुश खुश उन के पीछे चल पड़ा था। यादराम भी खुश था और छोटे से घूँघट से मन्नी की मुस्कान भी दिखाई दे जाती थी — लेकिन चेतन को कोई भी चीज़ अच्छी न लग रही थी। घिसटता हुआ सा वह उन के पीछे चला जा रहा था। उसे लगता था जैसे वह किसी विचित्र वीरान नगर में पहुँच गया है जिस पर किन्हीं अनजाने आक्रमणकारियों ने अधिकार जमा रखा है। अपने साथ चले आने वाले कुली उसे उस नगर के ऐसे वासी लग रहे थे जो उन विजेताओं के दास बन गये थे और कठिन श्रम का दंड भोग रहे थे।

उन के शरीर पर मैले कुचैले चीथड़े लिपटे हुए थे जो मैल और पसीने से कपड़े के बदले कीचड़ ही के बने दिखाई देते थे। इतना इतना भारी बोझ उठा रखा था उन्हों ने कि चेतन आश्चर्य-चकित सा उन्हें देख रहा था। देर तक उस की दृष्टि अपने साथ साथ आने वाले कुली पर लगी रही। उस के पाँव में धूल से भरे भारी चप्पल थे, टांगें घुटनों तक मैल से सनी हुई थीं, बाहों पर मछलियाँ उभर आई थीं, पीठ पर सात ट्रंक एक साथ उठाये, लठिया के सहारे वह चला जा रहा था।

तभी एक रिक्शा छनछनाती हुई उस के पास से गुज़र गई। चार

वर्दीपोश कुली उसे भगाये लिये जा रहे थे और एक मोटा, गंजा अँग्रेज़ मज़े से उस में बैठा समाचार-पत्र पढ़ रहा था। घोड़ों और बैलों के स्थान पर पुरुषों को जुते हुए चेतन ने पहली बार ही देखा था। बाद में उसे ज्ञात हुआ कि शिमले की माल पर मोटर, इक्का, तांगा कुछ भी नहीं चल सकता। शिमले के प्रभुओं को आदमी की सवारी अधिक पसन्द है। चेतन ने पीछे मुड़ कर देखा। धूप से उस अँग्रेज़ का गंजा सिर चमक रहा था और कुलियों के पाँव नंगे थे चेतन को लगा जैसे संसार का समस्त सुख वैभव चन्द गंजे आदमियों के हिस्से में आया है। शेष सब तो उन की सवारी को खींचने वाले पशु हैं।

लोअर बाज़ार के इस सिरे पर कविराज जी ने अपने लिए औषधालय किराये पर ले रखा था। उस पर उन का बोर्ड उनके आने से पहले लग चुका था। कुछ सामान वहीं उतरवा दिया गया और यादराम को वहाँ ठहरने का आदेश देकर वे आगे बढ़े। पूछने पर चेतन को पता चला कि उन को कल्लू भट्टे जाना है, क्योंकि निवास के लिए कविराज जी ने मकान वहीं लिया है।

कुछ दूर चल कर वे बायीं ओर मुड़े। सामने एक सुरंग थी जो माल के नीचे नीचे ईदगाह को जाती थी। उस में प्रवेश करते ही पहली बार चेतन को अनुभव हुआ कि वह पहाड़ पर पहुँच गया है। ठंडी भीगी हवा का एक झोंका आया और उसे लगा जैसे मन का सब ताप मिट गया हो। यद्यपि वर्षा ऋतु अभी आरम्भ न हुई थी तो भी पहाड़ में से रिस रिस कर पानी सुरंग की गोलाकार दीवार को भिगो रहा था और अणु परमाणुओं सी नन्हीं नन्हीं बूंदें हवा में उड़ रही थीं। बिजली के नन्हें नन्हें बल्ब सुरंग में धूमिल प्रकाश की सृष्टि कर रहे थे और सुरंग के दूसरे दरवाज़े के अर्ध गोलाकार प्रकाश में से आते हुए मनुष्य बड़े भले प्रतीत होते थे।

लक्कड़ भट्टा ईदगाह के नीचे बीस तीस घरों की एक छोटी सी बस्ती है, जिसके निर्माण में ईंट पत्थरों के स्थान पर लकड़ी ही से अधिक काम लिया गया है—लकड़ी की सीढ़ियाँ, लकड़ी के फ़र्श और लकड़ी की छतें।

कविराज ने मकान की दूसरी मंज़िल किराये पर ली थी। सीढ़ियाँ चढ़ कर कुली ने सामान रख दिया। चेतन इस बीच में बिलकुल थक गया था। दीवार से पीठ लगा कर वह अपने बँधे बिस्तर पर बैठ गया! लकड़ी के फर्श पर उसने टाँगे पसार लीं और चुपचाप दूसरों को काम करते देखने लगा।

—०—

३८

शिमले के अपने इस निवास में, जहाँ दूसरी कई बातों के सम्बन्ध में चेतन की धारणाएँ बदलीं, वहाँ कविराज की महानता और कविराज-पत्नी की सहृदयता के सम्बन्ध में भी चेतन के विचार बदल गये।

इन तीन महीनों में उसने 'बीबी जी' की कुछ झाँकियाँ ही देखीं और उसे मालूम हो गया कि वे और चाहे जो हों पर सहृदय और उदार कदापि नहीं।

बीबी जी को उसने पहली बार लाहौर और फिर कालका के प्लेटफ़ार्म पर देखा था। गाड़ी रात के समय लाहौर से चली और प्रातः

काल कालका पहुँची थी, इस लिए दोनों ही बार वह उन्हें भली भाँति न देख पाया था। फिर उसे कुछ सकोच सा भी था। लेकिन उस डिबिया सी गाड़ी में छः घंटे बन्द रहने के बाद शिमले में कविराज जी के निवासस्थान पर पहुँच कर, जब वह हताश सा अपने बँधे हुए बिस्तर पर बैठ गया, तो उसने जैसे पहली बार आँख भर कर उन्हें देखा।

वे कुलियों से सामान उतरवाकर उसे ठीक जगह रखने की व्यवस्था कर रही थीं।—पतला छरहरा शरीर, बत्तीस पैंतीस वर्ष की आयु, तीखे नक्श, तिकोन से चेहरे पर सजती हुई लम्बी नाक, भरे भरे गाल और गोरा रंग। चश्मा उनके मुख पर सजता था। किन्तु ढूंढने पर भी चेतन को वह स्निग्धता और सौहार्द वहाँ दिखाई न दिया जो कविराज जी की बातें सुन कर, उसकी कल्पना ने, उनकी पत्नी की आकृति पर बना लिया था। उनका मस्तक चौड़ा था, किन्तु उस पर तेवर चढ़े हुए थे, भ्रू-भंग थे और ओठ जैसे भिंचे से थे। पहले उसने समझा कि रास्ते की थकन और परेशानी ने उनके मस्तक पर ये लकीरें बना दी हैं, पर बाद के तीन महीनों में उसने सदैव उन्हें वहाँ पाया और उनके ओठ सदैव भिंचे रहे। चेतन की बड़ी इच्छा रही कि वह उन ओठों पर मुस्कान देखे, पर शिमले के अपने उस प्रवास में उसे वह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। तब उसने जान लिया कि वह सब मुस्कान तो कविराज जी के कथन में थी, उनकी पत्नी के ओठों पर नहीं। रही सहृदयता, तो ज्यों ज्यों दिन बीतते गये चेतन को पता चलता गया कि वह सहृदयता भी कविराज के शब्दों ही में थी, उनकी पत्नी के हृदय में नहीं और न उनके अपने ही दिल में। उसे यह भी ज्ञात हो गया कि अपने से छोटों के प्रति उनकी पत्नी के हृदय में दया के स्थान पर सदैव एक तीव्र घृणा विराजमान रहती है, जिसे कविराज अपनी

वाणी की मिठास में छिपाये रखते हैं।

शिमला पहुँचने के पहले दिन तो उसने उन्हीं के साथ खाना खाया और वहीं सोया भी, पर सुबह ही कविराज जी ने उसका बिस्तर दवाखाने पहुँचा दिया। "तुम्हारा मन यहाँ ऊब जायेगा," उन्होंने कहा, "यह जगह बाज़ार से दूर है, फिर कुछ दिनों में ही बरसात आरम्भ हो जायगी, प्रतिदिन बाज़ार जाने में तुम्हें कष्ट होगा।" और उन्होंने उसे यह भी सुझा दिया कि शिमले में हर तरह के होटल हैं, जहाँ ७ रुपये से ५० रुपये मासिक तक पर खाना मिल सकता है।

औषधालय में सारी जगह का निरीक्षण करके उन्होंने उसके लिए एक कोना भी नियत कर दिया, जहाँ उसका बिस्तर रात को बिछाया और दिन को उठाया जा सके। इस ओर से निश्चिन्त होकर, मूँछों में हँसते हुए, उन्हों ने कहा, "शिमले में तो आधे निवासी फ़र्श ही पर सोते हैं, चारपाइयाँ वहाँ बड़ी कठिनाई से मिलती हैं।" फिर उन्हों ने अपनी मिसाल दी थी कि वे जब पहाड़ जाते हैं, सदैव धरती ही पर सोते हैं। धरती पर सोने में उन्हें बड़ा आनन्द मिलता है। स्वास्थ्य के लिए भी धरती पर सोना बड़ा हितकर है। इस से आदमी की शक्ति बढ़ती है और स्वावलम्बन की भावना पैदा होती है। फिर चेतन के ज्ञान में वृद्धि करते हुए उन्हों ने यह भी बताया कि संसार में ७५ प्रतिशत महान व्यक्ति उन्हीं लोगों में से उठे हैं जो धरती पर सोने को बुरा नहीं समझते।

-

किन्तु एक सप्ताह बाद ही यह मत भूल कर वे उसे फिर घर ले गये और उन्होंने उसे एक चारपाई भी दे दी।

कदाचित उन्होंने यह अनुभव किया कि जयदेव और यादराम की संगति तथा मितव्ययी बाज़ार का सामीप्य होने के कारण चेतन संतोषजनक

रूप से काम नहीं कर पा रहा है । किसी औषधालय में रोगियों के बैठने का कमरा किसी लेखक के लिए उपयुक्त स्थान है भी तो नहीं। उसे दवाखाने गये एक सप्ताह हो गया था और उस ने पुस्तक की एक पंक्ति भी न लिखी थी ।

"यहाँ तुम्हें धरती पर सोना पड़ता है", उन्हों ने एक दिन औषधालय में उस से कहा, "रात को बिस्तर बिछाना और सुबह उठाना एक मुसीबत है। तुम ठहरे लेखक ! तुम्हें तो चाहिए कि बिस्तर बिछा रहे, पुस्तकें तुम्हारे आस पास बिखरी रहें, सोते जागते, उठते बैठते, पढ़ने लिखने की पूरी स्वतन्त्रता तुम्हें प्राप्त हो। घर में एक कमरा तुम्हारे लिए पृथक कर दिया जायगा। चारपाई का मैं प्रबन्ध कर दूंगा। एकांत होगा। तुम्हें अपनी पुस्तकें, अपने काग़ज़, अपनी चीज़ें रखने की पूरी सुविधा होगी। तुम अपनी इच्छा के अनुसार उठ बैठ, लेट सो सकोगे और फिर यहाँ नहाने के लिए भी कोई जगह नहीं । वहाँ सब प्रकार की सुविधा होगी।"

रल्दू भट्टे के मकान में कविराज जी ने उसे सीढ़ियों के पास वाला कमरा दे दिया। इस कमरे का एक दरवाज़ा अन्दर की ओर और दूसरा बाहर की ओर सीढ़ियों में खुलता था। उसी ओर एक खिड़की भी थी। एक छोटी सी लकड़ी की अंगीठी भी कोने में बनी हुई थी। चेतन ने उस पर साबुन, तेल और शेविंग का सामान क़रीने से रख दिया। जो चारपाई उन्होंने उसे दी, उसे चेतन ने खिड़की के पास बिछा लिया। कमरा कुछ अंधेरा था, इस लिए उस ने खिड़की के प्रकाश में बैठ कर काम करना उपयुक्त समझा। पुस्तकें रखने की समस्या कठिन थी । (क्योंकि कमरे में कोई अलमारी न थी) सोच सोच कर चेतन बाज़ार से एक चटाई ले आया और उसे सामने की दीवार के साथ बिछा कर उस ने अपनी सब पुस्तकें उस पर चुन दीं।

एक तरह से यह कमरा उसे औषधालय के वेटिंग-रूम से बहुत अच्छा लगा।

दूसरे दिन कविराज जी औषधालय को जाने से पहले उस के कमरे में आये। मूंछों में मुस्कराते हुए उन्हों ने कमरे की सजावट पर एक आलोचनात्मक दृष्टि डाली, उसकी प्रशंसा की और बोले, "यह कमरा सिर्फ़ तुम्हारा है, तुम इस में पढ़ो लिखो, सोओ जागो, मालिश अथवा व्यायाम करो, तुम्हें किसी प्रकार की रोक नहीं। अन्य किसी प्रकार का कष्ट यदि हो तो मुझसे कह देना।" फिर रुक कर उन्हों ने पूछा, "रात को दूध आदि तो नहीं पीते तुम ?"

"मैं रात को डेढ़ पाव दूध पीता हूँ।"

"तुम्हें कम से कम आध सेर पीना चाहिए।"

"डेढ़ पाव पीने का स्वभाव भी मैंने बड़ी मुश्किल से डाला है।"

इस पर कविराज हँसे, फिर उन्हों ने दूध के गुणों पर एक छोटा सा भाषण दिया और कहा, "यादराम की पत्नी तुम्हारे लिए दूध अंगीठी पर रख दिया करेगी। तुम सोते समय पी लिया करना।" यह चेतावनी उन्हों ने उसे दे दी कि वह दस बजे तक घर पहुंच जाया करे, क्योंकि दस बजे सब सो जाते हैं और इसके बाद यदि कोई आये तो बीबी जी बुरा मानती हैं।

कविराज यह कह कर मूंछों में मुस्कराते हुए चले गये, पर चेतन को शीघ्र ही पता चल गया कि बीबी जी केवल दस बजे के बाद आने का ही बुरा नहीं मानतीं और भी बीसियों बातों का बुरा मानती हैं।

चेतन के वहाँ फिर लौट आने ही को उन्हों ने ऐसी टेढ़ी दृष्टि से देखा कि दूसरी सुबह शौचादि के लिए उसे अन्दर के शौचालय में जाने का साहस नहीं हुआ। [illegible] ने उसे बता दिया कि नीचे घाटी में

शौचालय बने हुए हैं और वह निश्चित होकर वहाँ निवृत्त हो सकता है।

ये शौचालय रुल्दू भट्टे से काफ़ी नीचे खड्ड में बने हुए थे। बनवाने वाले ने उन्हें नौकरों के लिए बनवाया था। टीन की एक चारदीवारी थी और ऊपर छत के नाम पर टीन की चादर तक न थी। वर्षा के दिनों में वहाँ बैठना बड़ा कष्ट-साध्य था। पर चेतन मज़े से पानी का लोटा लेकर वहीं चला गया। नहाने के लिए भी उसने अन्दर स्नानगृह में जाने का प्रस्ताव नहीं किया। चुपचाप लोटा और बाल्टी लेकर वह रुल्दू भट्टे के नल पर चला गया जो ऊपर माल को जाने वाले मार्ग के एक किनारे बना हुआ था।

उसके आराम का इतना ध्यान रखने वाले कविराज जी को शायद इसमें कोई विषमता नहीं दिखाई दी। वह नहा रहा था जब वे औषधालय को जाते हुए वहाँ से गुज़रे। उसे सड़क के किनारे नहाते देखकर उन्होंने पूछा "अच्छा! यहाँ नहा रहे हो?,'

"मुझे खुले में स्नान करना भाता है," चेतन ने अपनी हीनता को गर्व का विषय बना कर कहा।

"तुम बड़े साहसी हो?" कविराज हँस कर बोले और फिर अपने रास्ते चले गये।

और जब बरसात की हवाएँ अपने परिपार्श्व काले कजरारे मेघों को लिये हुए आईं और दिन रात पानी बरसने लगा, तब भी चेतन साहसी बना रहा! उसी बेछत की, नौकरों वाली, टट्टी में शौचादि के लिए जाता रहा और वहीं सड़क के किनारे नल पर नहाता रहा।

कविराज प्रति दिन गर्म पानी से स्नान करके, सर्दी होने के कारण ओवर कोट पहने, हाथों पर दस्ताने चढ़ाये, छड़ी हाथ में लिये रोज़ उसके पास से निकलते, कई बार अपने मित्रों में उसके साहस का बखान भी किया करते, किन्तु अपने निजी स्नानगृह के समीप उन्होंने

एक तरह से यह कमरा उसे औषधालय के वेटिंग-रूम से बहुत अच्छा लगा।

दूसरे दिन कविराज जी औषधालय को जाने से पहले उस के कमरे में आये। मूंछों में मुस्कराते हुए उन्हों ने कमरे की सजावट पर एक आलोचनात्मक दृष्टि डाली, उसकी प्रशंसा की और बोले, "यह कमरा सिर्फ़ तुम्हारा है, तुम इस में पढ़ो लिखो, सोओ जागो, मालिश अथवा व्यायाम करो, तुम्हें किसी प्रकार की रोक नहीं। अन्य किसी प्रकार का कष्ट यदि हो तो मुझसे कह देना।" फिर रुक कर उन्हों ने पूछा, "रात को दूध आदि तो नहीं पीते तुम ?"

"मैं रात को डेढ़ पाव दूध पीता हूँ।"

"तुम्हें कम से कम आध सेर पीना चाहिए।"

"डेढ़ पाव पीने का स्वभाव भी मैंने बड़ी मुश्किल से डाला है।"

इस पर कविराज हँसे, फिर उन्हों ने दूध के गुणों पर एक छोटा सा भाषण दिया और कहा, "यादराम की पत्नी तुम्हारे लिए दूध अँगीठी पर रख दिया करेगी। तुम सोते समय पी लिया करना।" यह चेतावनी उन्हों ने उसे दे दी कि वह दस बजे तक घर पहुँच जाया करे, क्योंकि दस बजे सब सो जाते हैं और इसके बाद यदि कोई आये तो भाभी जी बुरा मानती हैं।

कविराज यह कह कर मूंछों में मुस्कराते हुए चले गये, पर चेतन को शीघ्र ही पता चल गया कि भाभी जी केवल दस बजे के बाद आने का ही बुरा नहीं मानतीं और भी कितनी बातों का बुरा मानती हैं।

चेतन के पहले दिन लौट आने ही को उन्हों ने ऐसी टेढ़ी दृष्टि से देखा कि दूसरी सुबह शौचादि के लिए उसे अन्दर के शौचालय में जाने का साहस नहीं हुआ। मुन्नी ने उसे बता दिया कि नीचे घाटी में

शौचालय बने हुए हैं और वह निश्चित होकर वहाँ निवृत्त हो सकता है।

ये शौचालय रुल्दू भट्टे से काफ़ी नीचे खड्ड में बने हुए थे। बनवाने वाले ने उन्हें नौकरों के लिए बनवाया था। टीन की एक चारदीवारी थी और ऊपर छत के नाम पर टीन की चादर तक न थी। वर्षा के दिनों में वहाँ बैठना बड़ा कष्ट-साध्य था। पर चेतन मन्नी से पानी का लोटा लेकर वहीं चला गया। नहाने के लिए भी उसने अन्दर स्नानगृह में जाने का प्रस्ताव नहीं किया। चुपचाप लोटा और बाल्टी लेकर वह रुल्दू भट्टे के नल पर चला गया जो ऊपर माल को जाने वाले मार्ग के एक किनारे बना हुआ था।

उसके आराम का इतना ध्यान रखने वाले कविराज जी को शायद इसमें कोई विषमता नहीं दिखाई दी। वह नहा रहा था जब वे औषधालय को जाते हुए वहाँ से गुज़रे। उसे सड़क के किनारे नहाते देखकर उन्होंने पूछा "अच्छा! यहाँ नहा रहे हो ?,'

"मुझे खुले में स्नान करना भाता है," चेतन ने अपनी हीनता को गर्व का विषय बना कर कहा।

"तुम बड़े साहसी हो ?" कविराज हँस कर बोले और फिर अपने रास्ते चले गये।

और जब बरसात की हवाएँ अपने परिपार्श्व काले कजरारे मेघों को लिये हुए आईं और दिन रात पानी बरसने लगा, तब भी चेतन साहसी बना रहा! उसी बेछत की, नौकरों वाली, टट्टी में शौचादि के लिए जाता रहा और वहीं सड़क के किनारे नल पर नहाता रहा।

कविराज प्रति दिन गर्म पानी से स्नान करके, सर्दी होने के कारण ओवर कोट पहने, हाथों पर दस्ताने चढ़ाये, छड़ी हाथ में लिये रोज़ उसके पास से निकलते, कई बार अपने मित्रों में उसके साहस का बखान भी किया करते, किन्तु अपने निजी स्नानगृह के समीप उन्होंने

या यों कह लीजिए कि उनकी सहृदय पत्नी ने उसे एक दिन के लिए भी फटकने न दिया। यह और बात है कि एक दिन उनके पड़ोसी ने दयाभाव से चेतन को अपने स्नानगृह में नहाने की आज्ञा दे दी और चेतन ने शीत में ठिठुरते ठिठुरते खुले में नल पर नहाने के कष्ट से मुक्ति पाई।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, उसे पता चलता गया कि वह तो उसी प्रकार कविराज का नौकर है जिस प्रकार जयदेव अथवा यादराम; कि कविराज दूसरे बीसियों शोषकों की भाँति एक शोषक हैं; कि वे उसे शिमले केवल यह पुस्तक लिखवाने के विचार से लाये हैं। उसे इस बात का भी पता चल गया कि पहले भी एक दो कलाकारों का स्वास्थ्य वे इसी प्रकार सुधार चुके हैं और इस पुण्य का फल वे पुस्तकें हैं जो सहस्रों की संख्या में उनके नाम से बिक रही हैं।

शिमला चलने से पहले कविराज जी ने बड़ी चतुराई से उसे अपने लिए पुस्तक लिखने को राज़ी कर लिया था। हुआ यों कि जब कविराज जी ने उस से कहा कि वह उनके साथ चले, आराम करे, स्वास्थ्य बनाये, वे उसे खर्च पानी के लिए पचास रुपये मासिक भी देंगे तो चेतन ने कविराज जी से कहा कि वे उसे कोई न कोई काम अवश्य बता दें। उसके स्वाभिमान को यह स्वीकार नहीं कि वह उन के सिर पर बोझ बन कर जाय।

उस के मन में स्वयं ही यह बात उत्पन्न हुई थी अथवा कविराज के जीवन की घटनाएँ सुन कर उसे अपने स्वाभिमान का ध्यान हो आया था, इसका ठीक ठीक निर्णय तो नहीं किया जा सकता, पर शिमला ले जाने के प्रस्ताव को सुन कर और यह जान कर कि उसे वहां काम बिल्कुल न करना होगा, उसने कृतज्ञता का भाव प्रकट किया था तो कविराज जी ने बातों बातों में अपने जीवन के आरम्भिक संघर्ष की

एक घटना उसे सुनाई थी—"मेरे एक मित्र ने मेरी आर्थिक सहायता की थी" उन्हों ने कहा, "पर उस समय मैं उन के रुपये वापस न दे सकता था, इस लिए मैं ने साल भर तक किसी प्रकार का शुल्क लिये बिना उन के बच्चों को पढ़ाया।" वे अपनी रौ में इसी प्रकार की कई घटनाएँ सुना गये जब अपने सहायकों से जो कुछ उन्हों ने पाया, उस से कहीं अधिक उन्हें दिया। चेतन यद्यपि पहले भी इस बात पर जोर देता था कि उसे काम बता दिया जाय, पर यह सब सुन कर उस ने बिना काम जाने, उन के साथ जाने से इनकार कर दिया था।

तब कविराज जी ने, जैसे विवश हो कर, उसे बताया था कि उन का विचार बच्चों के जन्म-मरन और लालन-पालन के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखने का है। उन्हों ने उसे अमरीका की एक पत्रिका भी दिखाई थी और कहा था कि वह पंजाब पब्लिक-लाइब्रेरी में जा कर देख ले। यदि इस विषय पर कुछ पुस्तकें मिल जायँ तो वे तत्काल लाइब्रेरी के सदस्य बन जायँगे। चेतन उन की बात समझ गया था और उन की सहृदयता का बदला देने के लिए उस ने मन ही मन इस विषय पर उन्हें एक बड़ी, अच्छी पुस्तक लिख देने का निश्चय भी कर लिया था।

बातों बातों में कविराज जी ने उसे समझा दिया था कि पुस्तक उन के नाम से छपेगी। उस में बच्चों की समस्त व्याधियों के सम्बन्ध में प्रारम्भिक ज्ञान संकलित होगा और पाठकों को परामर्श दिया जायगा कि पेचीदगी हो तो तत्काल किसी प्रसिद्ध वैद्य या डाक्टर से परामर्श किया जाय।

चेतन पंजाब पब्लिक लाइब्रेरी से आठ पुस्तकें चुन लाया था। उन सब को पढ़कर उसने पुस्तक के पहले परिच्छेदों का खाका तैयार किया था। पहला अध्याय वह लिख चुका था। उस में उस ने प्राक्कथन के

या यों कह लीजिए कि उनकी सहृदय पत्नी ने उसे एक दिन के लिए भी फटकने न दिया। यह और बात है कि एक दिन उनके पड़ोसी ने दयाभाव से चेतन को अपने स्नानगृह में नहाने की आज्ञा दे दी और चेतन ने शीत में ठिठुरते ठिठुरते खुले में नल पर नहाने के कष्ट से मुक्ति पाई।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, उसे पता चलता गया कि वह तो उसी प्रकार कविराज का नौकर है जिस प्रकार जयदेव अथवा यादराम; कि कविराज दूसरे बीसियों शोषकों की भाँति एक शोषक हैं; कि वे उसे शिमले केवल यह पुस्तक लिखवाने के विचार से लाये हैं। उसे इस बात का भी पता चल गया कि पहले भी एक दो कलाकारों का स्वास्थ्य वे इसी प्रकार सुधार चुके हैं और इस पुण्य का फल वे पुस्तकें हैं जो सहस्रों की संख्या में उनके नाम से बिक रही हैं।

शिमला चलने से पहले कविराज जी ने बड़ी चतुराई से उसे अपने लिए पुस्तक लिखने को राज़ी कर लिया था। हुआ यों कि जब कविराज जी ने उस से कहा कि वह उनके साथ चले, आराम करे, स्वास्थ्य बनाये, वे उसे खर्च पानी के लिए पचास रुपये मासिक भी देंगे तो चेतन ने कविराज जी से कहा कि वे उसे कोई न कोई काम अवश्य बता दें। उसके स्वाभिमान को यह स्वीकार नहीं कि वह उन के सिर पर बोझ बन कर जाय।

उस के मन में स्वयं ही यह बात उत्पन्न हुई थी अथवा कविराज के जीवन की घटनाएँ सुन कर उसे अपने स्वाभिमान का ध्यान हो आया था, इसका ठीक ठीक निश्चय तो नहीं किया जा सकता, पर शिमला ले जाने के प्रस्ताव को सुन कर और यह जान कर कि उसे वहाँ काम बिल्कुल न करना होगा, उसने कृतज्ञता का भाव प्रकट किया था तो कविराज जी ने बातों बातों में अपने जीवन के आरम्भिक संघर्ष की

गई। वह खाना खाकर ऊपर से आ रहा था जब कविराज भोजन और आराम के उपरान्त औषधालय को जाते हुए उसे मार्ग में मिल गये और उन्होंने हँसते हुए पंजाबी में कहा—"घोड़िया, तू कम्म कुक्ष ज्यादह नहीं कर रिहा।"*

यद्यपि 'घोड़ा' उन के प्यार का शब्द था, पर रात को जब चेतन लेटा तो उसे नींद न आई। प्रत्येक घटना अपने यथार्थ रूप में उस के सामने आने लगी। उस ने अनुभव किया—वह, जयदेव, यादराम सब घोड़े ही तो हैं। कविराज की ख्याति की गाड़ी में जुते हुए हैं। यह अनुभूति जैसे एक तीर की भाँति उस के हृदय को भेदती हुई चली गई। ये इतने क्लर्क, मज़दूर, किसान—ये सब घोड़े हैं, विभिन्न गाड़ियों में जुते हुए घोड़े! अपने आराम और सुख की परवाह किये बिना, पसीने से तर, थकन से चूर, दिन रात काम किये जाते हैं। इस लिए कि उन के प्रभु सफलता की गाड़ियों में बैठे अपने ध्येय तक पहुँच जायँ। बदले में उन को मिलता क्या है? रूखा-सूखा दाना पानी और [illegible]! उसे पचास रुपये मिल रहे हैं। शिमले जैसे महँगे नगर में पचास रुपये! 'घोड़ा'—एक तीव्र व्यंग्य तथा पीड़ा से वह मन ही मन हँसा—'तो वह कविराज की सफलता और ख्याति की गाड़ी में जुता हुआ केवल एक घोड़ा है—उसने सोचा—उसे बड़ी चतुराई से उस में जोता गया है। वह जो पुस्तक लिखेगा, उस पर कविराज का नाम होगा। उन के बाद उन के पुत्र, पौत्र और चाहें तो पर-पौत्र तक उस से लाभ उठायेंगे और वह स्वयं क्या पायगा! ५० रू० प्रतिमास के हिसाब से ३ महीनों के केवल डेढ़ सौ रुपये, जिन का अधिकांश वह शिमले ही में खर्च कर जायगा। फिर जिस प्रकार एक घोड़े के अयोग्य होने पर अथवा उस की

* अरे घोड़े, तू कुछ ज्यादा काम नहीं करता।

रूप में अन्य देशों की अपेक्षा भारत में बच्चों के स्वास्थ्य, उन की असामयिक मृत्यु, उन का मरे हुए उत्पन्न होना, जन्म लेने के बाद मर जाना या जीना तो सदा रोगी रहना और ऐसी ही दूसरी बातों का उल्लेख किया था। यौन-सम्बन्ध में माता-पिता की अज्ञता पर भी उस ने प्रकाश डाला था। लिखने की शैली यद्यपि वह उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'विवाह के भेद' जैसी सस्ती, घटिया और भावुकतापूर्ण न रख सका था तो भी उद्देश्य उस का भी वही था जो 'विवाह के भेद' का। पुस्तक पढ़ते ही बच्चों के माता-पिता ज़रा सी बीमारी पर उन के दवाखाने भागे आयें अथवा 'रोग-परीक्षा-पत्र' भर के डाक से उन की औषधियाँ मँगायें। वह उस प्रवंचना के विरुद्ध था, पर कविराज ऐसा चाहते थे। इसी उद्देश्य से उन्हों ने उसे 'विवाह के भेद' पढ़ने को दी थी। उसी शैली को उस ने अपनाया था।

प्रति दिन दुकान को जाने से पहले हँस कर वे उसके काम का ब्योरा ले लेते—पूछ लेते कि उसने कौन सा नया अध्याय लिखा है, या कौन सा नया अध्याय लिख रहा है, या फिर आगामी अध्याय में वह क्या लिखना चाहता है? चेतन ने कुछ लिखा होता तो पास बैठ कर उसे सुनते। न लिखा होता तो पूछते कि उसकी तबीयत तो ठीक है, [illegible] और हँस कर कहते, "कोई बात नहीं, कोई बात नहीं, आज के दिन आराम कर लो, कल दुगुना लिख लेना।" और इसी प्रकार मूँछों में हँसते हुए चले जाते।

एक बार उन्हें कुछ ऐसा लगा कि चेतन उनके अनुमान के अनुसार पूरा काम नहीं कर रहा। तब हँसी हँसी में उन्होंने उसे जता भी दिया।

[illegible] आया करता था और [illegible] में [illegible]। उस दिन उसे देर हो

गई। वह खाना खाकर ऊपर से आ रहा था जब कविराज भोजन और आराम के उपरान्त औषधालय को जाते हुए उसे मार्ग में मिल गये और उन्होंने हँसते हुए पंजाबी में कहा—"घोड़िया, तू कम्म कुफ ज्यादह नहीं कर रिहा।"*

यद्यपि 'घोड़ा' उन के प्यार का शब्द था, पर रात को जब चेतन लेटा तो उसे नींद न आई। प्रत्येक घटना अपने यथार्थ रूप में उस के सामने आने लगी। उस ने अनुभव किया—वह, जयदेव, यादराम सब घोड़े ही तो हैं। कविराज की ख्याति की गाड़ी में जुते हुए हैं। यह अनुभूति जैसे एक तीर की भाँति उस के हृदय को भेदती हुई चली गई। ये इतने क्लर्क, मज़दूर, किसान—ये सब घोड़े हैं, विभिन्न गाड़ियों में जुते हुए घोड़े! अपने आराम और सुख की परवाह किये बिना, पसीने से तर, थकन से चूर, दिन रात काम किये जाते हैं। इस लिए कि उन के प्रभु सफलता की गाड़ियों में बैठे अपने ध्येय तक पहुँच जायँ। बदले में उन को मिलता क्या है? रूखा-सूखा दाना पानी और [illegible]! उसे पचास रुपये मिल रहे हैं। शिमले जैसे महँगे नगर में पचास रुपये! 'घोड़ा'—एक तीव्र व्यंग्य तथा पीड़ा से वह मन ही मन हँसा—'तो वह कविराज की सफलता और ख्याति की गाड़ी में जुता हुआ केवल एक घोड़ा है—उसने सोचा – उसे बड़ी चतुराई से उस में जोता गया है। वह जो पुस्तक लिखेगा, उस पर कविराज का नाम होगा। उन के बाद उन के पुत्र, पौत्र और चाहें तो पर-पौत्र तक उस से लाभ उठायेंगे और वह स्वयं क्या पायगा? ५० रू० प्रतिमास के हिसाब से ३ महीनों के केवल डेढ़ सौ रुपये, जिन का अधिकांश वह शिमले ही में खर्च कर जायगा। फिर जिस प्रकार एक घोड़े के अयोग्य होने पर अथवा उस की

---

* अरे घोड़े, तू कुछ ज्यादा काम नही करता।

रूप में अन्य देशों की अपेक्षा भारत में बच्चों के स्वास्थ्य, उन की असामयिक मृत्यु, उन का मरे हुए उत्पन्न होना, जन्म लेने के बाद मर जाना या जीना तो सदा रोगी रहना और ऐसी ही दूसरी बातों का उल्लेख किया था। यौन-सम्बन्ध में माता-पिता की अज्ञता पर भी उस ने प्रकाश डाला था। लिखने की शैली यद्यपि वह उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'विवाह के भेद' जैसी सस्ती, घटिया और भावुकतापूर्ण न रख सका था तो भी उद्देश्य उस का भी वही था जो 'विवाह के भेद' का। पुस्तक पढ़ते ही बच्चों के माता-पिता ज़रा सी बीमारी पर उन के दवाखाने भागे आवें अथवा 'रोग-परीक्षा-पत्र' भर के डाक से उन की औषधियाँ मँगायें। वह इस प्रवंचना के विरुद्ध था, पर कविराज ऐसा चाहते थे। इसी उद्देश्य से उन्हों ने उसे 'विवाह के भेद' पढ़ने को दी थी। उसी शैली को उस ने अपनाया था।

प्रति दिन दुकान को जाने से पहले देख कर वे उसके काम का ब्योरा ले लेते—पूछ लेते कि उसने कौन सा नया अध्याय लिखा है, वह कौन सा नया अध्याय लिख रहा है, या फिर आगामी अध्याय में वह क्या लिखना चाहता है? चेतन ने कुछ लिखा होता तो पास बैठ कर उसे सुनते। न लिखा होता तो पूछते कि उसकी तबीयत तो ठीक है, [illegible] कोई काम नहीं, कोई [illegible] नहीं, [illegible] दिन आराम कर लो, फिर कुछ लिख लेना।" और [illegible] मूँछों में [illegible] हुए चले जाते।

एक बार उन्हें कुछ ऐसा लगा कि चेतन उनके अनुमान के अनुसार काम नहीं कर रहा। तब [illegible] में उन्होंने उसे [illegible] दिया।

[illegible] की [illegible] बाज़ार [illegible] था और [illegible] था। उस दिन उन्हें देर हो

गई। वह खाना खाकर ऊपर से आ रहा था जब कविराज भोजन और आराम के उपरान्त औषधालय को जाते हुए उसे मार्ग में मिल गये और उन्होंने हँसते हुए पंजाबी में कहा—"घोड़िया, तू कम्म कुफ ज्यादह नहीं कर रिहा।"*

यद्यपि 'घोड़ा' उन के प्यार का शब्द था, पर रात को जब चेतन लेटा तो उसे नींद न आई। प्रत्येक घटना अपने यथार्थ रूप में उस के सामने आने लगी। उस ने अनुभव किया—वह, जयदेव, यादराम सब घोड़े ही तो हैं। कविराज की ख्याति की गाड़ी में जुते हुए हैं। यह अनुभूति जैसे एक तीर की भाँति उस के हृदय को भेदती हुई चली गई। ये इतने क्लर्क, मज़दूर, किसान—ये सब घोड़े हैं, विभिन्न गाड़ियों में जुते हुए घोड़े! अपने आराम और सुख की परवाह किये बिना, पसीने से तर, थकन से चूर, दिन रात काम किये जाते हैं। इस लिए कि उन के प्रभु सफलता की गाड़ियों में बैठे अपने ध्येय तक पहुँच जायँ। बदले में उन को मिलता क्या है? रूखा-सूखा दाना पानी और [illegible]! उसे पचास रुपये मिल रहे हैं। शिमले जैसे महँगे नगर में पचास रुपये! 'घोड़ा'—एक तीव्र व्यंग्य तथा पीड़ा से वह मन ही मन हँसा—'तो वह कविराज की सफलता और ख्याति की गाड़ी में जुता हुआ केवल एक घोड़ा है—उसने सोचा—उसे बड़ी चतुराई से उस में जोता गया है। वह जो पुस्तक लिखेगा, उस पर कविराज का नाम होगा। उन के बाद उन के पुत्र, पौत्र और चाहें तो पर-पौत्र तक उस से लाभ उठायेंगे और वह स्वयं क्या पायगा? ५० रू० प्रतिमास के हिसाब से ३ महीनों के केवल डेढ़ सौ रुपये, जिन का अधिकांश वह शिमले ही में खर्च कर जायगा। फिर जिस प्रकार एक घोड़े के अयोग्य होने पर अथवा उस की

---

* अरे घोड़े, तू कुछ ज्यादा काम नहीं करता।

नहीं। करो, चाहे न करो। यदि तुम यहाँ से अपने स्वास्थ्य को कुछ भी ठीक करके लौटे तो मेरा तुम्हें यहाँ लाना सफल हो जायेगा।"

वे छड़ी घुमाते हुए चले गये और चेतन उस घायल सर्प की भाँति फुफकारता और अन्दर ही अन्दर विष घोलता हुआ सा बैठा रहा जो चोट खाकर झपटा तो हो, किन्तु जिस का वार एक दम खाली गया हो।

—०—

१३

सारा दिन चेतन खिन्न-मन सा बिस्तर पर पड़ा करवटें बदलता रहा। उस की आँखों पर से सहसा एक पर्दा हट गया था और जो कुछ उसे दिखाई दिया था, वह उस के सदा आदर्श की दुनिया में बसने वाले मन के लिए अत्यन्त वीभत्स था। उसे अपनी स्थिति की यथार्थता का आभास हो गया था और यह कटु आभास उस के मन-प्राण को एक विचित्र सी क्लान्ति, एक अजीब से विषाद से भर रहा था। उस की दशा उस रोगी की सी थी जिस ने कड़वी दवा का एक घूंट ही पिया हो किन्तु वह एक घूंट ही उस की जिह्वा, उस के कंठ, उस की नस-नस को जलाता हुआ चला गया हो। यह कटु अनुभूति उस के मन-प्राण को एक गहरे अवसाद से भर रही थी। आज तक उस के शिशु-हृदय ने दुनिया का पाउडर और रूज से ढका हुआ सुन्दर मुख ही देखा था। उस की वास्तविक कुरूपता देख कर उस का मन खिन्न हो

नहीं । करो, चाहे न करो। यदि तुम यहाँ से अपने स्वास्थ्य को कुछ भी ठीक करके लौटे तो मेरा तुम्हें यहाँ लाना सफल हो जायेगा।"

वे छड़ी घुमाते हुए चले गये और चेतन उस घायल सर्प की भाँति फुफकारता और अन्दर ही अन्दर विष घोलता हुआ सा बैठा रहा जो चोट खाकर झपटा तो हो, किन्तु जिस का वार एक दम खाली गया हो।

—०—

१३

सारा दिन चेतन खिन्न-मन सा बिस्तर पर पड़ा करवटें बदलता रहा । उस की आँखों पर से सहसा एक पर्दा हट गया था और जो कुछ उसे दिखाई दिया था, वह उस के सदा आदर्श की दुनिया में बसने वाले मन के लिए अत्यन्त वीभत्स था। उसे अपनी स्थिति की यथार्थता का आभास हो गया था और यह कटु आभास उस के मन-प्राण को एक विचित्र सी क्लान्ति, एक अजीब से विषाद से भर रहा था। उस की दशा उस रोगी की सी थी जिस ने कड़वी दवा का एक घूंट ही पिया हो किन्तु वह एक घूंट ही उस की जिह्वा, उस के कंठ, उस की नस-नस को जलाता हुआ चला गया हो । यह कटु अनुभूति उस के मन-प्राण को एक गहरे अवसाद से भर रही थी। आज तक उस के शिशु-हृदय ने दुनिया का पाउडर और रूज से ढका हुआ सुन्दर मुख ही देखा था। उस की वास्तविक कुरूपता देख कर उस का मन खिन्न हो

उठा । ऐसी कुरूपता भी कहीं है, वह इस बात में विश्वास न करना चाहता था, किन्तु वह जैसे कई गुना होकर उस के सरल हृदय पर अंकित हो रही थी।

वह शोषित है और कविराज शोषक, इस अनुभूति ने चेतन को झकझोर डाला था । वह चाहता था इस पर विश्वास न करे, पर यह विश्वास जैसे आप से आप उसे हुआ जा रहा था । इसे रोकने में वह सर्वथा अशक्त था । उसे लग रहा थ जैसे उसके हृदय के चिरनिर्मित दृढ़ दुर्ग की एक दीवार यथार्थता की बढ़िया के प्रबल वेग से बही जा रही है।

'मुझे क्या हो गया है ?' बार बार यह प्रश्न उस के सामने आता, पर पीड़ा इतनी अज्ञात थी कि उस का केन्द्र ढूंढ पाना उस के लिए कठिन था।

जब वह सोचता तो पाता कि जीवन की कटुता से यह उस का पहला ही साक्षातकार नहीं। वह तो जीवन की कटुता ही में उत्पन्न होकर पला और युवा हुआ । यद्यपि अपने जन्म के सम्बन्ध में उसे कुछ अधिक ज्ञात न था, पर उस ने माँ से सुना था कि उन के पुराने खंडहर से मकान में बरसात की एक रात उसका जन्म हुआ था। निरन्तर कई दिन से पानी बरस रहा था, उनका मकान टप टप कई जगह से चू रहा था और कच्चे फ़र्श पर गढ़े बन गये थे। परदादी गंगादेई कई बार वर्षा के कोप को शान्त करने के लिए जले हुए कोयले आँगन में फेंक चुकी थीं, और वे (माँ और परदादी) मकान के गिर जाने के भय से रात रात भर जागती रहती थीं। धाय को देने के लिए घर में पैसे न थे। परदादी कहीं से (धर्म शान्ति अथवा शुद्ध में) आये हुए बर्तन बेच कर कुछ रुपये जुटा लाई थीं और प्रसव के पश्चात् माँ को सोंठ और गुड़ मिले संठोले के अतिरिक्त पंजीरी अथवा अछवानी आदि शक्ति-वर्द्धक कोई भी चीज़ न मिली थी। वह तो पूरे चालीस दिन आराम

भी न कर पाई थी। परदादी अपनी अन्धी आँखों से चूल्हा झोंकती थी और दो तीन बार जलते जलते बची थी, इस लिए ग्यारहवें दिन का स्नान करके ही माँ घर के काम में जुट गई थी।

चिन्ता, भय, पुष्टिकारक भोजन के अभाव और काम के आधिक्य के कारण माँ का दूध शीघ्र ही सूख गया था और वह चेतन को छै महीने भी अपने स्तनों का दूध न पिला सकी थी। उसके लिए वह बकरी का दूध लेती, पर न जाने क्यों, चेतन को बकरी के दूध से घृणा थी। बकरी ही का नहीं, गाय का हो अथवा भैंस का, उसे सब प्रकार के ऊपरे दूध से घृणा थी। माँ की छातियों से दूध पीने के लिए वह लालायित रहा करता। न पाने पर रोता, पिटता, पिटने पर और अधिक रोता, (यहाँ तक कि उस की परदादी ने उसका नाम चेतन के बदले चिनकदास रख दिया था) किन्तु माँ दूध कहाँ से लाती ? उस का दूध तो एक दम सूख गया था।

वह बहुत छोटा था जब उसके पिता हिसार के स्टेशन पर तार बाबू हो कर गये। तब एक बार परदादी को जमुना स्नान कराने वे दिल्ली ले गये थे। माँ भी साथ थी और चेतन भी। वहाँ से माँ ने नन्हीं-नन्हीं कटोरियाँ खरीदी थीं। उसका विचार था कि उन के लोभ से चेतन दूध पी लिया करेगा। एक दो बार चेतन ने पी भी लिया, परन्तु फिर जब फिर कटोरियां ऊपरे के दूध का स्वाद न बदल सकीं तो वह कटोरी देखते ही रोने लगता। माँ उसे कान से पकड़ लेती और बरबस लिटा कर दूध पिलाती। वह रोता चीखता, हाथ पैर पटकता और इस प्रकार अपने शैशव ही में वह मरियल, चिढ़चिढ़ा और रोना बालक हो गया था।

चेतन को बचपन ही में अपने वातावरण की कटुता का आभास मिल गया था। एक दिन जब वह दूध न पी रहा था और माँ

भरी कटोरी हाथ में लिये उसे मना रही थी कि उस के पिता आ गये। एक बार प्यार से, दूसरी बार तनिक कर्कश स्वर में और तीसरी बार गरज कर उन्होंने उसे दूध पीने को कहा। जब इस पर भी उस ने कटोरी को मुँह न लगाया तो दड़ से दो थप्पड़ चेतन के पिता ने उसके गालों पर जड़ दिये और क्रोध के आवेश में उसे टाँग से पकड़ कर उलटा लटका दिया। वे उसे इसी प्रकार पकड़ कर दो एक चक्कर देते, यदि माँ लगभग रोते हुए इतना न कहती, "लाइए, अब पी लेगा।"

पिता ने उसे फिर सीधा खड़ा कर दिया। उन की आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। चेतन रोया न था। वह सहम गया था। जब माँ ने कटोरी उसके मुँह से लगाई तो उसने बरबस विष के घूंट की भाँति दूध पी लिया, पर दूसरे ही क्षण उसे कै हो गई। तब उसका मुँह धुलाते हुए, उसकी पीठ पर अतीव दुःख से हल्का सा थपेड़ा जमाते हुए, माँ ने आर्द्र कंठ से कहा था, "जा कम्बख्त! तेरे भाग्य में दूध है ही नहीं।"

यह हल्का सा थपेड़ा जैसे अपने में एक प्रबल प्रचालन-शक्ति रखता था। उसे आगे ही धकेले जाता था। पीठ पर माँ का थपेड़ा खाकर वह चला तो उस ने पीछे फिर कर न देखा था। वह धीरे धीरे आगे ही बढ़ता गया। उस क्रूर पिता के नैकट्य से दूर होता गया।

सारा दिन वह निरर्थक, निरुद्देश्य इधर उधर भटकता रहा। गालों से लेकर कनपटियों तक उसे सारी जगह सुलगती हुई प्रतीत होती थी। किन्तु वाह्य पीड़ा के अतिरिक्त उस के नन्हें, अपरिपक्व अन्तर के किसी अज्ञात स्तर में भी कुछ न कुछ सुलग रहा था— बिलकुल उसी तरह, जैसे अब अपने उस कमरे में बैठे, उस के अन्तर में कहीं कुछ सुलग रहा था और वह उस स्थान को निर्दिष्ट न कर पा

रहा था।

वह पिटते समय रोया न था, पर ज्योंही आँगन से बाहर हुआ था उस की आँखों से अनायास अविरल आँसू बहने लगे थे। दिन भर ऐसा होता रहा था। जब जब वह अपना हाथ अपने सुलगते गालों पर ले जाता, उस की आँखों में आँसू आ जाते।

पिटे हुए पिल्ले की भाँति वह सारा दिन इधर से उधर दुबका फिरता रहा था। दोपहर भर भुस की कोठरी में पड़ा रोता रहा था और सांझ समय जब माँ को उस की याद आई थी तो वह पानी वाले के सूने क्वार्टर में पीढ़े पर भूखा सोया पड़ा था।

.

बाहर वर्षा हो रही थी और चेतन अपने कमरे में चुपचाप बिस्तर पर लेटा हुआ था। अपने बचपन की इस घटना की याद आने पर उस की आँखें भर आईं। अनायास उस का हाथ अपने गाल पर चला गया। धीरे-धीरे वह उसे सहलाता रहा। वहीं लेटे लेटे, गाल को सहलाते सहलाते, उस के सामने अपने पिता की क्रूर-आकृति घूम गई और फिर बचपन की वे समस्त घटनाएँ जब वह अपने उस क्रूर पिता के हाथों बुरी तरह पिटा था।

. .

वह पाँच वर्ष का रहा होगा जब उस के पिता 'सैला खुर्द' स्टेशन पर नये नये नियुक्त हुए थे। तब उन्हों ने उसे अंग्रेज़ी सिखाना आरम्भ किया था। चेतन के पिता का विचार था कि उन दिनों स्कूलों में जिस रीति से शिक्षा दी जा रही थी, वह सर्वथा ग़लत थी। शिक्षा देने का ढंग तो उन के अपने समय ही का उत्तम था। स्कूल ही में छात्र को इस ढंग से पढ़ाया जाता था कि घर जाकर पढ़ने

अथवा रटने की उसे आवश्यकता ही न रहती थी। तभी उन्हों ने उसी अनूठे ढंग से चेतन को शिक्षा देने का निश्चय किया। उन्हें विश्वास था कि छः महीने ही में अपने विशेष ढंग से शिक्षा देकर वे चेतन को मैट्रिक में पढ़ने वालों के बराबर ले जायँगे।

चेतन की माँ को जब उन के इस निश्चय का पता चला तो वह डर से सहम गई। अपना यह ढंग पंडित शादीराम ने अपने बड़े लड़के पर भी आज़माया था और फल यह हुआ था कि माँ को विवश होकर उसे अपने मायके भेजना पड़ा था। उस ने एक दो बार डरते डरते कहा भी कि चेतन अभी बच्चा है, उसमें जान तो है नहीं, वह पढ़ेगा क्या ? पर उसके पिता 'सैला खुर्द' के स्टेशन पर नये नये गये थे और उन्हें पीने पिलाने वाले मित्रों का पता न था। इस लिए उन के पास अवकाश यथेष्ट था। इस अवकाश को उन्हों ने सार्थक बनाना ही श्रेयस्कर समझा। गाड़ी के स्टेशन से चले जाने के बाद वे घर आ जाते और चेतन को अपने उस विशेष ढंग के अनुसार पढ़ाने का प्रयत्न करते।

सब से पहले उन्हों ने चेतन को गीता के कुछ श्लोक रटाये "नैनम् छिन्दन्ति शस्त्राणि"...आदि आदि। और जब चेतन ने उन श्लोकों को कंठस्थ करने में असाधारण मेधा का परिचय दिया तो चेतन के पिता ने उसे सिर, नाक, आँख, कान, मुँह, टाँग, पैर आदि शरीर के भिन्न भिन्न अँगों की अँग्रेज़ी बताई। इसके बाद उन्हों ने उसे कुछ अंग्रेज़ी शब्दों के हिज्जे सिखाने शुरू किये। धीरे धीरे वे उसे ऐसे शब्दों की अक्षर रचना पर ले आये जिनमें कुछ अक्षर लिखे तो जाते हैं पर बोले नहीं जाते जैसे white, write, night, might आदि। चेतन को यह सब समझ में न आता। जब अक्षर

लिखे जाते हैं तो बोले क्यों नहीं जाते ? पर पिता से पूछने का साहस उसे न होता। वह चुपचाप उन्हें रट लेता। पिता ने उसे जितने शब्द और जितने हिज्जे बताये, चेतन ने उन्हें तत्काल रट लिया। पंडित शादीराम ने घोषणा की कि बड़ा होकर वह अवश्य डिप्टी कमिश्नर बनेगा। और अपने इस मेधावी पुत्र को डिप्टी कमिश्नरी के योग्य बनाने में उन्हों ने अपना कर्तव्य भी शीघ्रातिशीघ्र पूरा कर देना उचित समझा।

पढ़ने में बच्चे के उल्लास और पढ़ाने में पिता की तत्परता देख कर माँ का हृदय कांपा करता। किन्तु चेतन अपनी बाल-सुलभ-जिज्ञासा के कारण हर शब्द की अंग्रेज़ी पूछता और पिता सोल्लास उसे बताते।

शब्दों और उन की रचना के पश्चात् उन्हों ने चेतन को अंग्रेज़ी के छोटे छोटे वाक्य बताने आरम्भ किये।

वह जाता है—He goes.

वह स्कूल को जाता है। He goes to shool.

वह राम और श्याम के साथ स्कूल को जाता है—He goes to school with Ram & Shyam

वह राम और श्याम के साथ तांगे में स्कूल को जाता है—He goes to school with Ram & Shyam in a tonga.

जब उस ने ये वाक्य याद कर लिये और यह भी सीख लिया कि क्रिया के साथ s अथवा es कहाँ लगता है; I, we, you, they के साथ निरा go और He तथा she के साथ goes क्यों आता है तो चेतन के पिता ने उसे भूत और भविष्यत् के वाक्य बताये। जब गाड़ी स्टेशन पर आती तो वे अपने इस मेधावी पुत्र को बुला लेते और बड़े गर्व स्फीत स्वर में गार्डों के सामने उस से अंग्रेज़ी के वाक्य पूछते।

जब वह ठीक ठीक बता देता और गार्ड आश्चर्य-चकित-से उस नन्हें से बालक की ओर तकते रह जाते तो चेतन के पिता उसे उठा कर चूम लेते। उन की बड़ी बड़ी मूंछें, पतली पैनी दूब की भाँति चेतन के कोमल गालों में चुभ जातीं, उस का साँवला रंग और भी साँवला हो जाता और जब पिता उसे नीचे उतारते तो वह भाग जाता और माँ को जाकर अपनी सारी कारगुजारी सुनाता। सुनते सुनते माँ के ओठों पर गर्वीली मुस्कान आ जाती, फिर सहसा वह मुस्कान विषाद की गहरी रेखाओं में परिणत हो जाती। माँ चुपचाप शून्य में देखने लगती और विषाद-रेखाएँ उस के ओठों से फैल कर उस के सारे मुख-मंडल पर छा जातीं।

तभी एक दिन पंडित शादीराम ने चेतन को उस समय बुलाया जब गाड़ी जा चुकी थी। बात यह थी कि उनका एक मित्र अपने दसवीं श्रेणी में पढ़ने वाले लड़के के साथ 'राहों' जा रहा था। चेतन के पिता ने उसे गाड़ी से उतार लिया था और खाना खाने का निमन्त्रण भी दे दिया था और देसी शराब का एक अद्धा भी ठेके से लाने के लिए पानी वाले को भेज दिया था। चेतन जब पहुँचा तो उसके पिता ने पहले बड़े अत्युक्तिपूर्ण शब्दों में उसकी स्मरण-शक्ति और उस की बुद्धि के चमत्कार का उल्लेख किया और फिर उन्हों ने अचानक अपने उस मित्र के लड़के से दो चार शब्दों के हिज्जे पूछे। कुछ उन की सूरत, कुछ उन की बड़ी बड़ी मूछें, कुछ उन की लाल लाल आँखें, कुछ उन के स्वर की कर्कशता—उस बच्चे ने कई बार उन की ओर देखा, पर कुछ उत्तर देने के बदले सहमा सा चुप बना रहा। तब जैसे विजेता के उल्लास से उन्हों ने चेतन की ओर देखा और मूंछों को बल देते हुए कहा, "इधर आओ!" चेतन का विचार था कि वे उस के सिर पर प्यार से हाथ फेरेंगे या उसे उठा कर अपनी जंघा पर बैठा लेंगे। पर जब उस से

केवल इतना ही कहा गया, 'इधर आओ !' और वह भी कुछ कर्कश स्वर में तो वह मन ही मन तनिक डर गया, पर प्रकट साहस बनाये हुए पिता के निकट चला गया।

तभी पानी वाला शराब की बोतल ले आया। बोतल को देखते ही चेतन के पिता की आँखों में लाली के डोरे कुछ और गहरे हो गये और उन में एक पाशविक सी चमक झलक उठी। कार्क को खोलते हुए उन्हों ने चेतन से पूछा :

"सफ़ेद की अँग्रेज़ी क्या है ?"

"ह्वाइट"

"यह तुम खड़े कैसे हो, सीधे खड़े रहो !"

चेतन सीधा खड़ा हो गया ।

पानी वाले ने मेज़ पर दो कटोरियाँ रख दीं। कार्क खोल कर थोड़ी थोड़ी मदिरा दोनों कटोरियों में उँडेलते हुए चेतन के पिता ने चेतन को आदेश दिया।

"हिज्जे करो।"

"डब्लयू...डब्लयू...आई...टी, ई ।"

"क्या ?" चेतन के पिता बोतल को रखते हुए कड़के और सड़ से एक तमाचा चेतन के गाल पर पड़ा और कनपटी तक खाल सुलग उठी। उस ने हकलाते और काँपते स्वर में गाल पर हाथ रखते हुए कहा, "नहीं जी, नहीं जी, डब्लयू, एच, आई, टी, ई।"

"पहले क्यों नहीं बताया ?" और एक थप्पड़ उस के दूसरे गाल पर पड़ा, और एक मुक्का उस की पीठ पर।

चेतन डर से काँपने लगा। मुक्का इस ज़ोर से उस की पीठ पर पड़ा था कि उस की पीठ दोहरी हो गई थी। चेतन के पिता ने कटोरी में पड़ी हुई शराब को एक ही घूंट में खाली कर के मुँह बना कर कुल्ला

किया और पानी वाले को गाली दी की वह अचार क्यों नहीं लाया। पानी वाला अचार लेने के लिए भागा और चेतन के पिता चेतन की ओर मुड़े। पर चेतन को इस के बाद कुछ भी स्मरण नहीं। उसे कुछ ऐसा आभास है कि उस की आँखों के आगे पर्दा सा छा गया था— उस की उस चेतना के आगे भी, जो उस के मस्तिष्क में बैठी उसे हिज्जे शब्द और वाक्य सुझाया करती थी। उस से दूसरे शब्दों के हिज्जे, पूछे गये थे (वाक्य पूछने की नौबत ही न आई थी) और न जाने कैसे, उस ने काँपते-काँपते जो हिज्जे किये थे, वे सब के सब ग़लत थे। उस के पिता उसे उन्मादी की भाँति पीटने लगे थे और उस गार्ड ने बड़ी कठिनाई से उसे उन के चंगुल से छुड़ा कर दरवाज़े के बाहर किया था।

चेतन स्टेशन के कमरे से निकला तो लज्जा, क्रोध और ग्लानि से उस का नन्हा सा हृदय भरा आ रहा था। आँसू अनायास उस की आँखों से बहे जा रहे थे। वह किधर जा रहा है, कहाँ जा रहा है, उसे कुछ बोध न था। वह रोता जा रहा था, उलटे हाथ से आँसू पोंछता जा रहा था और भर आने के कारण बार-बार नाक को ऊपर सुड़कता जा रहा था।

वह घर की ओर न गया था। न जाने क्यों, माँ के सामने यों रोते जाने में उसे लज्जा आ रही थी, शायद उस के नन्हे से हृदय में कहीं नन्हा सा अहम् आ बैठा था और उस के अहम् को माँ के सामने यों रोते जाना स्वीकार न था।

वह सीधा माल गोदाम में गया और गेहूँ की बोरियों में मुँह छिपा कर रोता रहा। पके हुए अनाज की सोंधी सोंधी गंध उस के नथुनों में प्रवेश करके एक विचित्र तन्द्रा सी उत्पन्न कर रही थी! वह सो गया, किन्तु नींद ने उस के मन से उस लज्जा, ग्लानि,

भय और आतंक के बोझ को हल्का न किया। वहीं सोते-सोते उस के सामने कुछ वैसा ही भयानक दृश्य आ गया और उस ने स्वप्न में अपने पिता को डाँटते सुना। वह डर कर उठ बैठा। उस ने सुना, उस के पिता माल गोदाम की ओर आ रहे हैं। वह चुपचाप बोरियों से उतर कर खिसक गया।

माल गोदाम से निकल कर वह खेतों, खलिहानों में घूमता रहा। उसे खाने पीने की चिन्ता न थी! खो जाने का भय न था। वह घूमता रहा—निरर्थक, निरुद्देश्य, निरुत्साह!

वह रहँट पर गया और कुएँ की जगत पर बैठ कर चुपचाप रहँट की रूँ रूँ...रीं-रीं...सुनता रहा; कृषक-बालक को बड़े मज़े से गाधी[1] पर बैठे, कभी-कभी टिटकारी भरते; बैलों को लगातार उसी चक्कर में घूमते, रहँट की टिंडों[2] को भर भर कर खाली होते देखता रहा।

वह खेतों में गया और कितनी देर तक वहां गेहूँ की बालियों को बैलों के खुरों के नीचे पिस कर दानों को छोड़ते; छाज[3] की सहायता से भुस और दानों को अलग अलग होते, सांघे और तंगली की मदद से दानों के ढेर बनते और बोरियों में अनाज को भरे जाते तकता रहा।

वह चरसे पर भी गया। कितनी ही देर तक वह मन्त्र-मुग्ध सा वहाँ खड़ा चरसे की 'लाओ'[4] को बैलों द्वारा खींचे जाते देखता

---

१ गाधी = बैलों के पीछे उन्हें हांकने वाले के बैठने की जगह। २ रहँट के कोहिरे पर आजकल टीन के डिब्बे लगे होते हैं जिन में पानी भर कर नीचे से आता है। पहले उस पर मिट्टी के कूज़े लगे होते थे, इन्हें पंजाबी भाषा में टिंडें कहते थे।

३ छाज = सूप; ४ लाओ = रस्सा।

रहा। जब बैल लाओ को लेकर नीचे को जाते तो हांकने वाला तनी हुई लाओ पर बैठ जाता। उधर बैल ढलवान में पहुँचते इधर चरसा ऊपर आ जाता और किसान उसे थामते हुए ज़ोरों से संगीत भरे स्वर में हाँक लगाता—"बेली रब्ब ओ!"[1] और चरसे से पानी की नहर बहने लगती। चरसे को खाली कर वह कुएँ में फेंकता। बैल फिर ऊपर को चल पड़ते; चर्ख़ी पर लाओ खिसटती जाती। अर्से तक वहाँ खड़ा चेतन निरन्तर यही क्रम देखता रहा।

किन्तु प्रकट ये दृश्य देखते हुए भी वह उन्हें न देख रहा था। उद्भ्रान्त सा वह घूमता रहा था। उस की आँखें तो उन सुखद दृश्यों के स्थान पर कोई दूसरा ही दृश्य देखती रही थीं; अनायास भर भर आती रही थीं और वह उस हाथ से जो उड़ती हुई मिट्टी के कारण मैला हो चुका था, अपने आँसू पोंछता रहा था। उस के नन्हें से हृदय में बवंडर सा उठता मिटता रहा था। उसे भारी दुःख था। पर वह दुख निर्दोष पीटे जाने का था, सोचने का अवसर दिये बिना पीटे जाने का था, अथवा दूसरे लड़के के सामने पीटे जाने का, इसका विश्लेषण उस का नन्हा सा मस्तिष्क न कर पा रहा था। उस के गालों की टीस मिट गई थी, पर उस के नन्हें से हृदय में जो घाव बन गया था, उस में असह्य पीड़ा हो रही थी।

वहीं लेटे लेटे चेतन को लगा कि वह घाव तो अब भी वहाँ है और उस में पीड़ा उतनी ही तीव्र है। वह आज तक उस पीड़ा को कैसे भूला रहा? उस के सामने उस का अपना नन्हा उद्भ्रान्त रूप अपनी समस्त व्यथा के साथ आ गया। अपने क्रूर पिता का चित्र भी उस के सामने आया और उस के शैशव का वह दुखद अध्याय जैसे नये

---

१ भगवान ही मित्र है।

तिरे से उस के सामने खुल गया।

सन्ध्या को जब वह थक कर और तनिक आश्वस्त होकर घर आया था तो उस के घुटनों तक मिट्टी चढ़ी हुई थी, बाल बिखरे हुए थे, आँखें रोने के कारण उबल आईं थीं और मैले हाथों से बार बार पोंछने से उस के चेहरे पर धब्बे बन गये थे। माँ उस समय गाय का दूध दुह कर उसे चूल्हे पर गर्म करने जा रही थी। चेतन को इस अवस्था में देख कर उस ने उसे छाती से लगा लिया। चेतन चाहता था उस के आँसू न निकलें, पर सहसा उसे रोना आ गया। किन्तु जब उस ने देखा कि उस की माँ भी रो रही है (कदाचित पानी वाले से उसे सब बात का पता चल गया था।) तो वह आप से आप चुप हो गया। तब उसे चुप होते देख कर अथवा अपनी व्यावहारिक बुद्धि के कारण माँ ने भी जैसे अपने आँसुओं को बरबस रोक लिया। उसे अपनी छाती से अलग किया और भड़ोलीं* में उपलों की आग पर सुबह से चढ़े हुए गाढ़े दूध की मलाई उतार कर उस के साथ चेतन को रोटी दी। जब वह खाने लगा तो माँ ने धीरे धीरे, रसोई का काम करते करते, चेतन से हिन्दी शब्दों का अंग्रेज़ी अनुवाद, उस के हिज्जे और उन समस्त वाक्यों की अंग्रेज़ी सुनी जो चेतन के पिता ने उसे बताये थे। खाना खाते खाते चेतन ने अपनी माँ को वे सब शब्द, हिज्जे और वाक्य ठीक-ठीक सुना दिये। वह न कहीं अटका, न कहीं भूला। किन्तु जब रात को पिता ने उसे सोते हुए झकझोर कर उठाया और शराब के नशे में उसे अत्यन्त अश्लील गालियाँ देते हुए डाँटा कि वह इतनी जल्दी क्यों सो गया है और कुछ कठिन शब्दों के हिज्जे पूछे तो चेतन

*भड़ोलीं=गुरसी=मिट्टी की बनी गहरी सिगड़ी जिसमें कंडों की आग पर दूध पकता है।

बिना अटके न बता सका। वह अटका कि उस के थप्पड़ पड़ा, थप्पड़ पड़ा कि उसे सब कुछ भूल गया। इसके बाद उसे इतना स्मरण है कि वह भूलता गया और पिटता गया। हुक्के की नै से पिता ने उसे पीटा और एक बार जब पिटता पिटता वह दीवार तक आ गया और नै बरामदे के खम्बे में लगने से टूट गई तो पिता ने अपने नशे और क्रोध के आवेश में चूल्हे में से अधजली लकड़ी उठा ली। तब रोते-रोते माँ बीच में आ गई। तीन चार लकड़ियाँ उस के लगीं, एक बार चेतन के घुटने पर पड़ा। घुटने का मांस उड़ गया। वह न जाने कितना पिटता यदि परदादी गङ्गादेई अपनी अंधी आँखों और कमान सी कमर को लठिया के सहारे सम्हाले, चेतन के पिता को गालियाँ देती हुई, उन के बीच न आ जाती और चेतन पर खींच कर मारी हुई लकड़ी उसकी पीठ पर न जा लगती और अपनी दादी को पीटने के पाप का ध्यान करके चेतन के पिता का नशा न टूट जाता।

सारी की सारी घटना चेतन के सम्मुख घूम गई और तभी उसे अपनी शंका का समाधान भी मिल गया। वह सोचता था कि उसके मन में इस अन्याय, क्रूरता तथा अत्याचार के प्रति कभी प्रतिक्रिया क्यों नहीं हुई? अब उसे अचानक लगा कि प्रतिक्रिया तो उसके मन में अज्ञात-रूप से होती थी, किन्तु उसका पता उसे न चलता था। वह उसके अध-चेतन मन में होती थी, अपने उन अवसादमय क्षणों में उस प्रतिक्रिया का रूप बोध होकर उसके सम्मुख आ गया। पिट कर खेतों खलिहानों में उस का भटकना; प्रकृति के दृश्यों में निमग्न हो कर अपने मन की पीड़ा को भुलाना; बीमार रह कर अपने पिता की चिन्ता का कारण बनना; पिता के सामने कम जाना—यह सब उस प्रतिक्रिया ही का तो अज्ञात-रूप था।

बात वास्तव में यह थी कि उस प्रतिक्रिया को उस की आँखों से छिपा लेने वाली, उस कटु-वातावरण में रहते हुए भी, उसे उस से ऊपर उठाने वाली एक प्रबल शक्ति उसके अपने अन्तर में अनजाने ही में संचित होती रही थी। वह जब भी कटुताओं की चट्टानों से टकराया तो टुकड़े टुकड़े होने के बदले, सदा उसी शक्ति के बल पर उभरता रहा। उसी के बल पर खिन्न होकर भी उसने खिन्नता अनुभव नहीं की। दुखी होकर भी दुख को भूलता रहा। निराशा की गहन-निबिड़ता में आशान्वित रहा। उस का वह सन्तोष प्रतिक्रिया के अभाव के कारण न था, वरन उस आन्तरिक-शक्ति के संचय के कारण था।

किन्तु अब वह शक्ति उस की सहायक क्यों नहीं होती? वह झुँझलाता—कविराज की धूर्त्तता को देख कर और यह जान कर कि वह शोषित है, वह इतना खिन्न, इतना अन्यमनस्क क्यों हो बैठा! क्यों पहले ही की भाँति इस खिन्नता को झटक कर स्वस्थ हो कर नहीं उठ बैठा!

सन्ध्या का अंधकार प्रति क्षण गहरा होता जा रहा था। बाहर अनवरत वर्षा हो रही थी। मकानों की छतें मुखर हो उठी थीं। रिमझिम रिमझिम पानी बरस रहा था। परनालों का पानी शोर मचाता हुआ नालों में मिल रहा था और नालों का पानी उन्मत्त हो उछलता कूदता नीचे खड्ड में चला जा रहा था। इस समस्त कोलाहल में, बिजली जलाये बिना, अँधेरे ही में चेतन अपने बिस्तर पर अन्यमनस्क पड़ा था। उस सारे कोलाहल में उसे ऐसी नीरवता का आभास हो रहा था जो उसे निगले जा रही थी। पुरानी स्मृतियाँ नयी

अवसाद के क्षणों में, उसे अपना वह आशावाद मूर्खता से अधिक कुछ न लगा। पीछे मुड़ कर जो वह देखता तो उसे लगता कि वह तो सदैव ठगा जाता रहा है, उस की कल्पना उसे सदैव धोखा देती रही है। उस के काल्पनिक प्रासादों की दीवारें सदैव ढहती रही हैं। तट के जिस-जिस भाग पर वह जाकर खड़ा हुआ, वह गिरता रहा है। उसके पाँवों के नीचे से मिट्टी सदैव खिसकती रही है और वह उछल कर दूसरी जगह जा खड़ा होता रहा है। कुन्ती के साथ सुखी जीवन बिताने की अभिलाषा, नीला के साथ सुख के संसार की कल्पना, कविराज की सहृदयता का सहारा पाकर असफलता के उदधि को लाँघ कर सफलता को प्राप्त करने के स्वप्न—सब मिथ्या, सब झूठ, मरीचिका की भाँति निकट रह कर भी दूर! कविराज ने उसे जो अवसर दिया था, उसे वह नौका ही तो समझा था। किन्तु जिसे वह नौका समझा था वह तो ग्राह निकला। और तभी उस शक्ति का झूठ जो आज तक उसे दुख, दैन्य, निराशा और असफलता से ऊपर उठाती आई थी, उसके उन अवसाद के क्षणों में कई गुना बड़ा होकर, उसके सामने आ गया। उस का वह सम्बल ही छिन गया। यही कारण था कि जो शक्ति उसे बचपन से लेकर अब तक दुख में सुखी होना सिखाती आई थी, आज ऐसा करने में नितान्त असमर्थ थी। आज वह अपनी खिन्नता, दुख, अवसाद और निराशा पर विजय पाने में सर्वथा असफल था।

उन निराश क्षणों में जब उस की आँखों से कल्पना का पर्दा हट गया, उसने सारे संसार को उस के यथार्थ रूप में देखा। उस ने पाया कि उसके आस पास जो संसार है, उस में दो वर्ग हैं—एक में अत्याचारी हैं, शोषक हैं; दूसरे में पीड़ित हैं, शोषित हैं! यह ज्ञान कि वह पीड़ित और शोषित है, उसे खिन्न किये दे रहा था।

उसे लगता था जैसे वाटिका की वीथियों में घूमते घूमते उसने किसी

सुन्दर, पर विषैले पौधे का पत्ता तोड़ कर मुँह में रख लिया है और उसकी जीभ और ओठ ही नहीं, उसका सीना तक जल उठा है। यदि सफलता के लिए केवल श्रम दरकार होता तो वह जान लड़ा देता किन्तु छल-छिद्र, धोखा-कपट - क्या वह धोखे का धोखे, कपट का कपट से, मुकाबिला कर सकेगा ? और यही उसके दुख का दूसरा कारण था।

उस की सरलता को पहली बार जग की धूर्त्तता का सामना करना पड़ा था। माँ ने पाप-पुण्य, भलाई-बुराई के जो विचार उसे घुट्टी के साथ पिलाये थे, वे उसे हवा होते दिखाई देते थे। जिस बुराई के साथ वह अन्तर में लड़ता था, वह तो उसे सर्वव्यापी दिखाई देती थी। सत्य, शिव,सुन्दर में विश्वास करने वाले उसके विश्वासी, आदर्शप्रिय, भावुक हृदय पर पहली बार जग की व्यावहारिकता का प्रहार हुआ था और उस का मस्तिष्क इतना कच्चा था, चोट इतनी अज्ञात थी कि वह उस के स्थल को न जान पा रहा था। उसे लगता था, जैसे वह अपने विश्वासों की चोटी से गिरता जा रहा है और सहारा पाने के लिए शून्य में हाथ पाँव मार रहा है।

कविराज तथा उनकी पत्नी की'सहृदयता', सहृदयता तो दूर, उन की दयानतदारी के सम्बन्ध में भी वह अपना पहला विश्वास खो बैठा था। अनन्त को शिमला आने से पहले लिखे हुए पत्र की एक एक पंक्ति उसके सामने घूम रही थी। अपने इस विश्वास को खो देने का भी उसे दुख था। कविराज के वास्तविक रूप को जानने के साथ ही पहली बार उसे अपनी सरलता अथवा मूर्खता का बोध हुआ था और अपने आप को मूर्ख मानना उसके अहम् को स्वीकार न था।

अंधकार और भी गहरा हो गया था। वर्षा उसी प्रकार हो रही थी, वह उसी प्रकार खिन्न मलीन लेटा हुआ था कि उसे कविराज के

जूतों की परिचित ध्वनि सुनाई दी। वह हिला तक नहीं। पूर्ववत् लेटा रहा। तब उस के कमरे की बिजली जली और वाटरप्रूफ़ कोट उतारते हुए कविराज जी ने चिन्तित स्वर में पूछा कि बात क्या है? वह इस प्रकार क्यों लेटा हुआ है?

वह चुपचाप लेटा रहा।

कविराज उस की चारपाई पर आ बैठे। कुछ क्षण तक उस की कलाई थामे नाड़ी देखते रहे। फिर उन्होंने कहा, "तुमने व्यायाम अधिक मात्रा में कर लिया है शायद, तुम्हें बस आराम ही करना चाहिए। गर्म-गर्म शरीर से तुमने स्नान कर लिया होगा, और क्या?" और जैसे उन्होंने उसकी नित्य स्नान करने की सनक को लक्ष्य करके बेज़ारी से सिर हिलाया। उसे हर काम में मध्य मार्ग ग्रहण करने पर एक छोटा सा भाषण दिया और अन्त में परामर्श दिया कि उसे उबलते हुए दूध में अंडे हल करके सेवन करने चाहिएँ। "मैं अभी स्वयं बना कर तुम्हारे लिए ले आता हूँ।" वे व्यस्त होते हुए बोले। "गर्म-गर्म पीकर रज़ाई ओढ़ कर सो जाओ। भगवान ने चाहा तो सुबह तक तुम स्वस्थ हो जाओगे।"

यह कह कर वे बरसाती लिये हुए अन्दर चले गये।

'क्राटी!' चेतन ने मन ही मन कहा। वह ओठों में उपेक्षा से हँसा। फिर उस ने करवट बदल ली और बाहों में सिर रख कर अन्यमनस्क लेटा रहा।

—o—

तीन दिन तक कविराज चेतन को दूध और अंडे मिला कर पिलाते रहे और चौथे दिन (इतवार को) उन्होंने उसे 'चेडविक प्रपात' दिखलाने का प्रस्ताव किया।

बर्फ़ीले पहाड़ों के हिम मंडित धवल-शिखर जैसे प्रातःकालीन धुंध से ढक कर मलिन दिखाई देते हैं, किन्तु सूर्य के उदित होते ही धुंध के छट जाने पर फिर चमक उठते हैं, उसी प्रकार चेतन के हृदय की उज्ज्वल चोटियाँ क्षणिक दुर्बलता की धुंध से ढक गई थीं। उसकी कल्पना के चिर प्रकाश और उसके हृदय के (आशावाद रूपी) धवल शिखरों के मध्य दुर्बलता-जनित निराशा की धुंधियाली सी छा गई थी, किन्तु धीरे धीरे सूर्य की किरणें धुंधियाली को वेध रही थीं, क्षत-विक्षत हो धुंध छट रही थी और उस के हृदय-शिखर पुनः अपनी धवलता, उज्ज्वलता निर्मलता और अपनी समस्त चमक-दमक पा रहे थे।

वह सोचता—यदि आज वह दुर्बल है तो क्या कभी सबल न होगा? हताश होकर वह बैठ क्यों गया है? सृष्टि में चारों ओर वह दृष्टि जमाता तो उसके अपरिपक्व मन को सब जगह जंगल का नियम (निर्बलों पर बलवान की विजय) क्रियाशील दिखाई देता। यदि इस संसार में बलवान ही को जीत प्राप्त होती है तो वह बल का संचय क्यों न करे? क्या हुआ यदि उस के शारीरिक बल को उसकी कटु परिस्थितियों ने शैशव ही में पंगु बना दिया है, क्या हुआ यदि उसे धन का बल भी प्राप्त नहीं, उसे बुद्धि का बल तो प्राप्त हो सकता

है। चाणक्य ने इसी बल के द्वारा नन्द से अपने अपमान का बदला लिया था। उसका राज्य उलट कर चन्द्रगुप्त को न केवल सिंहासन पर बैठाया, बल्कि उसको अपने इंगित पर चलाया; धनिक तो दूर रहे, बड़े बड़े राजा महाराजाओं के मान मर्दन किये और महान कहलाये। तो फिर वह भी बुद्धि का ही बल क्यों न ग्रहण करे!......और उसी अंधकारमय कमरे में खिन्न मन बैठे बैठे उसे लगा जैसे चाणक्य की आत्मा उसके अन्तर में प्रवेश कर गई है, उसे लगा जैसे वह स्वयं उस बुद्धिशाली का वंशज है। कल्पना ही कल्पना में उसने अपने आपको चाणक्य के रूप में देखा और पाया कि धन और बल की सत्ता उस के सामने अकिंचन होकर रह गई है। अपने आप में उसने अपार बल का अनुभव किया। उसका क्रोध धीरे धीरे शान्त हो गया। और जब कविराज चैडविक प्रपात दिखा लाने का प्रस्ताव लेकर आये तो आंधी का वेग समाप्त हो चुका था और वातावरण पर हल्की सी ठंडी-ठंडी बयार डोल रही थी।

अपने उस नये आत्मबल के प्रभाव में चेतन ने कविराज की ओर इस प्रकार देखा जैसे कोई बलशाली पुरुष किसी अकिंचन बौने की ओर देखता है। उसने चैडविक की बड़ी प्रशंसा सुनी थी, किन्तु उसे देखने का अवसर उसे न मिला था। कई दिन से अन्यमनस्क लेटा लेटा वह उकता भी गया था इस लिए प्रस्ताव उस ने स्वीकार कर लिया?

कविराज ने अपनी सहृदय पत्नी से अवश्य ही कोई न कोई बहाना किया होगा, क्योंकि यदि वे उनको बता कर चलते तो उनके पास थर्मस में चाय अथवा दूध और रूमाल में मठरियाँ अथवा बेसन आदि कोई न कोई घर ही में तैयार की हुई मिठाई अवश्य होती, किन्तु जब चले तो वे बिलकुल खाली हाथ थे। नीअर बाज़ार पहुँच कर उन्होंने

एक रुपये की मिठाई खरीदी और चेतन के बार बार अनुरोध करने पर भी वे उसे स्वयं उठाये रहे।

मार्ग में कविराज ने उस से अपनी पुस्तक के बारे में दो तीन विज्ञापन बनवा लिये। वे अपनी वाणी में इतनी मिठास भर लेते थे और फिर इतनी सावधानी से बातें करते थे कि आदमी अनायास ही उन के जाल में फँस जाता था। अपने समस्त नये आत्मबल के होते भी चेतन अभी उन के सामने बच्चा था। न जाने उन्हों ने किस प्रकार बातों का क्रम छेड़ा, किन्तु धीरे धीरे वे उसे विज्ञापनबाज़ी पर ले आये। आधुनिक युग में विज्ञापनबाज़ी के महत्व पर उन्हों ने छोटा सा भाषण दे डाला :

"आज का युग विज्ञापनबाज़ी का युग है," उन्होंने कहा, "आज विनम्रता से, गुण के पारखियों की गुणग्राहकता पर विश्वास करके, काम नहीं चलता, बल्कि छत पर खड़े होकर डंके की चोट अपनी चीज़ का, अपने आविष्कार का, अपनी कला का, अपनी कृति का, अपने चरित्र और उस के गुणों का ढिंढोरा पीटने ही से जनता में सुनवाई होती है। सफल व्यक्ति के लिए बुद्धिमान होना, किसी उपयोगी चीज़ का आविष्कार करना, अथवा किसी कला-कृति का सृजन करना ही यथेष्ट नहीं, सफल विज्ञापनबाज़ होना भी आवश्यक है। विनम्र व्यक्ति आज की दुनिया में मरु का फूल होकर रह जायगा, जनता के गले का हार बनना उस के भाग्य में नहीं।"

और कविराज जी अपने प्रिय विषय "मैं" तक पहुँच गये और बोले "मेरी सफलता का भेद दूसरी बातों के अतिरिक्त इस में भी निहित है कि मैंने अपनी औषधियों का, अपनी पुस्तकों का बड़ी चतुराई से विज्ञापन किया है। जनता को पता भी नहीं चला और पुस्तकें और दवाइयाँ उसके दिल में घर कर गईं। अवकाश का समय मैंने सदैव

नयी स्कीमें बनाने अथवा नये विज्ञापन सोचने में लगाया है !" और सहसा अपने मन्तव्य पर आते हुए उन्हों ने कहा, "मैंने अभी कल दो विज्ञापन बनाये हैं । मैं शिमले में पहली बार आया हूँ । रोगी अभी उतने आते नहीं । आयें भी-कैसे ! उन्हें पता भी हो कि मैं यहाँ आ गया हूँ । किन्तु मैं प्रयास कर रहा हूँ कि शिमला और दूसरे निकटवर्ती स्थानों के लोग मेरे नाम से भली-भाँति परिचित हो जायँ । औषधालय अपने में स्वयं एक बड़ा विज्ञापन है । मैं जब भी किसी पहाड़ पर जाता हूँ, वहाँ अपने निजी मकान के अतिरिक्त औषधालय के लिए अवश्य स्थान लेता हूँ । बेकार बैठे स्वास्थ्य बनाना मुझे पसन्द नहीं और घर में काम हो नहीं सकता । औषधालय एक तरह से न केवल मेरे आफ़िस का काम देता है, वरन् विज्ञापन का भी । देश के विभिन्न प्रान्तों से सैर को आने वाले लोग बाज़ार से गुज़रते समय मेरे नाम से परिचित हो जाते हैं । शिमले में भी जब से आया हूँ, कुछ न कुछ कर ही रहा हूँ । मिडिल बाज़ार की समस्त दुकानों, लोअर बाज़ार के सारे होटलों और तंदूरों के अन्दर मैं ने अपनी पुस्तक "विवाह के भेद" के विज्ञापन लगवाये हैं । म्यूनिसिपल कमेटी अपनी सीमा के अन्दर विज्ञापन लगाने अथवा विज्ञापन बाँटने की आज्ञा नहीं देती । इस लिए मैं जयदेव को साथ लेकर, भराड़ी, संजौली, छोटा शिमला आदि निकटवर्ती बस्तियों में (जो पहाड़ी रियासतों के अन्तर्गत हैं) बड़ी बड़ी चट्टानों और दीवारों पर अपनी पुस्तकों के नाम लिखवा आया हूँ । और तो और सोलन को जाने वाली सड़क पर (कमेटी की सीमा के बाहर) दूर तक मैं ने चट्टानों और पत्थरों पर अपनी पुस्तकों के नाम लिखवा दिये हैं । लाभ यह होगा कि मोटरों से आने जाने वाले उनसे परिचित हो जायँगे । एक ही नाम जब बार बार आँखों के आगे आता है तो वह मानसपट पर अंकित हो जाता है ! और इस तरह सैर की सैर हो जाती है और काम भी ।"

अपनी इस कारगुज़ारी पर वे हँसे और फिर उन्होंने अपनी बात को जारी रखते हुए कहा,

"मैं जिस पहाड़ पर जाता हूँ, वहाँ के निवास-काल में अपनी पुस्तकों का पूरा पूरा प्रचार करता हूँ, ताकि यदि फिर कभी मुझे वहाँ जाना पड़े तो किसी प्रकार का कष्ट न हो। पुस्तकें मैंने इस ढंग से लिखी हैं कि उन्हें जो पढ़ लेता है, वह इलाज-उपचार के लिए सीधा मेरे पास आता है।" अनायास उनका हाथ अपनी मूँछों पर चला गया और आत्म-तुष्टि की अनुभूति से उनके ओंठों की मुस्कान उनके सारे मुख पर फैल गई। कुछ क्षण चुप चलते रहने के बाद वे बोले—

"मैं विज्ञापनबाज़ी के नित्य नये ढङ्ग सोचता हूँ। चाहता हूँ कि एक विज्ञापन दूसरे से न मिले। उस में नवीनता हो, उपज हो, मौलिकता हो।"...और सहसा उन्होंने दो एक विज्ञापन चेतन को दिखाये।

चेतन चुपचाप उन की बातें सुनता आया था। एक दो बार मन ही मन उनके दम्भ को कोस भी चुका था और जब कविराज जी ने विज्ञापन दिखाये तो उसने बड़ी अन्यमनस्कता से उन्हें देखना आरम्भ किया, किन्तु पढ़ते पढ़ते उसके अन्तर का कलाकार सजग हो उठा। "इन में सूक्ष्मता नहीं", उसने कहा, "ये विज्ञापन स्पष्ट और अनगढ़ दिखाई देते हैं। तत्काल पता चल जाता है कि विज्ञापन है। विज्ञापन होने चाहिए, जैसे संक्षिप्त कहानी। उस की पहली पंक्ति ही पाठक के ध्यान को ऐसा बांध ले कि वह अन्त तक बँधा चला जाय। अन्त पर पहुँच कर ही उसे लगे कि वह तो एक विज्ञापन पढ़ रहा था।"

और चलते चलते उस ने कविराज की पुस्तक का विज्ञापन बनाया।

ट्रङ्क गुम हो गया

मैं इंग्लिस्तान से एस० एस० जहाँगीर पर आ रहा था रास्ते में मेरा एक कीमती ट्रङ्क खो गया। वैवाहिक जीवन की समस्याओं पर लिखी और योरुप से खरीदी हुई बीसियों उत्कृष्ट और बहुमूल्य पुस्तकें उस में बन्द थीं। बम्बई पहुँच कर मैंने इस बात की घोषणा पत्र-पत्रिकाओं में की थी कि जो व्यक्ति उस ट्रङ्क को मुझ तक पहुँचा देगा उसे मैं ५०० रुपया पुरस्कार-स्वरूप दूँगा। अब इस सूचना द्वारा मैं अपनी वह विज्ञप्ति वापस लेता हूँ। जो भाई ट्रङ्क की खोज में लगे हों, वे अब कष्ट न करें, क्योंकि उन सब पुस्तकों का निचोड़ मुझे एक ही पुस्तक में मिल गया है, जिसे लाहौर के प्रख्यात वैद्य कविराज रामदास जी ने लिखा है और जिसका नाम सत्य ही उन्हों ने "विवाह के भेद" रखा है।

—डी० आर० टैक्नाइट, गोरखपुर

पत्थर की गगनचुम्बी दीवार की भाँति खड़े पहाड़ में बहुत ऊपर, एक छिद्र में से पिघली हुई चाँदी सा, बीसियों पेड़ पौधों को नहलाता, फुहारें उड़ाता, चैडविक प्रपात एक विशाल रजत-पट की भाँति लहराता हुआ नीचे गिर रहा था। वह फुहार जैसे बिना स्पर्श मन की सब खिन्नता, सारी थकन, समस्त क्लान्ति को धो रही थी।

प्रपात के नीचे पहुँच कर कविराज उस के पास ही एक चट्टान पर बैठ गये। चेतन उन से कुछ अन्तर पर बैठा। यद्यपि प्रपात उन से तनिक दूर गिरता था तो भी उस की फुहार का कोई कोई कण उड़ कर उन तक आ जाता था। कुछ देर तक दोनों चुपचाप प्रकृति के इस अनुपम सौन्दर्य को देखते रहे। फिर उन्हों ने लोअर बाज़ार से ली हुई

मिठाई खाकर ठंडा पानी पिया । और फिर न जाने कुछ उमंग में आकर अथवा चेतन को कुछ उदास देख कर कविराज ने एक गाना सुनाया :

उन के स्वर में इतनी मधुरता, इतनी आर्द्रता और इतनी लय थी कि चेतन चकित सा, मुग्ध सा उन का गाना सुनता रहा ।

ठंडी वायु से हिलते हुए पेड़ों की मर्मर और प्रपात की मादक छर्र-छहर कविराज के गाने के लिए वाद्य-यन्त्रों का काम दे रही थी और ऊँची-ऊँची पहाड़ियों से घिरे उस नीरव स्थान में उन का स्वर झरने के कलकल नाद से मिल कर, सारे वातावरण को एक विचित्र आर्द्रता से भर रहा था ।

कविराज गा रहे थे और चेतन सोचता था—यह व्यक्ति, जिसे वह केवल एक चतुर व्यापारी, एक हृदयहीन शोषक समझता था, अपने वक्ष में हृदय भी रखता है ! उस के मन में अवश्य कभी चाहत उगी है । चाहे अब उस चाहत की चिनगारी दुनियादारी की राख के नीचे दब गई है किन्तु वह सर्वथा बुझ नहीं गई । कहीं उस व्यावहारिकता, चतुरता, व्यापार, प्रवंचना, छल-कपट के नीचे दबी पड़ी है । और चेतन ने सोचा—मनुष्य क्यों अपने आप पर एक आवरण चढ़ाने को विवश है, क्या कोई ऐसी व्यवस्था नहीं जिस में वह जैसा है वैसा रह सके; उसे छल-कपट, धोखे-धड़ी, शोषण और उत्पीड़न की आवश्यकता न पड़े; वह अपने गुणों को जिला दे, चमकाये, मन्द न पड़ने दे, इस प्रकार कैद न करे, दबाकर न रखे !—कितना दर्द है इस कंठ में, कितना सुन्दर है यह गीत, कितना गीला, कैसी मनुहार है इस में !

शाम होने को आई थी और चैडविक प्रपात को आने वाला मार्ग बहुत ऊबड़खाबड़ था । इस लिए जब कविराज ने गीत समाप्त किया तो वे उठ खड़े हुए । एक लम्बी साँस लेकर उन्हों ने कहा,

"चलो भाई! इन गीतों का अन्त कहाँ, पर दिन का अन्त आ पहुँचा है।"

वापसी पर कविराज ने अपने जीवन की कहानी छेड़ दी और जाने अथवा अनजाने में वे उसे कितनी ही ऐसी बातें बता गये जो वे शायद किसी और को न बताते।

चेतन जान गया कि चार वर्ष के बदले उन्होंने केवल एक ही वर्ष आयुर्वैदिक कालेज में शिक्षा पाई है और जब उन्हों ने प्रेक्टिस आरम्भ की थी तो उन्हें आयुर्वेद का उतना ज्ञान न था। पर अपने परिश्रम, अध्यवसाय, निष्ठा और व्यवहार-कुशलता के बल पर उन्हों ने इतनी सफलता, धन, वैभव और ख्याति पाई।

चेतन यह भी जान गया कि उन्हों ने प्रेक्टिस का आरम्भ न केवल हर तरह की पूंजी के अभाव में किया, बल्कि जब उन्हों ने प्रेक्टिस आरम्भ की तो उन के सिर पर नौ हज़ार रुपया कर्ज़ था। कुछ रिश्तेदारों के साथ मिल कर उन्हों ने ठेकेदारी आरम्भ की थी और उस में घाटा आ गया था। पास तो कुछ था नहीं जो दे देते, पर मन ही मन उन्हों ने उस रकम को अपने ऊपर एक ऋण मान लिया।

"तब मेरे एक मित्र ने जिसे मैं बचपन में प्यार करता था मेरी सहायता की।" उन्हों ने बताया, "आयुर्वैदिक कालेज में तब एक ही वर्ष में डिग्री मिल जाती थी। घर वालों से मेरी बनती न थी, इस लिए पत्नी को भी लाहौर ले आया और मेरा वह मित्र हम दोनों का खर्च भेजता रहा। फिर वह समय भी आया कि मुझे जिन लोगों का कर्ज़ देना था, उन को मैंने पाई पाई चुका दी। यही नहीं, बल्कि वे मेरे ऋणी हो गये।"

चेतन का औत्सुक्य उन की जीवन-गाथा सुनने के बदले उनके

मित्र के सम्बन्ध में जानना चाहता था। उस ने उन की बात काट कर पूछा—"फिर वह मित्र आप से नहीं मिला।"

कविराज जी की वाणी गद्गद् हो गई। उन्हों ने कहा, "एक बार वह औषधालय आया था। तब मैंने उस से कहा, "मैं तुम्हारी क्या खातिर करूँ? किसी चीज़ के लिए पूछते हुए भी मुझे शर्म आती है, क्योंकि सब कुछ तो तुम्हारा ही है।"

और उन्हों ने उसे बताया कि किस प्रकार वे चंगड़ मुहल्ले में रहते रहे!और उन्हों ने स्वयं अत्यन्त विपन्नता के दिन देखे।......और अपनी रौ में वे एक अभिन्न मित्र की भाँति संगत अथवा असंगत, कथनीय या अकथनीय सब बातें उसे बता गये। और सन्ध्या समय जब चेतन अपने कमरे में पहुँचा तो उसे लगा जैसे कविराज के प्रति उस के मन में जितना क्रोध था वह सब पिघल चुका है। तब यद्यपि उन्हों ने उस से दो तीन विज्ञापन बनवा कर सप्ताह भर के पैसे वसूल कर लिये थे यह सब जानते हुए भी चेतन ने वहीं ठहर कर उन की पुस्तक समाप्त कर देने का निश्चय कर लिया।

जीवन की धूर्त्तता से उस की भावुकता का यह पहला समझौता था।

—o—

४१

एक दिन सुबह जब चेतन कविराज की पुस्तक के लिए एक परिच्छेद का ढाँचा तैयार कर रहा था, यादराम ने आकर खुशी से झूमते हुए सूचना दी, "बड़े काका आ रहे हैं।"

कई दिनों से वह राजकुमार (बड़े काका) के आगमन की चर्चा सुन रहा था। कविराज जी जिस समय अपने इस पुत्र का उल्लेख करते, उन की आँखों में चमक आ जाती। जब भी उन का कोई मित्र उन के सामने अपने लड़के की बात चलाता तो कविराज जी उस की बात पूरी तरह सुने बिना 'हमारे राजकुमार का तो यह विचार है कि'...'हमारे राजकुमार के सम्बन्ध में अध्यापक कहते हैं कि'......'हमारा राजकुमार तो ऐसा नहीं करता कि'......हमारा राजकुमार तो यही पसन्द करता है कि'...... किसी ऐसे ही वाक्य से आरम्भ करके अपने राजकुमार का ज़िक्र छेड़ देते और फिर उस की बुद्धि, उस के ज्ञान, उस के साहस, बल-पराक्रम, अध्यवसाय, निष्ठा और परिश्रम की इतनी बातें सुनाते कि मित्र बेचारा मुँह तकता रह जाता। उनके भाग्य से उसे ईर्ष्या होने लगती-जिनकी सन्तान ऐसी नेक, समझदार, साहसी और बुद्धिमान थी।

राजकुमार के आने से बहुत दिन पहले कविराज जी उस के रहने-सहने, खाने-पीने, पढ़ने-लिखने के बारे में प्रोग्राम बनाने लगे थे। आते ही उसे अपने उपयुक्त मित्र मिल जायँ, इस विचार से उन्हों ने अपने पड़ोस के लोगों और उन के बच्चों से मेल-जोल पैदा कर लिया था। उन के घर के सामने पूरब की ओर मि० चावला रहते थे।

उन का लड़का एफ़० ए० में और लड़की मूनग में पढ़ती थी ' स्वयं वे सेक्रेटेरियेट में हेड क्लर्क थे। कविराज जी ने उन को उन के बीवी-बच्चों सहित खाने पर बुला कर उन पर अपने लड़के की योग्यता का सिक्का बैठा दिया था। बायीं ओर दक्षिण की तरफ़ लाला मुकन्द लाल असिस्टेण्ट सुपरिटेंडेंट अपने लड़के और दो लड़कियों के साथ रहते थे। लड़का उन का मैट्रिक में पढ़ता था। पत्नी मर चुकी थी। उन के घर खाने पर निमन्त्रित होकर वे अपने लड़के के लिए वहाँ उपयुक्त वातावरण बना आये। इसी प्रकार रल्दू भट्टे की नीचे की गली में रहने वालों के साथ भी, जहाँ-जहाँ राजकुमार के समवयस्क लड़के थे, कविराज जी ने मेल-जोल बढ़ा लिया था। चेतन पर भी उन का कृपा-भाव उन दिनों कुछ बढ़ गया था। रात को सोते समय मन्नी के हाथ भेजने के बदले वे स्वयं चेतन के लिए दूध ले आते; उस के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूछते; उस के भाई की प्रैक्टिस का हाल चाल जानते; उस के उपन्यास की गति-विधि के सम्बंध में एक आध प्रश्न करते कि कितना लिखा गया है और क्या-क्या वह उस में लिखना चाहता है आदि आदि। कभी-कभी उस से कोई परिच्छेद सुनाने का अनुरोध भी करते। इन समस्त कृपाओं के बदले में उन्हों ने चेतन से वचन ले लिया था कि वह एक दो घंटे राजकुमार को अँग्रेज़ी पढ़ा दिया करेगा। जयदेव को उन्होंने उसे गणित पढ़ाने के लिए पहले ही राज़ी कर लिया था।

"हमारा राजकुमार अत्यन्त सीधा लड़का है," उस के आने से कुछ ही दिन पहले उन्हों ने चेतन को अपेक्षाकृत प्रसन्न पाकर कहा। "मैं वास्तव में उसे ब्रह्मचारी बनाना चाहता हूँ। बचपन ही से मैं उसे प्रातः उठने का, ठंडे पानी से स्नान करने का और धरती पर सोने का स्वभाव डालना चाहता हूँ।" और फिर चेतन का रुख पाकर मूँछों में हँसते हुए उन्हों ने प्रस्ताव किया, "मेरा विचार है कि वह

४१

एक दिन सुबह जब चेतन कविराज की पुस्तक के लिए एक परिच्छेद का ढाँचा तैयार कर रहा था, यादराम ने आकर खुशी से झूमते हुए सूचना दी, "बड़े काका आ रहे हैं।"

कई दिनों से वह राजकुमार (बड़े काका) के आगमन की चर्चा सुन रहा था। कविराज जी जिस समय अपने इस पुत्र का उल्लेख करते, उन की आँखों में चमक आ जाती। जब भी उन का कोई मित्र उन के सामने अपने लड़के की बात चलाता तो कविराज जी उस की बात पूरी तरह सुने बिना 'हमारे राजकुमार का तो यह विचार है कि'...'हमारे राजकुमार के सम्बन्ध में अध्यापक कहते हैं कि'......'हमारा राजकुमार तो ऐसा नहीं करता कि'......हमारा राजकुमार तो यही पसन्द करता है कि'...... किसी ऐसे ही वाक्य से आरम्भ करके अपने राजकुमार का ज़िक्र छेड़ देते और फिर उस की बुद्धि, उस के ज्ञान, उस के साहस, बल-पराक्रम, अध्यवसाय, निष्ठा और परिश्रम की इतनी बातें सुनाते कि मित्र बेचारा मुँह तकता रह जाता। उनके भाग्य से उसे ईर्ष्या होने लगती-जिनकी सन्तान ऐसी नेक, समझदार, साहसी और बुद्धिमान थी।

राजकुमार के आने से बहुत दिन पहले कविराज जी उस के रहने-सहने, खाने-पीने, पढ़ने-लिखने के बारे में प्रोग्राम बनाने लगे थे। आते ही उसे अपने उपयुक्त मित्र मिल जायँ, इस विचार से उन्हों ने अपने पड़ोस के लोगों और उन के बच्चों से मेल-जोल पैदा कर लिया था। उन के घर के सामने पूरब की ओर मि० चावला रहते थे।

उन का लड़का एफ़० ए० में और लड़की भूषण में पढ़ती थी। स्वयं वे सेक्रेटेरियेट में हेड क्लर्क थे। कविराज जी ने उन को उन के बीवी-बच्चों सहित खाने पर बुला कर उन पर अपने लड़के की योग्यता का सिक्का बैठा दिया था। बायीं ओर दक्षिण की तरफ़ लाला मुकन्द लाल असिस्टेण्ट सुपरिंटेंडंट अपने लड़के और दो लड़कियों के साथ रहते थे। लड़का उन का मैट्रिक में पढ़ता था। पत्नी मर चुकी थी। उन के घर खाने पर निमन्त्रित होकर वे अपने लड़के के लिए वहाँ उपयुक्त वातावरण बना आये। इसी प्रकार रल्दू भट्टे की नीचे की गली में रहने वालों के साथ भी, जहाँ-जहाँ राजकुमार के समवयस्क लड़के थे, कविराज जी ने मेल-जोल बढ़ा लिया था। चेतन पर भी उन का कृपा-भाव उन दिनों कुछ बढ़ गया था। रात को सोते समय मन्नी के हाथ भेजने के बदले वे स्वयं चेतन के लिए दूध ले आते; उस के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूछते; उस के भाई की प्रैक्टिस का हाल चाल जानते; उस के उपन्यास की गति-विधि के सम्बंध में एक आध प्रश्न करते कि कितना लिखा गया है और क्या-क्या वह उस में लिखना चाहता है आदि आदि। कभी-कभी उस से कोई परिच्छेद सुनाने का अनुरोध भी करते। इन समस्त कृपाओं के बदले में उन्हों ने चेतन से वचन ले लिया था कि वह एक दो घंटे राजकुमार को अँग्रेज़ी पढ़ा दिया करेगा। जयदेव को उन्होंने उसे गणित पढ़ाने के लिए पहले ही राज़ी कर लिया था।

"हमारा राजकुमार अत्यन्त सीधा लड़का है," उस के आने से कुछ ही दिन पहले उन्हों ने चेतन को अपेक्षाकृत प्रसन्न पाकर कहा। "मैं वास्तव में उसे ब्रह्मचारी बनाना चाहता हूँ। बचपन ही से मैं उसे प्रातः उठने का, ठंडे पानी से स्नान करने का और धरती पर सोने का स्वभाव डालना चाहता हूँ।" और फिर चेतन का रुख पाकर मूँछों में हँसते हुए उन्हों ने प्रस्ताव किया, "मेरा विचार है कि वह

की प्रतीक्षा करते करते थक जाता। उत्तर न पाने पर चिढ़ कर वह दूसरा पत्र लिखता और क्रोध में दो एक कटु बातें भी लिख देता और आशा करता कि अब तो बस लौटती डाक से उन का पत्र आ जायगा; किन्तु कई कई दिन और कई कई सप्ताह बीत जाते जब उन की ओर से उत्तर मिलता। वह भी एक दम नीरस और व्यावहारिक। केवल, काम की दो एक बातों के सम्बन्ध में चन्द वाक्य होते – जल्दी जल्दी घसीटे हुए। उनके पत्र को देख कर ऐसा लगता जैसे लिखने वाले को बड़ी जल्दी है, उस की गाड़ी छूटी जा रही है और उसे शीघ्रातिशीघ्र पत्र लिख कर गाड़ी पकड़नी है। कई बार चेतन इतना खीझ उठता कि पत्र पढ़ते ही उसे फाड़ कर, उस के टुकड़े टुकड़े करके खिड़की के बाहर फेंक देता।

रहा पड़ोसियों से मिलना-जुलना, रूल्दू भट्टे में एक भी ऐसा आदमी न था जिसे वह अपने उन उदास क्षणों का साझीदार बना सके। कविराज जी के घर में क्योंकि उस की स्थिति नौकरों की सी थी, इस लिए पड़ोसियों से वह कभी खुल न पाया था। वह सदा उन से खिंचा खिंचा सा रहा। यद्यपि वह कविराज जी के लिए पुस्तक लिख रहा था, किन्तु उस ने किसी पड़ोसी को यह बात न बताई थी। यदि किसी ने पूछा भी तो उस ने यही बताया कि पुस्तक लिखने में वह कविराज की सहायता कर रहा है। कविराज भी उस का ज़िक्र चलने पर यही कहते कि 'बच्चा बीमार रहता था। मैं इसे ले आया हूँ, इस का स्वास्थ्य सुधर जाय।' और यह कहते हुए वे कुछ ऐसे अभिभावकोंक* के से ढंग में बात करते थे कि चेतन को वे ही नहीं, उन के सभी मित्र अपने अभिभावक दिखाई देते थे।

*सरपरस्त-अभिभावक

वह किसी पड़ोसी से न मिलता। अपने उसी अँधेरे कमरे में बैठा रहता और उस के सामने अगनित चित्र बन-बन कर मिटते रहते। उसे लगता जैसे एकाकीपन अपने ईसपात के घेरे को उस के गिर्द क्षण-प्रति-क्षण संकुचित कर रहा है और किसी दिन यह प्रति-क्षण सीमित, प्रति-क्षण परिमित होता हुआ घेरा उस का दम घोट देगा। और वह चाहता कि पुस्तक को ले जाकर कविराज के सामने पटक दे और उसी क्षण लाहौर भाग जाय। लाहौर! जो अपने कूड़े कर्कट, धूल और धुएँ के होते भी जीवित है; जीवन के स्पन्दन से प्रति क्षण धड़कता है। जहाँ इतनी सफ़ाई चाहे न हो पर इतना शून्य भी नहीं! इतनी नीरवता और निस्तब्धता भी नहीं। जहाँ कमरे के मौन में बैठे हुए भी इस अनुभूति से मन सन्तुष्ट रहता है कि पास ही कहीं मित्र हैं, चाहे फिर उन से महीनों न मिला जाय; पास ही कहीं भाई हैं; शोरोगुल है; गाली गलौज है; कारों की पों-पों और ताँगों की खट-खट है; पास ही कहीं जलूस निकल रहे हैं; जल्से हो रहे हैं, धर्म-चर्चा हो रही है; दंगा-फ़िसाद हो रहा है। कहीं कुरूपता पास है तो समीप ही कहीं सौन्दर्य और सुघड़ता भी है; मन और आँखों को व्यस्त रखने के लिए यथेष्ट साधन हैं। शिमले ऐसी नीरवता और मौन तो नहीं। माना शिमले में माल है और माल पर सन्ध्याएँ रंगीन, मादक मदिर होती हैं; सुन्दर स्वरों का कल-हास सुनने को, सुन्दर आकृतियों की बनावट निरखने को मिलती है; किन्तु माल पर एक दो बार जाकर ही चेतन को उस के परायेपन का आभास मिल गया था। उस में अनारकली का सा अपनाव कहाँ? वह इस परायेपन से एक दम भाग जाना चाहता था। न भाग सकता था तो उन्मन और उदास सा अपने कमरे में बैठा रहता था।

और वह प्रसन्न था कि राजकुमार के आने से न केवल उस का

यह एकाकीपन दूर हो जायगा, बल्कि वह अपने इरादे, अपनी स्कीमें, अपनी कहानियों के प्लाट, अपने उपन्यास के परिच्छेद और भविष्य के अपने स्वप्न उसे सुना सकेगा।

वह उस समय काम में व्यस्त था जब यादराम ने उसे राजकुमार के आने की सूचना दी। किताब हाथ ही में लिये वह खिड़की में जा खड़ा हुआ। नीचे राजकुमार के स्वागत को जैसे सारा रुल्दू भट्टा इकट्ठा हो गया था। लेकिन चेतन को बड़ी निराशा हुई, क्योंकि कविराज जी के साथ जिस लड़के को उस ने सीढ़ियों पर चढ़ते देखा, उस की आकृति से किसी प्रकार भी उन गुणों का आभास न मिलता था जिनका बखान बड़े गर्व से कविराज इतने दिनों से कर रहे थे।

आनेवाला लड़का मँझोले कद का था। उसका शरीर यद्यपि स्थूल न था, किन्तु स्थूलता की ओर उस का निश्चित झुकाव था। छोटी ठोड़ी, भरे भरे गाल और चौड़ा मस्तक! नाक ज़रूरत से ज्यादा लम्बी और मोटी। न आँखों में कोई गहराई थी न चमक। न ओठों पर मन की सरलता का प्रतिबिम्ब था और न भवों पर अध्यवसायी, परिश्रमी और निष्ठावान होने का चिन्ह! उसे देख कर चेतन को भली-भाँति पले हुए दुम्बे की याद हो आई।

"मूर्ख, भरा पुरा दुम्बा!" चेतन ने मन ही मन हँस कर व्यंग्य से सिर हिलाया। राजकुमार अन्दर कमरे में जा चुका था। वह फिर बैठ गया और फिर काम में व्यस्त हो गया।

साँझ की छाया ढलने लगी थी जब अन्दर का दरवाज़ा खुला और कविराज जी अपने प्रिय पुत्र को लिये चेतन के कमरे में आये।

चेतन चारपाई पर बैठा बैठा थक कर लेट सा गया था। वह चौंक कर उठ बैठा। तब "बैठो बैठो" कहते और हाथ से उसे लेटे रहने का संकेत कर, वे उस की चारपाई के निकट आ गये और अपने पुत्र को अपनी बाँह में भर, अपनी मुस्कराहट को तनिक और फैलाते हुए, उन्हों ने दोनों को एक दूसरे का परिचय दिया। फिर राजकुमार के सामने चेतन की बड़ी प्रशंसा की और उससे कहा, "आज से तुम यहीं सोना। समय निकाल, घंटा दो घंटा इन से अंग्रेज़ी पढ़ लिया करना।" और यादराम को बुलाकर उन्हों ने कहा, "बड़े काका का बिस्तर इधर इनके कमरे में फ़र्श पर लगा दो।"

तब चेतन उछल कर उठा। उस ने यादराम से कहा कि उस की चारपाई उठा कर बाहर सीढ़ियों में रख दे और उस का बिस्तर भी वहीं फ़र्श पर बिछा दे।

कविराज जी ने उस को शाबाशी दी। धरती पर सोने के लाभ पर एक छोटा सा भाषण दिया और चले गये।

जब बिस्तर धरती पर बिछ गया, चेतन ने अपनी पुस्तकों को फ़र्श ही पर एक ओर क़रीने से चुन लिया और बैठ कर फिर काम करने लगा तो उसे लकड़ी के उस फ़र्श पर बैठने में दिक़्क़त हुई। खिड़की से बहुत नीचे होने के कारण प्रकाश की और कमी हो गई। किन्तु जब याद-राम निकट ही फ़र्श पर राजकुमार का बिस्तर बिछा रहा था तो वह शिकायत कैसे करता।

सुबह वह ज़रा देर से जागा और बिना लिहाफ़ से मुँह निकाले दोनों हाथ अपने चेहरे पर फेरते हुए उस ने राजकुमार को 'नमस्ते' कही। जब उसे कुछ उत्तर न मिला तो उस ने लिहाफ़ से मुँह निकाला

कि देखें राजकुमार अभी सोया पड़ा है या जाग रहा है। किन्तु वह चकित रह गया। न वहाँ राजकुमार था न उसका बिस्तर। यह भी न पता चलता था कि वहाँ कभी किसी का बिस्तर बिछा भी है।

क्षण भर वह उसी रीती जगह की ओर देखता रहा। फिर उस ने सोचा - कविराज दुकान को जायँगे तो उन से पूछेगा कि राजकुमार चला क्यों गया ? किन्तु कविराज जाते समय उस से नहीं मिले। वे तेज़ी से निकले और जल्दी जल्दी सीढ़ियाँ उतर गये। कदाचित् उन्हें जल्दी थी।

तब चेतन ने सोचा कि शायद राजकुमार वहाँ न सोयेगा. शायद ब्रह्मचर्य्य-व्रत उस के लिए उतना आकर्षण नहीं रखता। उसे भी अपनी चारपाई वापस ले आनी चाहिए। उस अँधेरे में काम कर आँखें फोड़ने की क्या ज़रूरत है। वह सीढ़ियों की ओर बढ़ा, किन्तु चारपाई वहाँ से ग़ायब थी।

वह दिन भर असमंजस में पड़ा रहा। उस से काम न हो रहा था। उसे ऐसा लगता था जैसे वह फिर ठगा गया है। तभी मन्नी उधर से गुज़री। चेतन ने उस से पूछा :

"मेरी चारपाई कल यादराम ने वहाँ रखी थी, कहाँ गई ?"

"रात को बड़े काका के लिए वैद्य जी ले गये।"

"पर उन ब्रह्मचारी जी को तो धरती पर सोना था," क्रोध से जलते हुए चेतन के कहा।

मन्नी हँस दी, "एक ही रात में बिलबिला उठे पिस्सुओं के मारे। उठ कर भाग आये आधी रात को। चारपाई तो और घर में थी नहीं, वही लाकर वैद्य जी ने उन के नीचे बिछा दी।"

चेतन ने चाहा ऐसी फुफकार मारे कि सामने का कमरा जल कर राख हो जाय, किन्तु वह केवल विष घोल कर रह गया।

सारा दिन वह कोई काम न कर सका। बेचैनी के मारे लेटता, उठता, बैठता कमरे में चक्कर लगाता रहा।

—०—

ब्रह्मचारी जी का धरती पर सोना तो चेतन से चारपाई लेने का बहाना मात्र था। सोचने पर चेतन भली भाँति समझ गया। चारपाइयाँ शिमले में महंगी थीं, सीज़न के खत्म हो जाने पर उन्हें बेच कर नीलाम करके अथवा किसी मित्र को देकर जाना पड़ता था। इसलिए शायद कविराज जी ने सोचा कि जब घर में एक चारपाई है तो दूसरी बाज़ार से क्यों लाई जाय ? और क्योंकि वे दवाखाने से चेतन को इसी चारपाई का लालच देकर लाये थे, इसलिए अब उसे लेने के लिए उन्होंने यह आडम्बर रचा था।

कविराज जी का यह नियम था कि वे कटु बात को भी मीठे से मीठे ढंग से करने का प्रयास करते थे। चेतन को शिमले लाने से पहले यदि वे उस से कहते, "मैं बच्चों के सम्बन्ध में एक पुस्तक चाहता हूँ, तुम उसे मेरे नाम से लिख दो तो चेतन शायद कभी तैयार न होता। किन्तु उन्हों ने बड़े मीठे, प्यारे ढंग से अपना वांछित काम भी करा लिया और खर्च भी कम से कम किया था, वह भी काम करने वाले पर कृतज्ञता का बोझ लादते हुए! क्योंकि प्रकट चेतन को उन के विरुद्ध किसी प्रकार की उचित शिकायत न हो सकती थी।

कविराज जी इस कला में सिद्धहस्त थे। दूसरे पर अहसान करते हुए (अथवा उसे इस बात का आभास दिलाते हुए कि उस पर अहसान किया जा रहा है) अपना काम कराने अथवा अपनी इच्छा के अनुसार किसी समस्या को सुलझाने में कविराज जी को अपूर्व सिद्धि प्राप्त थी।

छः वर्ष से उन के यहाँ औषधियाँ कूटने पर एक व्यक्ति नौकर

था। यादराम को पाने पर कविराज जी ने उसे निकालने का निश्चय कर लिया। बात यह थी कि एक तो वह बूढा था, उतना काम न कर पाता था, दूसरे पुराना नौकर होने के कारण उसे वेतन अधिक देना पड़ता था। किन्तु यह निश्चय करने के बाद उन्होंने तत्काल उसे छुट्टी नहीं दी। कई दिन पहले वे उस से कहने लगे कि उस का स्वास्थ्य खराब दिखाई देता है, वह दिन-प्रति-दिन दुबला होता जा रहा है, उसे कुछ दिन के लिए आराम करना चाहिए। जब उसे अपने स्वास्थ्य की खराबी के सम्बन्ध में पूरा विश्वास हो गया तो उन्हों ने उसे वेतन सहित पन्द्रह दिन की छुट्टी दे दी। वह चला गया तो उन्हों ने यादराम को अस्थाई रूप से उस की जगह लगा लिया। जब पन्द्रह दिन बाद वह लौटा तो कविराज जी ने उस से कहा कि बाबा तुम में अब इतना कठिन काम करने की हिम्मत नहीं, तुम्हें तो अब कोई ऐसा काम करना चाहिए जिसमें कम जान खपानी पड़े। मैं ने एक मित्र से तुम्हारी सिफ़ारिश कर रखी है, तुम वहाँ जाओ। रुपये तो शायद दो एक कम मिलें, पर काम आराम का होगा। मैं तुम्हें सिफ़ारिशी चिट्ठी लिख देता हूँ। और उन्हों ने अपने मित्र को लिखा :

"तुम कोई बात कहो और हम न मानें, यह कैसे हो सकता है। नौकर भेज रहा हूँ। मेरे यहा छः वर्ष से काम कर रहा है। दयानतदार और परिश्रमी है, मुझे कष्ट तो होगा, पर मैं जानता हूँ, तुम्हारा कष्ट मुझ से अधिक है। एक बार काम सिखा दो, फिर तुम इसे बड़ा उपयुक्त पाओगे।"

और यह सिफ़ारिशी चिट्ठी देकर उन्हों ने उस के हाथ पर दो रुपये इनाम रखा और उसे विदा किया।

कविराज जी नौकरों से छल करते हों, यह बात न थी। छल कपट (जिसे वे जीवन को सुख से व्यतीत करने का एक अत्यावश्यक

साधन मानते थे) उन की प्रकृति का एक अंग बन चुका था। अपने नौकरों से, ग्राहकों से, मित्रों से, बच्चों से, बीवी से, यहाँ तक कि वे अपने आप से छल करते थे। दिन-रात झूठ बोलते हुए, जनता को ठगते हुए वे साथ साथ अपने परलोक सुधारने की भी चिन्ता में मग्न रहते थे। आर्य समाज के प्रसिद्ध उपदेशक स्वामी शुद्धदेव उन के घर नियमित रूप से वर्ष में एक बार गीता की कथा करते थे, हर महीने हवन-यज्ञ होता था। इस के साथ ही वे कई सभा सोसाइटियों को दान देते थे और कई धर्मार्थ संस्थाओं के संचालन का बोझ अपने कन्धों पर उठाये हुए थे और समझते थे कि इस लोक के साथ वे अपना परलोक भी सुधार रहे हैं। किन्तु चेतन ने भली-भाँति देखा था कि चाहे प्रकट रूप से ये सब कार्य वे परमार्थ के हेतु ही करते हों, किन्तु अर्धचेतन में उनका व्यापारी अपने समस्त परोपकार का लेखा जोखा रखता था। कथा कराते समय अथवा चन्दा देते समय वे सदैव इस बात का ध्यान रखते थे कि बदले में उन्हें क्या मिलता है—कितनी सभा सोसाइटियों के वे प्रधान अथवा उपप्रधान चुने जाते हैं; उन के कितने मित्रों अथवा रिश्तेदारों का काम बनता है; उन्हें कितनी ख्याति मिलती है। कई सभाओं की ओर से उन को (आयुर्वेद सम्बन्धी सेवाओं के सिलसिले में) स्वर्ण-पदक मिले थे (जिन का विज्ञापन वे अपनी पुस्तक 'विवाह के भेद' के सम्बन्ध में निरन्तर करते) कितनी सोसाइटियों के कोष पर उन का अधिकार था। उन्हें देख कर चेतन को कभी कभी पंजाबी भाषा की एक लोकोक्ति याद आ जाती थी :

अहरन दी कीती चोरी सुई दा कीता दान
कोठे ते चढ़ वेखन लग्गा औह आये बिमान[1]

---

[1]कर अहरन की चोरी, किया सुई का दान
छत पर चढ़ कर देख रहे, कहाँ आये विमान ?

लेकिन चेतन को कविराज जी के इस ढंग, उन की इस व्यवहार-कुशलता से अतीव घृणा थी। वह स्पष्ट-वादी था। साफ़ बात पसन्द करता था। इस घुमाव फिराव में उसे छल की गंध आती थी। यदि कविराज उससे साफ़ कह देते—'राजकुमार आ रहा है भाई, चारपाई अब उस के लिए चाहिए'—तो वह तत्काल दे देता। उसे तनिक भी दुःख न होता क्योंकि कविराज जी ने शिमला आने से पहले उससे कह दिया था कि वे सोने के लिए उसे दुकान या मकान का कोई कोना दे देंगे। यह भी उन्हों ने उस से कह दिया था कि कदाचित उसे धरती पर सोना पड़े और चेतन इस बात के लिए तैयार भी होकर आया था। किन्तु उसे इस झूठ और फ़रेब से चिढ़ थी। हर बार नया झूठ। उस झूठ को छिपाने के लिए फिर झूठ और इस प्रकार सारे का सारा झूठ का यह जीवन उस के लिए असह्य था। स्पष्ट बात सुनने पर पहले धक्का ज़रूर लगता है, किन्तु आदमी उसे शीघ्र ही भूल जाता है, अथवा उसे यथार्थ जान कर उस से समझौता कर लेता है। किन्तु यह कपट! यह ऊपर से उतना कटु मालूम नहीं होता, किन्तु जो व्यक्ति इस कपट का शिकार बनता है, जब उस पर इसकी यथार्थता खुलती है तो उससे जो झटका लगता है, छले जाने का जो खेद उसे होता है, वह हृदय में घाव बना देता है और वह घाव समय पाकर नासूर बन जाता है और कपटी के क्षमा माँग लेने अथवा उस से बदला लेने पर भी नहीं मिटता।

और चाहे उस ने उनके लिए पुस्तक लिखने का निर्णय कर लिया था और वह पूरे श्रम से पुस्तक लिख रहा था, किन्तु उस समस्त छल कपट के लिए उस ने उन्हें क्षमा न किया था और वह उस घाव को धीरे-धीरे पाल रहा था।

चेतन के जीवन की ट्रेजेडी उस की यही बढ़ी हुई भाव-प्रवणता और उस से जनित क्षोभ था। यदि अनजाने में उस से स्वयं छल बन आता

तो दूसरे ही क्षण अपने छल को जान कर आत्म-ग्लानि से उस का हृदय भर जाता। प्रतिक्रिया उसे दूसरे किनारे ले जा फेंकती। निम्न-मध्य वर्ग में जो 'मोटी खाल' पैदा होती है—जो मान-अपमान को सह जाती है और अनायास असत्य, उत्कोच, चाटुकारी अथवा छल-कपट का व्यवहार करती है— उस का चेतन के पास सर्वथा अभाव था। उस की खाल बड़ी पतली थी। मस्तिष्क की नसें उस की अति कोमल थीं। छोटी सी बात भी उन्हें बेतरह झनझना देती थी।

उसे चारपाई के इस तरह से छीने जाने का बड़ा दुःख हुआ था। कुछ क्षण के लिए क्रोध का लावा उस के अन्तस्तल में पूरे वेग से खौल उठा था और लगता था कि वह एक दम फट पड़ेगा। उस ने चाहा था कि उसी क्षण कविराज जी के पास जाय। उन से कहे—"मुझे अभी चारपाई ले दीजिए! इसी क्षण! रुपये आप मेरे वेतन से काट लीजिए। क्या मेरे सहयोग का मूल्य एक चारपाई भी नहीं? क्या आप ने मुझे यादराम या जयदेव समझ लिया है?"

यद्यपि वह भली भाँति जान गया था कि कविराज की दृष्टि में उस का महत्व यादराम या जयदेव से अधिक नहीं, उस ने अपनी इस स्थिति से समझौता भी कर लिया था, किन्तु बार-बार इस की याद दिलाये जाने पर उसे, उस की वर्ग-चेतना को, उसके अहम् को दुःख पहुँचता था। उस क्रोध के क्षण में उस ने यह भी सोचा था कि उसी समय कहीं से तीन-चार रुपयों का प्रबन्ध कर के एक चारपाई ले आये। किन्तु ज्यों ज्यों वह सोचता गया, उस के क्रोध का वेग शान्त होता गया। कविराज जी से और कुछ चाहे उस ने न सीखा हो, किन्तु क्रोध के क्षण में सोचना अवश्य सीख लिया था। 'कोई भी बात क्रोध में न करो'—यह उन का कथन था। एक बार भाई साहब की ओर से एक कटु-पत्र आया था और वह उसी समय उस का उत्तर देना चाहता था,

किन्तु कविराज जी ने उसे सलाह दी थी कि गुस्से में कभी पत्र न लिखो। यदि लिखे बिना कुछ और काम न हो सके तो लिख कर रख लो और दो दिन बाद डालो। निश्चय ही तुम उसे फाड़ दोगे। चेतन बहुतेरा चाहता था कि अपने पुराने स्वभाव के अनुसार वह दनदनाता हुआ कविराज जी के पास जाय, किन्तु अज्ञात रूप से उस पर उन का प्रभाव हो गया था। उन की बहुत सी बातों से घृणा करने, मन में उन का मज़ाक उड़ाने के बावजूद, उस ने उन के स्वभाव का यह गुण अपना लिया था। क्रोध के होते भी, एक ओर अपने वांछित भावी कृत्य और दूसरी ओर उसके औचित्य-अनौचित्य पर वह अपने मन में विचार करता जा रहा था। उसे लगता था कि अभी कविराज जी के पास जाना तो उस की मूर्खता होगी। वह जायेगा, शोर मचायेगा, कविराज उलटा उसे लज्जित करेंगे और उस पर अहसान का बोझ लादते हुए उसे चारपाई ले देंगे। न, वह इस प्रकार चारपाई न लेगा। उसे और किस बात का आराम है जो वह चारपाई लेकर कृतज्ञ हो? वह अभी तक नौकरों की बे-छत की टट्टी में शौचादि से निवृत होने के लिए जाता है; उस सर्दी में कमेटी के नल पर नहाता है, ब्राह्मण होता हुआ भी, उन के घर में रहता हुआ भी अछूत सा बना हुआ है; तो फिर यदि धरती पर सो लेगा तो उस का कौन सा अपमान हो जायगा? अब असत्य उन के जीवन का स्वभाव बन गया है, जब उस असत्य को भली-भांति जान कर, समझ कर वह उन के लिए पुस्तक लिखने को तैयार हो गया है, तब उसी असत्य का एक दूसरा रूप सामने आने पर इतनी आकुलता क्यों? क्यों न सदा के लिए उसी रूप को उन का यथार्थ रूप मान ले। जिस काल्पनिक व्यक्ति के नाम उस ने भावुकता-वश पुस्तक समर्पित की थी, उसे क्यों न भूल जाय? उन कविराज को उस की भावुकतामय-कल्पना ने देखा था,

इनको उस के अनुभव ने। तो फिर वह अपने अनुभव को ही पथ-प्रदर्शक क्यों न माने, क्यों कल्पना का भुलावा खाये और बार-बार उस के मिथ्या होने पर दुख पाये?

और यह सब सोच कर चेतन स्वस्थ हो गया था। उस का क्रोध तूफ़ान नहीं बना, बवंडर नहीं बना, एक घुमड़न सी बन कर अन्दर ही अन्दर मिट गया। किन्तु वह घाव जो चेतन के मन में इस कपट के कारण हो गया था, नहीं मिटा, इस घटना से वह कुछ और गहरा ही हुआ।

कविराज जी सुबह उस से आँखें मिलाये बिना गुज़र गये थे. किन्तु शाम को जब वे आये तो सीढ़ियों की खिड़की में से झाँक कर उन्हों ने पूछा कि वह मज़े में तो है और उसे पिस्सुओं ने तो नहीं काटा। "राजकुमार तो भाग आया उठ कर", उन्हों ने कहा, "बच्चा है न आखिर!" और वे हँसे।

तब चेतन ने कहा कि वह बड़े मज़े में है, उस के रक्त में इतना विष भरा है कि पिस्सू उसे काटें तो मर जायँ।

इस पर कविराज ज़ी ने खीसें निपोर दीं और अन्दर चले गये।

—o—

४२

राजकुमार उसके कमरे में सोया न था, किन्तु उसके पास पढ़ने के लिए दूसरे ही दिन समय पर आ गया था। चेतन चाहता था, उस

किन्तु कविराज जी ने उसे सलाह दी थी कि गुस्से में कभी पत्र न लिखो। यदि लिखे बिना कुछ और काम न हो सके तो लिख कर रख लो और दो दिन बाद डालो। निश्चय ही तुम उसे फाड़ दोगे। चेतन बहुतेरा चाहता था कि अपने पुराने स्वभाव के अनुसार वह दनदनाता हुआ कविराज जी के पास जाय, किन्तु अज्ञात रूप से उस पर उन का प्रभाव हो गया था। उन की बहुत सी बातों से घृणा करने, मन में उन का मज़ाक उड़ाने के बावजूद, उस ने उन के स्वभाव का यह गुण अपना लिया था। क्रोध के होते भी, एक ओर अपने वांछित भावी कृत्य और दूसरी ओर उसके औचित्य-अनौचित्य पर वह अपने मन में विचार करता जा रहा था। उसे लगता था कि अभी कविराज जी के पास जाना तो उस की मूर्खता होगी। वह जायेगा, शोर मचायेगा, कविराज उलटा उसे लज्जित करेंगे और उस पर अहसान का बोझ लादते हुए उसे चारपाई ले देंगे। न, वह इस प्रकार चारपाई न लेगा। उसे और किस बात का आराम है जो वह चारपाई लेकर कृतज्ञ हो! वह अभी तक नौकरों की बे-छत की टट्टी में शौचादि से निवृत होने के लिए जाता है; उस सर्दी में कमेटी के नल पर नहाता है, ब्राह्मण होता हुआ भी, उन के घर में रहता हुआ भी अछूत सा बना हुआ है; तो फिर यदि धरती पर सो लेगा तो उस का कौन सा अपमान हो जायगा! अब असत्य उन के जीवन का स्वभाव बन गया है, जब उस असत्य को भली-भाँति जान कर, समझ कर वह उन के लिए पुस्तक लिखने को तैयार हो गया है, तब उसी असत्य का एक दूसरा रूप सामने आने पर इतनी आकुलता क्यों! क्यों न सदा के लिए उसी रूप को उन का यथार्थ रूप मान ले। जिस काल्पनिक व्यक्ति के नाम उस ने भावुकता-वश पुस्तक समर्पित की थी, उसे क्यों न भूल जाय? उन कविराज को उस की भावुकतामय-कल्पना ने देखा था,

इनको उस के अनुभव ने। तो फिर वह अपने अनुभव को ही पथ-प्रदर्शक क्यों न माने, क्यों कल्पना का भुलावा खाये और बार-बार उस के मिथ्या होने पर दुख पाये!

और यह सब सोच कर चेतन स्वस्थ हो गया था। उस का क्रोध तूफ़ान नहीं बना, बवंडर नहीं बना, एक घुमड़न सी बन कर अन्दर ही अन्दर मिट गया। किन्तु वह घाव जो चेतन के मन में इस कपट के कारण हो गया था, नहीं मिटा, इस घटना से वह कुछ और गहरा ही हुआ।

कविराज जी सुबह उस से आँखें मिलाये बिना गुज़र गये थे, किन्तु शाम को जब वे आये तो सीढ़ियों की खिड़की में से झाँक कर उन्हों ने पूछा कि वह मज़े में तो है और उसे पिस्सुओं ने तो नहीं काटा। "राजकुमार तो भाग आया उठ कर", उन्हों ने कहा, "बच्चा है न आखिर!" और वे हँसे।

तब चेतन ने कहा कि वह बड़े मज़े में है, उस के रक्त में इतना विष भरा है कि पिस्सू उसे काटें तो मर जायँ।

इस पर कविराज जी ने खीसें निपोर दीं और अन्दर चले गये।

—०—

४३

राजकुमार उसके कमरे में सोया न था, किन्तु उसके पास पढ़ने के लिए दूसरे ही दिन समय पर आ गया था। चेतन चाहता था, उस

दे कि वह पुस्तक लिख रहा है, उस के पास समय नहीं, किन्तु
ऽ भी न कह सका और चुपचाप उसे पढ़ाने लगा।

ब राजकुमार दूसरे ही दिन पढ़ने आया तो चेतन ने उस के
में आबनूस की एक सुन्दर बाँसुरी देखी। जब वह पढ़
तो चेतन के एक दो बार कहने पर उसने उसे बाँसुरी
र सुनाई। चेतन बड़ा प्रसन्न हुआ। राजकुमार तो पढ़ ही चुका
अपना लिखना पढ़ना समेट वह राजकुमार के साथ ईदगाह गया
दोनों बड़ी देर तक वहाँ बाँसुरी की धुनों में मस्त रहे।

चेतन को स्वयं बाँसुरी बजाने का बड़ा शौक़ था। जब वह बहुत
था तो हरलाल पंसारी की दुकान पर एक रंगरेज़ आया करता
वह इतनी सुन्दर बांसुरी बजाता था कि चेतन, जहाँ कहीं भी हो,
बाँसुरी का स्वर सुनते ही भाग आता था। पहले-पहल शायद
की बांसुरी सुनकर चेतन के मन में बांसुरी बजाने का शौक पैदा
था। वह मेले से एक अढ़ाई आने की बांसुरी लाया भी था,
उससे फूँक ही न देते बनी थी। हार कर बाँसुरी छोड़, वह
नोद के अन्य साधनों में व्यस्त हो गया था। फिर भी जब कभी
मदारी मुहल्ले में आता और एक हाथ से डुगडुगी और दूसरे से
बजाता हुआ तमाशा देखने वालों के घेरे में घूमता तो चेतन का
फिर दुगने वेग से उमड़ उठता। वह फिर पैसा-पैसा जोड़ कर
खरीद लाता और तब तक उस में फूँकता रहता जब तक उस का
न दुखने लग जाता। धीरे-धीरे उसे बाँसुरी में फूँक देना आ गया।
वह महावीर दल में भरती हो गया ताकि दल के बैंड वालों से
की ट्यूनें सीख ले।। बैंड वालों की बाँसुरियों को देखकर उसे

स्वयं आबनूस की एक बाँसुरी खरीदने की इच्छा हुई थी। किन्तु जालन्धर में तब ऐसी कोई दुकान न थी जहाँ से सब तरह के वाद्य-यंत्र खरीदे जा सकें। इसलिए यह इच्छा कई वर्ष तक उस के अन्तर में दबी रही थी। किन्तु उस ने पहला अवसर पाते ही बाँसुरी खरीदी।

१६२६ की बात है। मैट्रिक करने के बाद कालेज में प्रवेश किये उसे कुछ ही महीने हुए थे कि लाहौर काँग्रेस का अधिवेशन आ गया। अनन्त के साथ चेतन भी उसे देखने गया। वे तो कदाचित कभी जा न पाते। लाहौर जाने, वहाँ रहने, खाने-पीने और काँग्रेस का अधिवेशन देखने की व्यवस्था वे कैसे करते? इतना धन कहाँ से पाते? किन्तु उन के साथ ही, उन्हीं की श्रेणी में, जालन्धर की काँग्रेस कमेटी के प्रधान का पुत्र पढ़ता था। उसने उन को राह सुझा दी। स्थानीय काँग्रेस कमेटी ने काँग्रेस के अवसर पर स्वयं-सेवक भेजने का निश्चय किया था और कुछ स्वयं-सेवकों की वर्दियों तथा एक ओर के किराये का प्रबन्ध अपने ज़िम्मे ले लिया था। प्रधान का लड़का खास तौर पर लाहौर के ट्रेनिंग कैम्प से ट्रेनिंग लेकर आया था और उसने जालन्धर में ट्रेनिंग कैम्प खोला था। उसी की सहायता और सिफ़ारिश पर वे दोनों यह सुविधा पा गये। चन्द दिन उन्हों ने ट्रेनिंग ली और बड़े धड़ल्ले से लाहौर काँग्रेस का अधिवेशन देखने चले गये।

अनन्त के पिता तो क़ानूनगो थे, दूसरे वह अपने पिता का इकलौता लड़का था, इस लिए उसके पास तो पर्याप्त कपड़े और जेब खर्च के लिए यथेष्ट रकम थी। किन्तु चेतन के पास केवल पाँच रुपये थे (जो उस ने बड़े अनुनय-विनय के बाद माँ से लिये थे या यों कहिए कि उस के अनुनय-विनय पर माँ ने किसी से लाकर दिये थे) और वर्दी के कपड़ों के अतिरिक्त केवल वही ओवर कोट था। वास्तव में उस समय वह भाई साहब के पास था और चेतन ने उन से माँग लिया था।

से कह दे कि वह पुस्तक लिख रहा है, उस के पास समय नहीं, किन्तु वह कुछ भी न कह सका और चुपचाप उसे पढ़ाने लगा।

जब राजकुमार दूसरे ही दिन पढ़ने आया तो चेतन ने उस के हाथ में आबनूस की एक सुन्दर बाँसुरी देखी। जब वह पढ़ चुका तो चेतन के एक दो बार कहने पर उसने उसे बाँसुरी बजा कर सुनाई। चेतन बड़ा प्रसन्न हुआ। राजकुमार तो पढ़ ही चुका था, अपना लिखना पढ़ना समेट वह राजकुमार के साथ ईदगाह गया और दोनों बड़ी देर तक वहाँ बाँसुरी की धुनों में मस्त रहे।

चेतन को स्वयं बाँसुरी बजाने का बड़ा शौक़ था। जब वह बहुत छोटा था तो हरलाल पंसारी की दुकान पर एक रंगरेज़ आया करता था। वह इतनी सुन्दर बांसुरी बजाता था कि चेतन, जहाँ कहीं भी हो, उसकी बाँसुरी का स्वर सुनते ही भाग आता था। पहले-पहल शायद उसी की बांसुरी सुनकर चेतन के मन में बांसुरी बजाने का शौक पैदा हुआ था। वह मेले से एक अढ़ाई आने की बांसुरी लाया भी था, किन्तु उससे फूँक ही न देते बनी थी। हार कर बाँसुरी छोड़, वह मनोविनोद के अन्य साधनों में व्यस्त हो गया था। फिर भी जब कभी कोई मदारी मुहल्ले में आता और एक हाथ से डुगडुगी और दूसरे से बाँसुरी बजाता हुआ तमाशा देखने वालों के घेरे में घूमता तो चेतन का शौक फिर दुगने वेग से उमड़ उठता। वह फिर पैसा-पैसा जोड़ कर बांसुरी खरीद लाता और तब तक उस में फूँकता रहता जब तक उस का सिर न दुखने लग जाता। धीरे-धीरे उसे बाँसुरी में फूँक देना आ गया। तब वह महावीर दल में भरती हो गया ताकि दल के बैंड वालों से बाँसुरी की ट्यूनें सीख ले।। बैंड वालों की बाँसुरियों को देखकर उसे

स्वयं अनन्त की एक बाँसुरी खरीदने की इच्छा हुई थी। किन्तु जालन्धर में तब ऐसी कोई दुकान न थी जहाँ से सब तरह के वाद्य-यंत्र खरीदे जा सकें। इसलिए यह इच्छा कई वर्ष तक उस के अन्तर में दबी रही थी। किन्तु उस ने पहला अवसर पाते ही बाँसुरी खरीदी।

१९२९ की बात है। मैट्रिक करने के बाद कालेज में प्रवेश किये उसे कुछ ही महीने हुए थे कि लाहौर काँग्रेस का अधिवेशन आ गया। अनन्त के साथ चेतन भी उसे देखने गया। वे तो कदाचित कभी जा न पाते। लाहौर जाने, वहाँ रहने, खाने-पीने और काँग्रेस का अधिवेशन देखने की व्यवस्था वे कैसे करते? इतना धन कहाँ से पाते? किन्तु उन के साथ ही, उन्हीं की श्रेणी में, जालन्धर की काँग्रेस कमेटी के प्रधान का पुत्र पढ़ता था। उसने उन को राह सुझा दी। स्थानीय काँग्रेस कमेटी ने काँग्रेस के अवसर पर स्वयं-सेवक भेजने का निश्चय किया था और कुछ स्वयं-सेवकों की वर्दियों तथा एक ओर के किराये का प्रबन्ध अपने ज़िम्मे ले लिया था। प्रधान का लड़का खास तौर पर लाहौर के ट्रेनिंग कैम्प से ट्रेनिंग लेकर आया था और उसने जालन्धर में ट्रेनिंग कैम्प खोला था। उसी की सहायता और सिफ़ारिश पर वे दोनों यह सुविधा पा गये। चन्द दिन उन्हों ने ट्रेनिंग ली और बड़े धड़ल्ले से लाहौर काँग्रेस का अधिवेशन देखने चले गये।

अनन्त के पिता तो क़ानूनगो थे, दूसरे वह अपने पिता का इकलौता लड़का था, इस लिए उसके पास तो पर्याप्त कपड़े और जेब खर्च के लिए यथेष्ट रकम थी। किन्तु चेतन के पास केवल पाँच रुपये थे (जो उस ने बड़े अनुनय-विनय के बाद माँ से लिये थे या यों कहिए कि उस के अनुनय-विनय पर माँ ने किसी से लाकर दिये थे) और वर्दी के कपड़ों के अतिरिक्त केवल वही ओवर कोट था। वास्तव में उस समय वह भाई साहब के पास था और चेतन ने उन से माँग लिया था।

दिसम्बर का महीना था। कड़ा जाड़ा पड़ रहा था। प्रधान के जलूस से तीन चार दिन पहले वे वहाँ पहुँचे। उन्हें खेमे में उतारा गया जिसमें नीचे पुआल बिछी हुई थी। चेतन को पहली रात सर्दी लगती रही, किन्तु काँग्रेस नगर पहुँचकर उल्लास-मात्र से वे पहली रात न सोये थे। दूसरी सुबह जब प्रातः ही उन्हें परेड के लिए जाना पड़ा और सर्दी के मारे उन के हाथ पाँव सन्न हो गये तो उन्हें पता चला कि काँग्रेस अधिवेशन में 'देखना' और 'मौज उड़ाना' ही नहीं, कुछ 'करना' भी है। सर्दी के मारे एक लड़का परेड ग्राउंड ही में बेहोश हो गया था। अनन्त तो पहले दिन ही खिसक गया। चेतन दो दिन परेड करने जाता रहा, किन्तु यह सब उस के बस का रोग न था। उस में इतनी शक्ति ही न थी कि ठंडी वर्दी में वह इतनी सर्दी में निकल सके। इस लिए तीसरे दिन वह भी कन्नी काट गया। प्रधान की शोभा यात्रा—जलूस—में वे दोनों शामिल हुए। यात्रा काँग्रेस नगर (अथवा लाजपत राय नगर से जो रावी के तट पर बनाया गया था) आरम्भ हुई; पैदल स्टेशन तक गई और पंडित जवाहरलाल नेहरू के आने पर फिर बाज़ारों में से होती हुई चली।

जलूस से एक दिन पहले वर्षा भी हुई थी। बाज़ारों में बड़ा कीचड़ था। चेतन कभी इतना पैदल न चला था। फिर तीन दिन से (अपने नये नये जोश में) वह लगातार ड्यूटी दे रहा था। उस के जूते पुराने और खुले थे। इन सब कारणों से खड़े खड़े उस की पिंडलियाँ दुखने लगी थीं, चलते चलते तलुवे दर्द करने लगे थे और नारे लगाते लगाते उस का गला बैठ गया था। निरन्तर अपने आगे के वालेंटियर की गर्दन के भोंडे खरखरे बालों को देखते रहना, कभी चल पड़ना, कभी खड़े हो जाना और कभी नारा लगा देना! कई घंटे से यही करते करते वह ऊब गया था, उदास हो गया था।

वह उस वहिया की एक लहर की भाँति बहाव में बढ़े जाना न चाहता था। किनारे होकर उस वेग को बहार देखना चाहता था। जब वे एक अपेक्षाकृत तंग बाज़ार में पहुँचे, जहाँ कीचड़ सहस्रों लोगों के चलने से ऐसा चिकनी मिट्टी सा हो गया था कि जूते चिपकने लगे थे तो वहाँ एक बार चेतन का जूता ऐसा चिपका कि उतर गया। तब इस अवसर को उपयुक्त जान वह उस बहती धारा से अलग हो गया। मार्च करते हुए स्वयं सेवकों के पैरों के नीचे से उस ने बड़ी कठिनाई से जूते को निकाला। उस के एक पाँव का मोज़ा कीचड़ से लथपथ हो गया। इस लिए जूते को हाथ ही में थामे उस ने पहले बराबर की एक दुकान के तख्ते पर खड़ा होकर सारा जलूस देखा, फिर उस ने दोनों मोज़े उतारे और पट्टियों को वैसे ही नंगी टाँगों पर कस कर बिना मोज़ों के जूते पहन, वह धीरे धीरे सजे हुए बाज़ारों की बहार देखता हुआ चल पड़ा।

अनारकली में एक दुकान पर उसे हारमोनियम और दूसरे वाद्य-यन्त्र रखे हुए दिखाई दिये। एक शीशे की आलमारी में आबनूस की बाँसुरियाँ भी थीं। चेतन वहाँ रुक गया। सब कुछ भूल कर वह दुकान में चला गया। उस ने भिन्न भिन्न बाँसुरियों का मूल्य पूछा। उसे जो सब से अच्छी लगी, उस की कीमत पाँच रुपये थी। वह दो हिस्सों में विभक्त हो जाती थी और उस में एक कुंजी भी थी। वह यही खरीदेगा, इस बात का निश्चय करके वह दुकान से उतर गया।

इसके बाद पाँच दिन तक वह और वहाँ रहा। अगणित चीजें वहाँ देखने की थीं—प्रदर्शनियाँ, तमाशे, विषय-निर्धारिणी समिति की बैठकें तथा अखिल भारतीय काँग्रेस का अधिवेशन और काँग्रेस से सम्बन्ध रखने वाली दूसरी कई संस्थाओं के जलसे। हज़ारों चीजें खरीदने की

थीं। सहस्रों खाने की थीं। कई ऐसी भी थीं जो उस ने कभी पहले न चक्खी थीं, न देखी! कई बार उस का हाथ अपनी जेब की ओर जाता, पर उस की आँखों के सामने आबनूस की वही सुन्दर बाँसुरी घूम जाती और वह अपने मन तथा जीभ की लालसा को दबा लेता।

टिकट के दाम खर्च किये बिना वह काँग्रेस की बैठकों तथा दूसरी नुमाइशों को देख सके, इस विचार से उसने बड़ी कड़ी ड्यूटियाँ दीं। रात रात भर वह ड्यूटी देता रहा और उस ने बिना पैसा खर्च किये सब देखने वाली चीजें देखीं। खाना वह (स्वय सेवक होने के कारण) काँग्रेस के लंगर से खाता रहा और 'अप अप विद माश की दाल,' 'डाउन डाउन विद मूंग की दाल' * और ऐसे ही दूसरे नारों का आनन्द (जो मन पसन्द चीज़ों के मिलने अथवा न मिलने पर लगाये जाते थे) मुफ़्त में लेता रहा। नहाने धोने के लिए साबुन तेल काँग्रेस के स्नान-गृहों में मिल जाता था। इस तरह उस ने अपने पाँच के पाँच रुपये बचा लिये थे। वापस जाने का किराया उस ने अनन्त से उधार ले लिया और जब वे वहाँ से चले तो उस ने जाते जाते ताँगे से पाँच मिनट के लिए उतर कर वही बाँसुरी ख़रीद ली।

बाँसुरी पाकर उसे इतनी खुशी हुई कि उसका जी चाहा, वह स्टेशन तक उसे बजाता ही चले। किन्तु सामान के अधिक होने के कारण तांगे में इस बात की सुविधा न थी। इस लिए उस ने रास्ते में बाँसुरी बजाने का लोभ संवरण किया और उसे अपने ओवर कोट के अन्दर की जेब में रख लिया।

स्टेशन पर भीड़ इतनी थी कि टिकट लेना चेतन के बस की बात

*माश की दाल की जय, मूँग की दाल का क्षय!

न थी, इस लिए यह भार अनन्त ने अपने कंधों पर लिया और चेतन सामान की रखवाली करने लगा। जब अनन्त उस बेपनाह भीड़ में घुस गया और सामान उतार कर चेतन ने गिन लिया तो वह बिस्तर पर मज़े से बैठ, बाँसुरी के दोनों हिस्सों को जोड़, मस्त हो उसे बजाने लगा। वह भूल गया कि वह स्टेशन के मुसाफ़िरखाने में बैठा है, भूल गया कि स्टेशन पर अपार भीड़ है. टिकट मिलेगा या नहीं, उन्हें रात उसी मुसाफ़िरखाने में तो न बितानी पड़ेगी—वह सब कुछ भूल गया और अपने चिर-परिचित गीत एक एक करके बजाने लगा। कितनी सुरीली थी वह आबनूस की बाँसुरी!

वह उस की स्वर लहरी में गुम था कि टिकट लेकर घबराया हुआ अनन्त आया। साँस उसकी फूली हुई थी, कपड़े अस्त-व्यस्त थे, "तुम यहाँ बैठे बाँसुरी में मस्त हो और वहाँ गाड़ी चलने ही वाली है!" उस ने चीख कर कहा, और गेट की ओर लपका।

चेतन ने घबराहट में बाँसुरी उसी तरह कोट के अन्दर की जेब में रखी और कुली के सिर पर सामान उठवा कर वह भी उस के पीछे भागा। जब बड़ी कठिनाई के बाद वह गाड़ी में सवार हुए और उन्हें अपने बिस्तरों को रखने और उन्हीं पर बैठने की जगह मिल गई तो चेतन ने अपने बिस्तर पर बैठ कर, डिब्बे की दीवार के साथ अपनी पीठ लगा, इस बात का ख्याल किये बिना कि वह शौचालय के दरवाज़े से पीठ लगाये बैठा है, बाँसुरी निकालने के लिए ओवर कोट के अन्दर की जेब में हाथ डाला। उस का दिल धक से रह गया। बाँसुरी ग़ायब थी। शायद सामान उठाते समय झुकने के कारण जल्दी में गिर गई थी। या भीड़ में किसी ने खींच ली थी। गाड़ी चलने ही वाली थी। अनन्त ने कहा भी कि बैठे रहो, और खरीद लेना, पर चेतन अँधाधुँध लाइनें फलाँगता हुआ वापस वहाँ गया जहाँ वे बैठे थे। किन्तु बाँसुरी

वहाँ होती तो भी उस जल्दी में उसे न मिलती और फिर इतनी भीड़ में वह धरती पर पड़ी ही कैसे रह पाती । चेतन की आँखों के सामने अँधेरा छा गया । उद्भ्रान्त सा वह वापस पलटा ।

वह इस तरह पागलों की भाँति इधर उधर भटक रहा था कि अनन्त यदि बाहर खिड़की में न खड़ा होता तो चेतन अपना डिब्बा कभी न ढूंढ पाता । रात के एक बजे जब गाड़ी जालन्धर पहुँची और किसी न किसी तरह रेलवे रोड, पंजपीर और चौरस्ती अटारी पार कर वह घर के दरवाज़े पर पहुँचा तो अन्दर प्रवेश करते ही उस की आँखों से अनायास आँसू बहने लगे ।

राजकुमार की बाँसुरी को देख कर चेतन के हृदय में एक टीस सी उठी थी । काँग्रेस अधिवेशन के उन सात दिनों का कठिन संयम और उस समय के बाद का वह क्षणिक उल्लास और लम्बी निराशा उस के सामने घूम गई । किन्तु समय ने उस घाव को काफ़ी हद तक भर दिया था ! आबनूस की बाँसुरी तो वह फिर खरीद न सका था, पर बाँस की पोरी उस के ट्रंक में अब भी पड़ी थी, जिसे वह कुछ बीबी जी की भ्रू-भंग, कुछ पड़ोसियों के क्रोध और कुछ सामने घर में रहने वाले बाबू चरण दास की संदेहशीलता के कारण बाहर न निकाल पाया था । किन्तु राजकुमार के साथ बाँसुरी बजाने का अधिकार पाकर उस ने सोल्लास वह बाँस की पोरी फिर निकाल ली थी ।

कुछ दिनों के लिए चेतन अपने एकांत को एक दम भूल गया । अपने अवकाश के समय वह राजकुमार के साथ नीचे घाटियों में उतर जाता और वे दोनों इकट्ठे मिल कर बाँसुरी बजाते ।

—०—

चेतन का यह नया स्वर्ग चन्द दिन ही रहा और उन चन्द दिनों में उस के अवकाश का सारा समय राजकुमार के साथ बाँसुरी बजाने और घूमने फिरने में बीता।

किन्तु बाँसुरी बजाने में राजकुमार कोई विशेषज्ञ न था। स्कूल में वह अपने स्काउट बैंड का साधारण सदस्य था। इसलिए उसे मार्च की दो एक तर्ज़ें ही आती थीं। उन के अतिरिक्त वह दो एक पंजाबी गीत बाँसुरी पर बजा लिया करता था। ये सब उसने चेतन को सिखा दिये। स्वयं चेतन को भी बहुत से गीत न आते थे और जो आते थे, वे भी कई वर्ष पुराने थे। उस ने सहर्ष उन सब की तर्ज़ें राजकुमार को सिखा दीं और कुछ दिन तक दोनों बड़े प्रसन्न रहे। नीचे खड्ड के किसी पत्थर पर, ईदगाह के जंगले पर या रिज के हवा घर में बैठकर दोनों मस्त हो एक दूसरे से सीखी हुई ट्यूनें बजाते रहे। इस हद तक कि उन में कोई नयापन न रहा और बाँसुरी बजाते-बजाते उन के सिर दुखने लगे। तब दोनों का उन्माद कुछ कम हुआ और किसी दूसरी ओर मन लगाने को जी चाहने लगा। राजकुमार इस बीच में अपने नये मित्रों से भली भाँति खुल गया और चेतन ने फिर अपने साहित्य की शरण ली।

कुछ दिन तक उस ने अवकाश के समय में उपन्यास लिखने का प्रयास किया, किन्तु जाने क्यों, भरसक प्रयास करने पर भी उसका उपन्यास आगे न चला। उसने अधिक उपन्यास न पढ़े थे, उपन्यासों के सम्बन्ध में उस का ज्ञान प्रेमचन्द के कुछ उपन्यासों, बंगाली से अनूदित कुछ

उपन्यासों अथवा उन दो एक अँग्रेज़ी उपन्यासों तक ही सीमित था जो उस ने पाठ्य पुस्तकों के रूप में पढ़े थे और इतनी पूँजी के साथ अच्छा उपन्यास लिखना उस के बस की बात न थी। पर इस यथार्थता को समझे बिना वह लिखे जा रहा था। अपनी भावनाओं को व्यक्त करने की प्रबल इच्छा उसके अन्तर में निरन्तर अंगड़ाइयाँ लिया करती थी और वह लिखे जाता था। पर उपन्यास कला पर क्योंकि उस का कोई अधिकार न था, इसलिए उस का उपन्यास बार-बार अटक जाता। अड़ियल टट्टू की भाँति आगे बढ़ने से इनकार कर देता। जब बीसियों स्लिपें काली करने पर भी उपन्यास ने यथेष्ट प्रगति न की तो एक दिन हार कर उसने सब की सब स्लिपें उठा कर एक ओर रखीं और निश्चय किया कि वह पहाड़ी लोगों के जीवन पर कहानियाँ लिखेगा।

किन्तु पहाड़ी लोगों के जीवन का उसे कुछ भी ज्ञान न था। कल्पना की सहायता से उस ने जो कहानी लिखी, वह उसे एक दम असम्भव लगी।

तब कहानी छोड़ उस ने कविताएँ लिखने का प्रयास किया, किन्तु न जाने उस की कविता के सोते को क्या हो गया था? यत्न करने पर भी उससे कोई कविता न बन पड़ी। कालेज के दिनों में जब उसने कुन्ती को देखा था तो कविताएँ उड़ती सी, बहती सी उस के मस्तिष्क में आ जाती थीं। चलता-चलता वह गुनगुनाता तो किसी न किसी कविता की पंक्ति बन जाती, पर अब वह यदि कुन्ती का ध्यान करता तो उसके सामने उस के पति की मृत्यु के दिन देखी हुई उस की आकृति, अपने विवाह का वह दिन, पिता और भाइयों का झगड़ा और बीसियों दूसरी बातें आ जातीं और कविता न जाने कहाँ पंख लगा कर उड़ जाती।

सिर को झटक, उन दृश्यों को फिर विस्मृति के महागर्त में

ढकेल कर वह नीला का ध्यान करता और चाहता कि कोई सुन्दर सी कविता लिखे। किन्तु इस बार पहले दृश्यों से भी कटु दृश्य उस की आँखों के सामने घूमने लगते। वह देखता कि नीला उससे रुष्ट है और वह उसे मना रहा है......देखता कि नीला के पिता ने तत्काल उस का विवाह कर दिया है और वह कहीं सुदूर प्रदेश को जा रही है... उस के हृदय को प्रबल आघात सा लगता और कविता की पंक्तियाँ उस की पहुँच से कहीं दूर—कहीं बहुत दूर उड़ जातीं।

और वह सोचने लगता कि आखिर नीला के विवाह की बात सुन कर उसे दुख क्यों होता है? वह स्वयं विवाहित है, अपनी पत्नी से घृणा भी नहीं करता। स्वयं ही उस ने पंडित वेणी प्रसाद से नीला का विवाह कर देने को कहा है। फिर यह पीड़ा कैसी? और वह मन ही मन अपने आप से लड़ता-झगड़ता, कविता लिखने का विचार छोड़, कभी कविराज जी की पुस्तक लिखने में मग्न हो जाता और कभी माल रोड को चल देता।



४५

जब चेतन बार-बार उपन्यास या कहानी या कविता लिखने का विफल प्रयास कर थक गया और माल, मिडिल या लोअर बाज़ार अथवा जाकू के चक्कर उस की उदासी और एकाकीपन को कम करने के बदले बढ़ाने लगे तो एक दिन सहसा उसे पता चला कि वह साहित्य

के पीछे योंही लट्ठ लेकर पड़ा हुआ है । वह तो संगीतज्ञ बनने के लिए बना है ।

वह पाँच नम्बर की सीढ़ियों से होकर खाना खाने जा रहा था कि मिडिल बाजार के कोने के एक रेस्तोराँ से उसे गाने की मधुर ध्वनि सुनाई दी ।

कौन देस गया पिया मोरा बालम रे
मैं तो वाहु देस की बलिहारी

वहीं सीढ़ियों पर मन्त्र-मुग्ध-सा वह खडा रह गया । इतना तरल, मधुर, करुण संगीत था कि उस के पाँव वहीं जमे रह गये । जब वह ध्वनि बन्द हुई तो वह जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतरने लगा, किन्तु उसे लगा जैसे वह करुण-मधुर ध्वनि बराबर उस का पीछा कर रही है ।

गाना पक्का था और जैसा कि उसे बाद में पता चला 'खयाल मुलतानी' में गाया जा रहा था । न जाने रागिनी ही सुन्दर थी अथवा गाने वाले के स्वर में जादू था, उस समय जब वह फिर अपने आप को एकाकी अनुभव कर रहा था, इस गाने ने उस के एकाकीपन को मिटा दिया, उस की कल्पना को फिर पख लग गये और वह फिर नयी बस्तियों में घूमने लगा और घर जा कर जब वह लेटा तो उस के कानो में वही ध्वनि गूँजती रही ।

दूसरे दिन दोपहर को वह फिर उसी गली से होकर खाना खाने गया । उस के आश्चर्य की सीमा न रही जब उस ने रेस्तोराँ के बाहर एक ओर, पूरी की पूरी दीवार को अपनी लम्बाई में लिये हुए, एक बड़ा भारी बोर्ड लगा हुआ देखा जिस पर बड़े सुन्द अक्षरों में लिखा था :—

PROFESSOR G SINGH'S
MUSIC COLLEGE

इस कालेज का दरवाजा शायद अन्दर की ओर था। बाहर की ओर सिर्फ़ एक खिड़की दिखाई देती थी जिस पर बड़ा सुन्दर पर्दा पड़ा हुआ था। चेतन का जी चाहा कि अन्दर जाकर देखे, पर उसे साहस न हुआ। उस समय भी अन्दर कोई गा रहा था, किन्तु स्वर वह न था जो उसने पहले दिन सुना था। चेतन कुछ पल खड़ा रहा। फिर जैसे अपनी विपन्नता की विवशता से बेचैन होकर वह जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतर गया।

उस दिन के बाद चेतन का नियम हो गया कि वह खाने के लिए दोनों समय सदैव माल के ऊपर से होकर उसी गली से नीचे उतर कर जाता। नीचे सुरंग को पार करके जाना उस ने छोड़ दिया था। दोपहर और शाम दोनों समय उसे उस रहस्यमय कमरे के अन्दर से कभी हारमोनियम के मन्दर और कभी मध्यम सप्तक के साथ उठता हुआ मीठा मादक स्वर सुनाई देता। कभी तबला भी बजता। यों तो उस के अन्दर से कई आवाज़ें आतीं, किन्तु एक स्वर चेतन को बड़ा मन-मोहक प्रतीत होता। उस के हृदय को कुछ होने सा लगता। जी चाहता कि उसे अनवरत सुनता जाय। जब तक वह स्वर आता, वहीं सीढ़ियों पर खड़ा वह मन्त्र-मुग्ध-सा सुनता रहता। उसे विश्वास हो गया कि प्रो॰ जी॰ सिंह के अतिरिक्त यह गाने वाला कोई दूसरा नहीं, किन्तु स्वर किसी बड़े युवा कंठ का मीठा मदभरा था। ज्यों-ज्यों दिन गुज़रते जाते थे, उसकी उत्सुकता बढ़ती जाती थी।

एक दिन जब वर्षा हो रही थी और वह अपना वही पुराना ओवर कोट छाती से कसे खाना खाने के लिए जा रहा था, उसे फिर रेस्तोराँ के उस कमरे से वही मादक स्वर सुनाई दिया। चेतन चलना भूल गया। नन्हीं-नन्हीं बूंदों में निरन्तर भींगता सीढ़ियों के एक ओर खड़ा गाना सुनता रहा। जब गाना समाप्त हो गया तो एक लम्बी साँस भर कर वह

चल पड़ा। ध्यान उस का उधर ही था और कल्पना में वह उस म्यूज़िक कालेज के रहस्यमय कमरे का भेद जानने का प्रयास कर रहा था कि उस का पाँव रपटा और वह फिसलता हुआ कई सीढ़ियाँ नीचे लोअर बज़ार में आ रहा।

तभी सामने के हलवाई की दुकान में गर्म-गर्म इमरतियाँ खाते हुए चन्द महानुभावों ने ठहाका लगाया। एक ने कहा :

"कोई बात नहीं बाबू जी, किसी ने देखा नहीं!" और वे फिर हँसे

चेतन खिन्नता से दाँत निपोरता हुआ उठा और कपड़े झाड़ कर जल्दी-जल्दी उस दुकान के सामने से निकल गया। यदि उसने ओवर कोट न पहना होता तो निश्चय ही उस की कमर छिल जाती। ओवर कोट के कारण यद्यपि उस की कमर तो न छिली, पर उस के चोट काफ़ी आई। किन्तु उस समय अपनी चोट को भूल कर उन इमरतियाँ खाने वालों की उपहासमयी दृष्टि से शीघ्रातिशीघ्र ओझल हो जाना ही उसने श्रेयस्कर समझा।

चेतन ढाबे की ओर चला। उस के मस्तिष्क से क्षण भर के लिए प्रो० जी० सिंह का मादक संगीत और उस की स्वर लहरी सब हवा हो गई। उन हँसने वालों पर उसे बड़ा क्रोध आया। किन्तु जब दूसरे क्षण ज़रा ठंडे दिल से उस ने सारी घटना पर पुनः विचार किया तो उस के सामने कई घटनाएँ आ गईं जब अपने मित्रों के साथ मिल कर वह स्वयं गिरने वालों पर हँसा था—साइकिल से गिरने वालों पर, साइकिल से बचने की कोशिश में गिरने वालों पर, बाज़ार की कीचड़ में फिसल कर गिरने वालों पर! मानव का यह कैसा स्वभाव है? उस ने सोचा—दूसरों को दुख में देखकर उसे खुशी क्यों होती है, गिरतों पर हँसने की अपेक्षा वह उन्हें उठा क्यों नहीं लेता!

खाना खाने के बाद चेतन जब लौटा तो उस ने कनखिओं से

हलवाई की दुकान की ओर देखा। न जाने क्यों उन लोगों के सामने जाने में उसे झिझक सी हो रही थी। खाना खाने में भी उस ने रोज़ की अपेक्षा अधिक समय लगाया था।

वे लोग जा चुके थे। वर्षा बन्द हो चुकी थी और बादल कहीं जाकू की ओर उड़ गये थे। चेतन तनिक स्वस्थ होकर फिर चल पड़ा।

म्यूज़िक कालेज में फिर कोई गा रहा था—कौन देस गया पिया मोरा बालम रे!—गीत वही था, किन्तु स्वर में वह मादकता कहाँ! चेतन कुछ क्षण तक खड़ा सुनता रहा। फिर साहस बटोर कर अन्दर चला गया। शायद सीढ़ियों से गिरने में जहाँ एक ओर उस के मन में संकोच पैदा हो गया था, वहाँ दूसरी ओर साहस का भी उद्रेक हुआ था।

प्रो० जी० सिंह का म्यूज़िक कालेज लखनऊ कालेज जैसा शानदार न था, यद्यपि बोर्ड उस पर बहुत लम्बा और अत्यन्त कलापूर्ण ढंग से लिखा हुआ लगा था। लाहौर में किसी बाज़ार के चौबारे अथवा किसी मकान के एक ही कमरे में सीमित 'संगीत महाविद्यालयों' की भाँति यह कालेज भी रेस्तोराँ के एक ही कमरे की परिधि में सीमित था और वह कमरा भी, जैसा कि चेतन को अन्दर जाने पर ज्ञात हुआ, लम्बाई में बाहर लगे हुए बोर्ड से कम था।

सारे के सारे मकान में तीन कमरे थे। इनमें से पहला किचन का काम देता था। इसमें रेस्तोराँ के ग्राहकों के लिए चाय आदि बनती थी और क्योंकि खाना खाने की इच्छा रखने वालों के लिए खाना भी पकता था, इसलिए ऊँची बनी हुई अंगीठियों पर सदैव कोर्मा, कोफ़्ता, रोग़नजोश, मछली आदि पकती रहती थी। इस के साथ (अर्थात् बीच के कमरे में) प्रो० सिंह कालेज के विद्यार्थियों को संगीत की शिक्षा देते थे। तीसरे कमरे में रेस्तोराँ के ग्राहक चाय आदि पीते या खाना

आदि खाते। यहाँ तीन-चार तिपाइयाँ लगी थीं, एक बड़ा सा मेज़ भी था, जिसके इर्द-गिर्द कुर्सियाँ लगी थीं। तिपाइयाँ और मेज़ कैसे थे, इसका अनुमान मेज़पोशों पर पड़े हुए सालन आदि के बड़े-बड़े धब्बों को देखकर ही लगाया जा सकता था। लेकिन यह सब बाहर से न दिखाई देता था। बाहर से तो इन तीनों कमरों की खिड़कियों पर लगे हुए पर्दे ही दिखाई देते थे जो इन को विचित्र रहस्यमयता प्रदान कर रहे थे। इन तीनों कमरों के दरवाज़े एक छोटी और अपेक्षाकृत अँधेरी गैलरी में खुलते थे जो रेस्तोराँ के किचन के बराबर से आरम्भ होकर खाने के कमरे में समाप्त हो जाती थी। केवल इसी गैलरी का दरवाज़ा बाहर से दिखाई देता था।

चेतन इसी दरवाज़े से अन्दर दाखिल हुआ। किचन से उठने वाली घटिया घी और प्याज़ की दुर्गन्ध से उस का दिमाग़ भन्ना उठा। नाक पर रूमाल रखे किचन के सामने से घूम कर वह म्यूज़िक कालेज के दरवाज़े के सामने आ खड़ा हुआ।

चिक को थामे-थामे उस ने देखा—एक छोटा किन्तु साफ़ सुथरा कमरा है, फ़र्श पर दरी बिछी हुई है जिस पर एक हारमोनियम और तबले की जोड़ी पड़ी है। मेंटलपीस पर कमरे की दीवारों के रंग से मेल खाता हुआ एक कपड़ा बिछा है जिस पर एक कैलेंडर, चीनी के फूलदान और दो चीनी ही के चूहे क़रीने से रखे हैं। तबले और हारमोनियम के अतिरिक्त कमरे में और कोई साज़ नहीं।

उस कमरे के मध्य एक बारह-चौदह वर्ष का लड़का वही हारमोनियम लिये बैठा था। शायद वही मुल्तानी का खयाल गा रहा था, और यद्यपि वह खादी का एक धुला साफ़ पायजामा, छपी हुई खादी ही की अचकन और सिर पर रागियों जैसा साफ़ा पहने था, किन्तु रूप-रंग से वह झीवर मालूम होता था। (और चेतन का

अनुमान ग़लत न निकला क्योंकि बाद में उसे मालूम हुआ कि वह फ़ीचर ही था) उसे बैठे हुए देखकर चेतन आश्वस्त सा हो अन्दर दाखिल हुआ।

"आइए!" किवाड़ के पीछे से आवाज़ आई। कुछ इस तरह जैसे किसी ने पूछा—कहिए कैसे कृपा की!

चेतन ने चौंक कर देखा। दरवाज़े की ओट में दीवार के साथ तीन लोहे की कुर्सियाँ रखी थीं। उनमें से एक पर सुरुचिपूर्ण तथा बहुमूल्य सूट पहने एक सुन्दर सिख युवक शर्माये हुए मेहमान सा बैठा था।

"बैठिए!"

चेतन को यह आवाज़ बड़ी मीठी लगी—दोपहर की निस्तब्धता में सहसा बज उठने वाली किसी बैल के गले में बँधी घंटी के स्वर सी! चेतन कुर्सी पर बैठ गया।

"फ़रमाइए!" उस युवक ने फिर कहा।

"प्रो० साहब कब आयेंगे?" कुछ और कह सकने में अपने आप को अशक्त सा पाकर चेतन ने पूछा।

"फ़रमाइए!"

उस स्वर में मिठास के साथ कुछ ऐसा आत्म-विश्वास था कि चेतन ने पूछा, "आप ही प्रो० सिंह हैं?"

उस युवक ने सिर हिलाकर उत्तर दिया कि 'हाँ'। तब चेतन निमिष भर के लिए चकित सा उसे देखता रहा। उस का विचार था कि प्रो० सिंह कोई ईसाई होंगे अथवा कोई केश-रहित सिख। उम्र भी प्रो० साहब की उस ने चालीस-पचास के ऊपर ही समझी थी और रागियों जैसी बड़ी सी पगड़ी की भी उस ने कल्पना की थी। किन्तु उस काल्पनिक व्यक्ति के स्थान पर इस चौबीस-पचीस वर्ष के कोमल कान्त

सिख युवक को देखकर वह चकित सा रह गया। इन प्रोफ़ेसर महोदय का क़द न बहुत लम्बा था न बहुत छोटा (पाँच फुट पाँच-छः इंच होगा) शरीर छरहरा और रंग गेहुआँ था। मसें अभी भींग रही थीं। ओठ पतले और गुलाबी थे। जबड़ों की हड्डियाँ हल्की सी उभरी हुई थीं जिनसे कल्लों में हल्के-हल्के सुन्दर गढ़े बन गये थे। आँखें बड़ी-बड़ी, हैरान और रौशन थीं। मस्तक चौड़ा और प्रशस्त। सिर पर उन्हों ने बड़े श्रम और सफ़ाई से दस्तार सजा रखी थी। सुन्दर कंठ में सूट से मेल खाती टाई थी और कुल मिलाकर उन के मुख पर हल्का सा स्त्रैण भाव था। जब वे मुस्कराते थे तो उन की मुस्कान संकोच के पर्दे में लिपटी हुई, बड़ी भली लगती। चेतन को विश्वास हो गया कि जो मादक स्वर लहरी वह सीढ़ियों पर खड़ा नित्य सुनता रहा है. वह इसी सुन्दर कंठ से निकली होगी। उस का जी चाहा कि किसी प्रकार सामने बैठकर उन का गाना सुने, किन्तु उस के मुँह से तो शब्द भी न निकल रहा था। आखिर प्रोफेसर साहब ने उस की मुश्किल हल कर दी, "कहिए कैसे आये ?"

"इधर खाना खाने आया करता हूँ।" चेतन ने साहस बटोर कर कहा। "आप का बोर्ड पढ़ा। आप से मिलने का शौक पैदा हुआ। गाना सुनने और सीखने का मुझे शौक है, इसलिए चला आया।"

प्रोफ़ेसर साहब खुश हुए, क्योंकि वे मुस्कराये। चेतन भी खुश हुआ, क्योंकि उसे उन की मुस्कान बड़ी भली लगी। कुछ और साहस पाकर उस ने पूछा, "आप यहीं गाना सिखाते हैं ?"

प्रश्न कुछ निरर्थक सा था इसलिए प्रोफ़ेसर साहब केवल मुस्कराये।

वे इतना अच्छा मुस्कराते थे कि चेतन शायद फिर कोई ऐसा ही निरर्थक प्रश्न करता, किन्तु उसी समय प्रो॰ साहब ने अपनी टाई की गिरह को ठीक किया और चेतन को उन के और अपने कपड़ों के अन्तर

का ध्यान आ गया। वह ज़रा सा घबरा भी गया। हकलाते हुए उस ने पूछा :

"यहाँ सिखाने की फ़ीस आप क्या लेते हैं ?"

"पाँच रुपये।"

चेतन पूछने वाला था कि घर पर सिखाने की फ़ीस आप क्या लेते है ? किन्तु उसे यह प्रश्न सर्वथा निरर्थक लगा। वह घर पर कहाँ सीख सकता है ? कुछ सोचकर उस ने पूछा, "आप किस समय सिखाते हैं ?"

"सुबह दस से एक बजे तक, फिर शाम को चार से छः बजे तक।"

चेतन जानना चाहता था कि जो गाना वह सुना करता था वह किस का है ? निश्चय ही वह उस झीवर लड़के का तो नहीं हो सकता। वह चाहता था कि वह किसी प्रकार प्रोफ़ेसर साहब का गाना सुने। किन्तु प्रोफ़ेसर साहब चुप थे। बस प्रोफ़ेसर बने बैठे थे। तब चेतन कुछ और न कह सका। वह उठा। चलते-चलते उस ने केवल इतना और पूछा कि फ़ीस तो वे पहले ही लेते होंगे। जब उत्तर में प्रोफ़ेसर साहब फिर मुस्कराये तो चेतन ने इतना और कहा कि वह शिमले में कविराज रामदास के साथ आया हुआ है, उन्हीं के साथ काम कर रहा है। पहली को वेतन मिलेगा तो वह उन की सेवा में उपस्थित होगा।

प्रोफ़ेसर साहब की मुस्कान ज़रा देर तक फैली रही। चेतन स्वभावानुसार 'नमस्ते' और फिर ज़रा घबराकर 'सत श्री अकाल' कह कर चला आया।

—०—

४६

चेतन म्यूज़िक कालेज से चला तो अकेला न था, बल्कि अगणित राग-रागनियाँ उस के साथ थीं। उसे बचपन से संगीत का शौक था। बचपन में जब वह 'हरवल्लब'* के प्रसिद्ध मेले में भारत के बड़े-बड़े संगीताचार्यों के गाने सुनता था तो यद्यपि वह उन के तान-पलटे और अलाप-विलाप न समझ पाता था, किन्तु उस के मन में सहस्रों पुलक जाग उठते और वह चाहा करता कि स्वर और लय की इस दुनिया पर उस का अधिकार हो जाय। किन्तु संगीत-शिक्षा पर आज के सभ्य संसार में फ़ीस लग गई है। या तो पानी की तरह रुपया बहाया जाय, या घर-घाट छोड़ कर चौबीसों घंटे उस्तादों की शागिर्दी की जाय, और रात दिन उन की चिरौरी करके कला के समुद्र से दो चुल्लू पानी पिया जाय—दो चुल्लू ही। पूरी प्यास वे बुझा सकेंगे, इसकी आशा आज के गुरुओं से नहीं।

चेतन के पास न पहली बात के लिए पैसे थे, न दूसरी के लिए समय। घर के कामों और पढ़ाई-लिखाई के बाद उस के पास बहुत समय न बचता था। फिर उसे एक ही साथ कई बातों का शौक था। वह एक ही समय अच्छा कवि, लेखक, चित्रकार, संगीतज्ञ, अभिनेता, वक्ता, सम्पादक और न जाने क्या-क्या बन जाना चाहता था।

वास्तव में घर के घुटे-घुटे वातावरण और अत्यधिक दबाव के कारण बचपन ही से उस के अन्तर में कुछ जमाव सा जो था, वह

---

*जालन्धर का प्रसिद्ध संगीतज्ञ जिसकी याद में मेला लगता है।

तनिक उन्मुक्त होने पर, सहसा पिघल कर सहस्र धाराओं में वह निकलना चाहता था।

जब माँ उन्हें जालन्धर ले आई थी और पिता का उतना डर न रहा था तो चेतन के सहमे-डरे बचपन ने नवजात मृग-शावक की भाँति पहली बार आँखें खोल कर अपने इद गिर्द देखा था। पर उस की दशा उस मृग शावक की सी थी, जिस की टाँगें जन्म ही से निर्बल हों और जो अपने मन की समस्त चञ्चलता के होते भी दुनिया की रङ्गीनी को मुटर-मुटर तकता हुआ कुलाँचें भरने की इच्छा को मन ही मन दबा कर रह जाय!

मुहल्ले में अगणित लड़के नंगे सिर, नंगे शरीर, चञ्चल, चपल बन्दरों की भाँति दिन भर हुड़दंग मचाते थे; गिल्ली-डंडा, तंग-गोली, ठैया-टापू, गेंद-बल्ला, कबड्डी आदि खेलते रहते थे, किन्तु चेतन अपने इन समवयस्कों के खेलों में भाग न ले पाता। वह हृष्ट-पुष्ट न था। यदि उसे कोई पीट देता अथवा साथ न खेलाता तो उस का प्रतिकार उस से न होता। 'खेलाओ नहीं तो खेलने न देंगे!' या 'न खेलेंगे न खेलने देंगे'—इन 'स्वर्ण सिद्धांतों' को दूसरे लड़कों की भाँति वह क्रिया-स्वरूप में परिणत न कर पाता। वह तो बस अलग हो जाता। आहत होकर उस का अहम् उन से परे खिंच जाता। जब कभी लड़के उसे न खेलाते तो वह अपने पुराने मकान की कच्ची छत पर जा बैठता और सामने डिप्टी साहब के मकान की खिड़कियों पर बने हुए मोर और तोते देख कर उन्हें उंगुली से कच्ची छत पर बनाया करता। कभी कभी आटे में भिन्न रङ्ग मिलाकर वह उस से उन खाकों में रङ्ग भी भर देता। वह इस चित्रकारी में इतना निमग्न हो जाता, कि उसे लड़कों का खेल, अपना अपमान, मुहल्ले का शोर-सब कुछ भूल जाता।

उन्हीं दिनों उस की मित्रता बराबर की गली के एक अपने ऐसे कलाकार बालक से हो गई।

यह कलाकार उनके मुहल्ले में पानी भरने वाले दलाराम कहार का लड़का महँगा राम था। ऊँची जात के हिन्दू राम के पवित्र नाम को उन नीचों के नाम के साथ लगाना पाप समझ कर बाप को केवल दला और उस के लड़के को केवल महँगा कह कर पुकारते थे। यह महँगा यद्यपि चेतन से डेढ़-एक वर्ष छोटा था, परन्तु बड़े ऊँचे दरजे का कलाकार था। मिट्टी के ऐसे सुन्दर खिलौने बनाता कि चेतन उस के शिल्प को देख कर मन्त्र-मुग्ध रह जाता। शीघ्र ही उस ने उस से मित्रता पैदा कर ली। खाना-खेलना छोड़ कर चेतन उस के साथ घूमता रहता। उस के छोटे-मोटे काम करता ताकि प्रसन्न होकर वह कला के कुछ अमूल्य भेद उसे बता दे। धीरे-धीरे उस ने चिड़ियाँ, तोते, कुत्ता, बिल्ली आदि बनाना सीख लिया। और छोटे-छोटे सुन्दर खिलौने बना कर ऊपर चौबारे को उन से पाट दिया।

जब वह कुछ और बड़ा हुआ तो इन्हीं कुत्ते-बिल्लियों को रेखाओं में अङ्कित करने लगा। उस की तख्ती-स्लेट और बाद में उस की कापियाँ इन्हीं चित्रों से भरी रहतीं।

बचपन ही से उसे कविता का भी शौक़ था। उस की पाठ्य-पुस्तकों में जो कविताएँ होती थीं, उन्हें वह कंठस्थ कर लेता था। 'आता है याद मुझको गुज़रा हुआ ज़माना,' 'अरे प्यारे लड़को बहादुर बनो तुम !' 'तारीफ़ उस खुदा को जिसने जहाँ बनाया' और दूसरी कई ऐसी कविताएँ उसे ज़बानी याद थीं। वह घर में अपने दादा, माँ, भाभी अथवा भाई के सामने अभिनय के साथ उन्हें सुनाया करता था।

वह पाँचवीं श्रेणी में पढ़ता था जब पहली बार 'आर्य भजन पुष्पांजलि' प्रकाशित हुई। स्कूल के वार्षिकोत्सव पर चेतन ने उसे भजन

मंडली के मुखिया के हाथ में देखा और फिर किसी न किसी तरह पैसे जोड़कर वह एक प्रति खरीद लाया। वह भजन पुष्पांजलि उसे इतनी अच्छी लगी कि उस के प्रसिद्ध भजन उस ने एक दूसरी कापी में बड़े सुन्दर अक्षरों में लिखे। इसके बाद प्रति वर्ष भजन पुष्पांजलि का परिवर्द्धित संस्करण निकलता रहा और प्रति वर्ष वह उसे खरीद कर अपनी उस कापी में सुन्दर भजनों की वृद्धि करता रहा। वह उन्हें कंठस्थ करता रहा और बिना इस बात की चिन्ता किये कि उस का स्वर अच्छा है या नहीं, वह उन्हें गाता भी रहा।

धीरे-धीरे वह उन भजनों की तर्ज़ पर अपने भजन लिखने लगा। उसे मात्राओं अथवा छंदों का ज्ञान न था। बस गाकर ही वह देख लेता था और तुक के साथ तुक मिला लेता था।

जब वह ज़रा बड़ा हुआ तो कविता के साथ-साथ उसके मन में संगीत का भी शौक पैदा हो गया। वास्तव में जालंधर के हर लड़के को किसी न किसी हद तक संगीत का शौक अवश्य होता है। चेतन संगीतज्ञ तो क्या बनता (दोआबा के दूसरे तरुणों की तरह) बैतबाज बन गया और पंजाबी बैत* लिखने लगा। जालंधर के लड़कों में कविता और संगीत की रुचि वास्तव में वहाँ प्रति वर्ष होने वाले 'हरवल्लभ' के संगीत मेले के कारण होती है। हरवल्लभ के संगीत सम्मेलन में गाये जाने वाले पक्के गाने उस के अन्तर को झंकृत करने पर भी उस की समझ से बाहर की चीज़ थे, इसलिए वह दूसरे बेगिनती युवकों की भाँति संगीतज्ञों के मंडप को छोड़ 'पोने'† के बैतबाज़ों में जा शामिल

*बैत पंजाबी भाषा में चार पंक्तियों की कविता को कहते हैं। यह हिन्दी के चौपदों की भाँति होती है।

†पोना देवी तालाब के उस भाग को कहते हैं जिसे चार दीवारों से घेर कर स्त्रियों के स्नान को सुरक्षित कर रखा है। मेले के दिनों में वहीं बैत बाज़ी होती है।

पर अभ्यास कर लेने दिया करें। अपने तीसरे महीने के वेतन से उस ने यह सितार खरीद लिया था और जो पैसे बचे थे, उनसे ग़िलाफ़ बनवा लिया था। सारा महीना कैसे बीतेगा, इस बात की उसे चिन्ता न थी। कलाकार के गर्व से सिर उठाये वह चला जा रहा था। उसे लग रहा था जैसे उस के पाँव धरती पर नहीं पड़ रहे, हवा में पड़ रहे हैं। उस काली, कठोर सड़क से वह ऊपर उठ गया है और राग भीनी साँझ के उस रँगीले सौन्दर्य में उड़ा जा रहा है!

उस समय ही क्यों, प्रायः महीने भर से,—प्रायः उसी क्षण से जब उस ने पाँच नम्बर की सीढ़ियों पर खड़े होकर सुना था—कौन देस गया पिया मोरा बालम रे—वह धरती से ऊपर उठ गया था। उस के क्षण उन्मन और एकाकी न रहे थे। उस के स्वप्न उसे मिल गये थे।

उसे सपनों ही की आवश्यकता थी—सदैव सपनों ही की आवश्यकता रही थी—फिर वे स्वप्न चाहे नीला का प्रेम पाने के हों; चन्दा के साथ सफल-सुखद जीवन व्यतीत करने के हों; महान् चित्रकार, वक्ता अथवा लेखक बनने के हों; या फिर एक बार पुनः कालेज में प्रविष्ट होकर लाहौर के विद्यार्थी-जीवन का आनन्द लूटने के हों। वे स्वप्न ही उस का जीवन थे, जीवन की स्फूर्ति थे। उसी के क्यों, कदाचित् मानव मात्र के जीवन की स्फूर्ति यही स्वप्न हैं। शास्त्र कहते हैं—जीवन सपना है, किन्तु जीवन शायद, सपना नहीं। जीवन तो सड़क है—काली कठोर और ऊबड़ खाबड़! और स्वप्न वह स्फूर्ति हैं जो मानव को इस सड़क की कठोरता, इस की कालिमा, इस की कंटकाकीर्णता भुला कर इस से ऊपर उठा देते हैं और मानव हवा में तैरता हुआ सा अनुभव करता है। ये स्वप्न जितने रंगीन होते हैं, उतनी ही लगन से वह इस कठोर, काली, ऊबड़ खाबड़ सड़क पर भागा चला जाता है।

चेतन के स्वप्न भी उन दिनों आषाढ़ के बादलों की भाँति

उमड़े आते थे और चेतन की गति भी उन के साथ तीव्र हो रही थी। काम करने में अब उसका जी लगता था। वह प्रायः रोज़ पुस्तक का एक परिच्छेद लिखता और उसका संशोधन करता आ रहा था। वह इतनी तेज़ी से काम कर रहा था कि पुस्तक लगभग लिखी जा चुकी थी। उसी तेज़ी से वह संगीत की शिक्षा भी ग्रहण कर रहा था। स्वर-अध्याय को पार करके और विभिन्न सरगमों को पकाने के बाद अब उसने एक दो रागनियों के बोल भी सीख लिये थे। किन्तु उसके स्वप्न सदा की भाँति उस से कहीं आगे भाग रहे थे। यही कारण था कि यद्यपि उसका संगीत सम्बन्धी ज्ञान अभी न होने के बराबर था और यद्यपि उस का हाथ अभी ठीक ढंग से हारमोनियम के पर्दों पर चला भी न था, किन्तु उस ने दिलरुबा और सितार खरीद लिये थे और तबला लेने की चिन्ता में था। उसके पास धन का अभाव था, नहीं उसका बस चलता तो वह सारे के सारे बाजे एक ही बार खरीद लेता।

ये दोनों बाजे खरीद लेने पर चेतन ने बस नहीं की। दिलरुबा के लिए प्लाईवुड का खोल और सितार के लिए यह ग़िलाफ़ उसने बनवाया। दिलरुबा तो खैर कालेज ही में पड़ा रहता था, किन्तु यद्यपि उसे सितार लेकर बैठना भी न आता था, वह प्रति दिन सन्ध्या के समय सितार लेकर कालेज जाता और जाते अथवा आते समय सितार को बग़ल में दबाये माल अथवा लोअर बाज़ार का एक चक्कर लगाना न भूलता। इसके अतिरिक्त वह सारा दिन मिज़राब पहने रहता और जब किसी से बात करता तो अनजाने ही में मिज़राब वाली उंगली एक दो बार अवश्य दिखाता।

यह मिज़राब छोटी थी, अथवा क्योंकि उस ने पहले कभी न पहनी थी, इसलिए इससे चेतन की उंगली पर निशान बन गया था,

पीड़ा होने लगी थी और अब वह मिडिल बाज़ार के साज़वाले की दुकान पर जा रहा था कि अपेक्षाकृत कुछ बड़ी मिज़राब ले आये।

शिवालय के पास से होकर चेतन मिडिल बाज़ार में दाखिल हुआ। नानबाइयों की दुकानों से धुआँ उठ रहा था। सन्ध्या के धूमिल प्रकाश को और भी धूमिल बनाने वाले उस धुएँ में कुछ हातो अपने मैले गंदे शरीरों पर कीचड़ से चीथड़े लपेटे खाना खा रहे थे। चेतन अपने ध्यान में मग्न पथरीली गली में चलता चलता वाद्य-यन्त्रों वाले की दुकान पर पहुँचा और उस ने एक मिज़राब माँगी।

उस समय वहाँ एक और व्यक्ति चेतन ही की तरह पुराना ओवर-कोट पहने खड़ा था। चेतन के सामने उस ने भी मिज़राब खरीदी। चेतन ने उस व्यक्ति को एक नज़र देखा। उस के सिर पर एक तुर्की टोपी थी, किन्तु गंजेपन की हद को पहुँचे हुए उसके मस्तक को छिपाने में वह सर्वथा अशक्त थी। उसके गले में मोटी मलमल की चुन्नटदार कमीज़ और टाँगों में मैला-सा पायजामा था। 'कोई पहुँचा हुआ कलाकार है'—चेतन ने मन ही मन सोचा। प्रो० सिंह सितार के उतने विशेषज्ञ न थे, यह उस ने सितार खरीदते ही जान लिया था और यद्यपि चेतन का दिलरुबा भी उन्होंने बड़ी शान से अपने कालेज में रख छोड़ा था, किन्तु उसे बजाने का अवसर कभी न आया था। उन के गले में रस था और हारमोनियम वे बड़ी निपुणता से बजा लेते थे, बस इससे अधिक वे कुछ न जानते थे। इसलिए चेतन बहुत दिनों से किसी ऐसे व्यक्ति की खोज में था जो उसे सितार की शिक्षा दे सके। इस कलाकार को देखते ही उस ने तत्काल फ़ैसला कर लिया कि वह अवश्य उस से सितार बजाना सीखेगा। जब वह व्यक्ति मिज़राब लेकर

चलने लगा तो चेतन ने उस के साथ चलते हुए पूछा, "आप भी सितार का शौक़ रखते हैं?"

कलाकार के ओठों पर एक थकी सी मुस्कान फैल गई, "जी योंही कुछ बजा लेता हूँ!"

चेतन ने समझा अपरिचित कलाकार-सुलभ-विनम्रता से काम ले रहा है। उस ने अपना परिचय दिया, प्रो० सिंह से अपने सम्बन्ध का उल्लेख किया और फिर प्रार्थना की कि यदि वे अपना निवास-स्थान दिखा दें तो वह कभी-कभी आ जाया करेगा। और जब उस अपरिचित कलाकार ने किसी प्रकार की आपत्ति प्रकट न की तो चेतन उसी तरह बगल में सितार लिये उस के साथ चल पड़ा।

मिडिल बाज़ार को पार करके वे माल पर चढ़े और वहाँ से स्टेशन को जानेवाली सड़क की ओर मुड़ गये। सूरज कब का छिप गया था। अँधकार में बिजली के लैम्प किसी विरन्न की आशाओं से द्युतिमान थे। कलाकार चुप था। चेतन भी चुप था। वातावरण भी चुप था। उस बढ़ते हुए अंधकार में चेतन को दिशा अथवा मार्ग का कोई ज्ञान न रहा। उसे लगा जैसे वे कई मील चले आये हों, जैसे उन्हें चलते घण्टों बीत गये हों। उस का जी वापस होने को व्यग्र हो उठा। यदि उसे ज्ञात होता, अपरिचित कलाकार इतनी दूर रहता है, तो कभी न आता। उसे तो दस बजे घर पहुँच जाना चाहिए। पर अब इतनी दूर आकर वापस लौटने को उस का मन न हुआ। वह चुपचाप चलता गया।

सीधी सड़क से हटकर कई दूसरी सड़कों और टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डियों को पार करके वह अपरिचित उसे जिस कमरे में ले गया, वह किसी कोठी का किचन (रसोईघर) था—अत्यन्त गंदा और दुर्गन्ध भरा। पत्थर के कोयले की दुर्गन्ध, अंगीठी के जल चुकने के बाद भी, अभी

तक कमरे में बसी हुई थी। चेतन का दम घुटने सा लगा। कुछ क्षण बाद उसे ज्ञात हुआ कि रसोईघर में केवल पत्थर के कोयले की दुर्गन्ध ही नहीं, बल्कि न जाने कितने प्रकार के मांस मछली की दुर्गन्ध भी मिली है—इस प्रकार कि उस का विश्लेषण करना कठिन है। चेतन को म्यूज़िक कालेज के बराबर वाले रेस्तोराँ की याद हो आई। उस के पास से गुज़रने पर भी उस के किचन से ऐसी ही बू नाक में प्रवेश कर दम घोंटने लगती थी। किचन की दशा देखने पर चेतन को लगा जैसे साहब को कभी स्वप्न में भी ध्यान नहीं आता कि जो पदार्थ धुली धुलाई प्लेटों में लगा, अत्यन्त स्वादिष्ट होकर उस के सामने पहुँचता है, वह अपने पीछे कितनी दुर्गन्ध छोड़ आता है। चेतन का अपना बचपन अत्यन्त स्वच्छ वातावरण में बीता था। उन का रसोईघर अत्यन्त साफ सुथरा था। फर्श धुला, चूल्हा-चौका पुता और बर्तन टोकरे में पड़े चमचमाते रहते थे। स्वच्छता की सुगन्धि सी वहाँ से आती रहती थी। वह क्षण भर भी उस किचन में रहना न चाहता था, किन्तु जब उस कलाकार ने एक कोने में पड़े हुए मैले से सन्दूक की ओर संकेत किया तो वह बिना कुछ कहे विमूढ़ सा उस पर बैठ गया।

तब वह कलाकार वहीं एक खूँटी पर टंगा हुआ एक छोटा सा धुआँसा कछुआ उठा लाया जिसकी चिकारियाँ टूटी हुई थीं और जिसके तूम्बे पर धुएँ की इतनी मैल जमी हुई थी कि असली रङ्ग ही लुप्त हो गया था। तब वहीं एक मैले से स्टूल पर बैठ कर उस कलाकार ने चेतन को सितार का पहला पाठ पढ़ाया :

दिर दा रा, दा रा, दा दा रा

चेतन की समझ में कुछ न आया। उस ने पूछा, "आप क्या बजा रहे हैं!"

"मेरी भैंस के डंडा क्यों मारा !"—कलाकार ने सितार बजाते हुए गम्भीरता से कहा ।

चेतन स्तम्भित सा उस के मुँह की ओर देखने लगा ।

"हमारे उस्ताद ने हमें पहले यही सिखाया था," पहुँचे हुए कलाकार ने कहा, "ज़रा अपना सितार निकालो ।"

चेतन का जी वहाँ से भाग जाने को हो रहा था । पर उस ने अपना सितार निकाला । तब कलाकर ने चेतन को बताया कि तार पर मिज़राब की चोट से 'दा' कब बजता है, 'रा' कब 'दिर' कब, और उस ने बजाया :

दिर दा रा, दा रा, दा दा रा

और गाया

मेरी भैंस के डंडा क्यों मारा !

चेतन ने यह पाठ काग़ज़ पर लिख लिया, एक दो बार सितार पर बजा भी लिया, किन्तु उसे लगा कि यदि वह कुछ और देर उस रसोई घर में बैठा तो उस के सिर में असह्य पीड़ा होने लगेगी । उस की कनपटियों में दर्द होने लगा था और जी घबरा रहा था, इस लिए उस ने जाने की आज्ञा माँगी ।

किन्तु उस समय वह कलाकार, जो न जाने साहब का बैरा था, जमादार था, या धोबी, तन्मय होकर सितार बजाने में लीन था । खानासामा फ्राइंग पैन में जाने किस चीज़ को छौंक रहा था कि धुएँ से चेतन की आँखों में पानी निकल आया और वह खाँसने लगा । बेबसी की दृष्टि से उस ने उस कलाकार की ओर देखा—आँखें बन्द थीं और मिज़राब तारों पर चल रही थी ।

अन्ततोगत्वा जब उस कलाकार ने गाना समाप्त करके आँखें खोलीं तो चेतन ने भरे हुए गले से फिर जाने की आज्ञा चाही । कलाकार अपने उस कछुए को साथ ही लिये हुए उस किचन से बाहर निकल

आया और चेतन को अपने निवास-स्थान पर ले गया, जो अत्यन्त अँधेरी, सील भरी, दिये की लौ से प्रकाशित, उस कोठी के सर्वेण्टस क्वार्टरज़ की एक कोठरी थी—नौकरों के ये क्वार्टर एक दोमंज़िले छप्पर की सूरत में थे। इस छप्पर में तीन-चार कोठरियाँ नीचे और तीन-चार ऊपर थीं। लकड़ी की एक हिलती सी सीढ़ी से चढ़ कर उस कलाकार के पीछे पीछे चेतन ऊपर उस की कोठरी में पहुँचा। और क्योंकि उसे वापस जाने का मार्ग न ज्ञात था और उस कलाकार को उस जैसे प्रशंसक के आगे अपनी कला के प्रदर्शन का कदाचित पहला ही अवसर मिला था, इसलिए उस सील भरी कोठरी के म द्धम प्रकाश में एक पुरानी सी चटाई पर बैठ कर चेतन को दो चार गतें और सुननी पड़ीं। उस के हृदय में उस समस्त वातावरण के प्रति कुछ ऐसी घृणा उत्पन्न हो रही थी कि उस कलाकार ने क्या गाया, उस ने कुछ भी नहीं सुना। उस का जी तो उस समय उस कलाकार को एक दो बार झकझोर, उस के कद्दुए को उस के सिर पर पटक, उस कोठरी, उस किचन, उस घुटन, उस अंधकार से एक दम भाग कर बाहर की स्वच्छ, स्वच्छन्द वायु में साँस लेने को व्यग्र हो रहा था।

किन्तु जब उसे वह स्वच्छ वायु साँस लेने को मिली तो न जाने क्या बजा था। सड़क पर दूर-निकट एक भी व्यक्ति दिखाई न देता था। आकाश पर से चाँद की एक फाँक धूमिल प्रकाश फेंक रही थी। चेतन को लगा जैसे वह उस की विवशता पर वक्र हँसी हँस रही है और समस्त तारे उस हँसी में योग रहे हैं। उस की आँखों में आंसू छलक आये और उस के जी में आया कि सितार को पूरे ज़ोर से

किनारे के पत्थर पर पटक कर टुकड़े-टुकड़े कर दे और घुमा कर कर खड्ड में फेंक दे, ज़ोर-ज़ोर से उस पहुँचे हुए कलाकर को गालियाँ दे और सरपट घर की ओर भागे, लेकिन भती उस के सामने छः महीने पहले की एक घटना घूम गई जब उस ने स्वयं उस कलाकर का सा व्यवहार किया था।

वह चंगड़ मुहल्ले में रहता था और उस की कुछ कहानियाँ उस के दैनिक पत्र में छपी थीं। उन्हीं दिनों एक प्रातः एक युवक उस से मिलने आया। चेतन उस समय कमरे की सफ़ाई करके दातौन मुँह में दबाये मेज़ के काग़ज़ ठीक कर रहा था। जब उसे ज्ञात हुआ कि वह उन के समाचार पत्र का प्रतिनिधि है, उसे कविता और कहानी लिखने का शौक है और चेतन की नयी कहानी उस ने पढ़ी है (जो उसे बहुत अच्छी लगी है) तो चेतन ने अपनी पुरानी कहानियों का उल्लेख किया। वह अपनी फ़ाइल उठा लाया, दातौन उस ने एक ओर रख दी और एक कहानी सुनाने लगा। इस के बाद बिना अपने सुनने वाले के भावों को जाने, वह एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी कहानी सुनाता गया था। जब उस की सब लिखी हुई कहानियाँ समाप्त हो गई थीं तो दो बजे थे और बेचारे पत्र प्रतिनिधि के ओठों पर भूख प्यास के कारण पपड़ियाँ जम गई थीं। उस प्रतिनिधि की आकृति चेतन की आँखों में घूम गई और उस के आँसू एक हल्की सी मुस्कान में बदल गये। फिर वह ज़रा हँसा और फिर उस सड़क पर खड़े खड़े उस ने अपनी और उस कलाकार दोनों की मूर्खता पर और भी ज़ोर से ठहाका लगाया और सितार को उसी प्रकार बग़ल में लिये हुए चल पड़ा।

जब वह घर पहुँचा तो रात बहुत बीत चुकी थी। वह इतना थक गया था कि वहीं सीढ़ियों पर बैठ गया। चारों ओर शान्ति थी। चेतन

आया और चेतन को अपने निवास-स्थान पर ले गया, जो अत्यन्त अँधेरी, सील भरी, दिये की लौ से प्रकाशित, उस कोठी के सर्वेण्टस क्वार्टरज़ की एक कोठरी थी—नौकरों के ये क्वार्टर एक दोमंज़िले छप्पर की सूरत में थे। इस छप्पर में तीन-चार कोठरियाँ नीचे और तीन-चार ऊपर थीं। लकड़ी की एक हिलती सी सीढ़ी से चढ़ कर उस कलाकार के पीछे पीछे चेतन ऊपर उस की कोठरी में पहुँचा। और क्योंकि उसे वापस जाने का मार्ग न ज्ञात था और उस कलाकार को उस जैसे प्रशंसक के आगे अपनी कला के प्रदर्शन का कदाचित पहला ही अवसर मिला था, इसलिए उस सील भरी कोठरी के मद्धम प्रकाश में एक पुरानी सी चटाई पर बैठ कर चेतन को दो चार गतें और सुननी पड़ीं। उस के हृदय में उस समस्त वातावरण के प्रति कुछ ऐसी घृणा उत्पन्न हो रही थी कि उस कलाकार ने क्या गाया, उस ने कुछ भी नहीं सुना। उस का जी तो उस समय उस कलाकार को एक दो बार झकझोर, उस के कछुए को उस के सिर पर पटक, उस कोठरी, उस किचन, उस घुटन, उस अंधकार से एक दम भाग कर बाहर की स्वच्छ, स्वच्छन्द वायु में साँस लेने को व्यग्र हो रहा था।

किन्तु जब उसे वह स्वच्छ वायु साँस लेने को मिली तो न जाने क्या बजा था। सड़क पर दूर-निकट एक भी व्यक्ति दिखाई न देता था। आकाश पर से चाँद की एक फाँक धूमिल प्रकाश फेंक रही थी। चेतन को लगा जैसे वह उस की विवशता पर वक्र हँसी हँस रही है और समस्त तारे उस हँसी में योग रहे हैं। उस की आँखों में आँसू छलक आये और उस के जी में आया कि सितार को पूरे ज़ोर से

किनारे के पत्थर पर पटक कर टुकड़े-टुकड़े कर दे और घुमा कर कर खड्ड में फेंक दे, ज़ोर-ज़ोर से उस पहुँचे हुए कलाकर को गालियाँ दे और सरपट घर की ओर भागे, लेकिन तभी उस के सामने छः महीने पहले की एक घटना घूम गई जब उस ने स्वयं उस कलाकर का सा व्यवहार किया था।

वह चंगड़ मुहल्ले में रहता था और उस की कुछ कहानियां उस के दैनिक पत्र में छपी थीं। उन्हीं दिनों एक प्रातः एक युवक उस से मिलने आया। चेतन उस समय कमरे की सफ़ाई करके दातौन मुँह में दबाये मेज़ के काग़ज़ ठीक कर रहा था। जब उसे ज्ञात हुआ कि वह उन के समाचार पत्र का प्रतिनिधि है, उसे कविता और कहानी लिखने का शौक है और चेतन की नयी कहानी उस ने पढ़ी है (जो उसे बहुत अच्छी लगी है) तो चेतन ने अपनी पुरानी कहानियों का उल्लेख किया। वह अपनी फ़ाइल उठा लाया, दातौन उस ने एक ओर रख दी और एक कहानी सुनाने लगा। इस के बाद बिना अपने सुनने वाले के भावों को जाने, वह एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी कहानी सुनाता गया था। जब उस की सब लिखी हुई कहानियाँ समाप्त हो गई थीं तो दो बजे थे और बेचारे पत्र प्रतिनिधि के ओठों पर भूख प्यास के कारण पपड़ियाँ जम गई थीं। उस प्रतिनिधि की आकृति चेतन की आँखों में घूम गई और उस के आँसू एक हल्की सी मुस्कान में बदल गये। फिर वह ज़रा हँसा और फिर उस सड़क पर खड़े खड़े उस ने अपनी और उस कलाकार दोनों की मूर्खता पर और भी ज़ोर से ठहाका लगाया और सितार को उसी प्रकार बग़ल में लिये हुए चल पड़ा।

जब वह घर पहुँचा तो रात बहुत बीत चुकी थी। वह इतना थक गया था कि वहीं सीढ़ियों पर बैठ गया। चारों ओर शान्ति थी। चेतन

ने चाहा किवाड़ खटखटाये, किन्तु उसे साहस न हुआ। कल्पना ही कल्पना में बीबी जी के मस्तक के तेवर उसकी आँखों के सामने घूम गये। वह कई बार उठा और कई बार बैठा, पर उसे किवाड़ खटखटाने का साहस न हुआ। फिर न जाने कब नींद ने उस पर अधिकार जमा लिया और सीढ़ियों के कोने में, दरवाज़े और दीवार का सहारा लिये, टाँगों को सिकोड़ कर ओवर कोट में छिपाये वह सो गया।

—०—

४८

यद्यपि वह सारी रात बाहर शीत में पड़ा ठिठरता रहा था, किन्तु इस से उस के संगीत-प्रेम में किसी प्रकार की कमी न आई थी। कलाकारों को प्रायः ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, उसने मन में सोचा था और संगीत में निपुण होने का निश्चय उसके हृदय में दृढ़ से दृढ़तर हो गया था।

स्वर का यह जादू भी कैसा जादू है! लय और तान में बँधा हुआ, सुन्दर कंठ से निकला स्वर न जाने कैसा मन्त्र फूँक देता है कि मनुष्य तन्मय होकर, सुध-बुध बिसरा कर, मन्त्र-मुग्ध सा हो जाता हैं। चेतन चाहता था, उस के स्वर में भी ऐसी ही मोहिनी उत्पन्न हो जाय और वह भी अपने स्वर की तरलता से श्रोताओं को मुग्ध कर सके। कैसा होगा वह दिन जब वह तन्मय होकर गायगा और श्रोता उस स्वर के सम्मोहन से विमुग्ध सुनेंगे! उस दिन को निकट लाने के लिए वह

कटिबद्ध हो गया ।

उस की इस सनक में सहयोग देने और उस के उत्साह को दुगना करने के लिए एक साथी भी उसे मिल गया—दुर्गादास ।

एक दिन चेतन इतना उदास और विक्षुब्ध था कि कमरे में बैठना उस के लिए दुष्कर हो रहा था । बात कुछ भी न थी । सुबह-सुबह सामने के मकान में रहने वाले बाबू चरण दास से उस की झपट हो गई थी । वे मिलिट्री एकाउण्टस में हेड क्लर्क थे, उन के अति कुरूप काली कलूटी दो लड़कियाँ थीं, इस पर भी बाबू साहब ने कुदृष्टि से शायद उन की रक्षा करने के हेतु बरामदे में मोटी मोटी चिकें लगा रखी थीं, चिकों के पीछे पर्दे थे और वे स्वयं आठों पहर चौकस बने रहते थे ।

उन की इस सन्देहशीलता को देखते हुए चेतन जब व्यायाम करता था तो अपने कमरे के किवाड़ लगा लेता था । किन्तु कमरे में कोई वातायन नहीं था (और खिड़की भी क्योंकि उन के बरामदे के सामने खुलती थी, इस लिए वह उसे भी बन्द कर लेता था) इस कारण कई बार उस का दम घुटने लगता था और वह कभी कभी साँस लेने को किवाड़ खोल लेता था । उस सुबह जब उस का दम घुटा, उस ने उसी प्रकार मालिश किये, लंगोट लगाये हुए साँस लेने को किवाड़ ज़रा से खोले । तभी बाबू चरण दास ने अंग्रेज़ी भाषा में उसे डाँटा कि वह क्यों यों अपने शरीर की नुमाइश कर रहा है ।

चेतन ने स्तम्भित हो सहसा किवाड़ बन्द कर लिये पर किवाड़ लगाते ही क्रोध से उस का तन-मन जल उठा । शब्द कोष की सहायता से उस ने अंग्रेज़ी में एक ज़ोरदार पत्र बाबू चरण दास को लिखा कि उन्हों ने भ्रम-वश उस पर ऐसा आरोप लगाया है और उस ने तो केवल दम घुट जाने के कारण किवाड़ तनिक से खोले थे, उस ने उन के उस व्यंग्य पर आपत्ति की और उन से अपने शब्द वापस लेने को कहा ।

बाबू साहब ने उस से क्षमा माँग ली, किन्तु उन्हों ने कविराज जी से शिकायत कर दी और कविराज जी ने अन्दर से एक पर्दा लाकर चेतन के दरवाज़े पर डाल दिया।

यह घटना प्रकट में बड़ी साधारण थी, पर चेतन के अति भाव-प्रवण मन पर इसका बड़ा प्रभाव हुआ। उसे अपनी हीनता का एक बार फिर आभास मिला। किन्तु इस बार उस के पाँव नहीं उखड़े। कविराज जी ने जब मीठे शब्दों में उस से पर्दा गिरा कर व्यायाम करने के लिए कहा तो वह मन ही मन हँस दिया।

परिस्थितियों को उन के यथार्थ रूप में लेना उस ने सीख लिया था। इस घटना को उस परिस्थिति में घटने वाली एक अति साधारण घटना समझ कर उस ने पूर्ववत् काम भी करना आरम्भ कर दिया था।

आरम्भ तो कर दिया था, किन्तु प्रयास करने पर भी वह उसे आगे न बढ़ा सका था। जब वह कविराज जी के साथ दरवाज़े पर पर्दा लगा रहा था तो क्षण भर को वे पड़ोसी महाशय बरामदे में आये थे और चेतन की निगाहें उन से चार हुई थीं। कुटिल चातुर्य के साथ विजय के उल्लास की एक हल्की सी रेखा उन की आँखों से निकल कर चेतन को उन के ओठों पर फैलती हुई दिखाई दी थी। वही रेखा काम करते-करते अनजाने ही उस के सामने आ जाती। एक बेबस क्रोध से पीड़ित होकर वह मन ही मन घायल साँप की तरह बल खाने लगता। फिर सिर को झटक कर उस आकृति को मस्तिष्क के पर्दे से हटा कर, वह काम बढ़ाने का प्रयास करता, पर घूम फिर कर वही विजय के उल्लास से आच्छन्न उन की आकृति उस के सामने उभरने लगती—वही कुंचित, कुटिल, हास-व्यंग्य-युक्त मुस्कान! और एक तीव्र-आक्रोश से

भर कर वह चाहता कि उस प्रसन्न मुख पर तेज़ छुरे से ऐसी गहरी लकीर खींच दे कि वह प्रसन्नता एक झुलसे हुए फूल की भाँति मुरझा कर स्याह पड़ जाय। कल्पना ही कल्पना में चेतन के आक्रोश ने कई बार वह गहरा घाव वहाँ बनाया, पर वह आकृति रक्त-स्राव के कारण श्वेत और फिर काली पड़ने के बदले और भी प्रसन्न, और भी उत्फुल्ल बन-बन उस के सामने आई।

तब सिर को एक ज़ोर का झटका दे और काग़ज़ कलम दवात पटक कर चेतन उठा, उस ने किवाड़ लगाये और चल पड़ा। किधर जाय ? वह निश्चय न कर सका। निरर्थक और निरुद्देश्य माल पर घूमने को उस का मन न हुआ। वह चुपचाप कमेटी के नल के निकट नीचे को जाने वाले मार्ग के जंगले पर जा खड़ा हुआ। कितनी देर तक वहीं कोहनी टिकाये अन्यमनस्क खड़ा रहा। नीचे घाटी में चीड़ के वृक्षों को अनिमेष तकता रहा। ऊपर से आने वाला नाला सूखा पड़ा था। उसे देख कर सहसा उसे विचार आया कि नीचे, कहीं बहुत नीचे उपत्यका में, जहाँ पहाड़ों से रिस-रिस आने वाली पानी की धाराएँ मिल कर कल कल बहती सरि का रूप धर लेती होंगी, वह अवश्य बह रहा होगा। 'तो क्यों न आज वह नीचे खड्ड में जाय,' उस ने सोचा, 'कुछ क्षण के लिए नीचे द्रोणी की गोद मे लेटे किसी एकाकी झरने के किनारे, किसी पत्थर या चट्टान पर जा बैठे; प्रकृति के विशाल सुख भरे अंक में क्षण भर के लिए अपने आप को विसर्जित कर दे; पत्तों की 'मर मर' और पानी की 'कल कल' अपने संगीत से उस के मन का समस्त कलुष, सारा क्रोध, सब आक्रोश हर दे; उस के दुख को, हीन-भाव को मिटा दे; एक स्वप्निल तन्द्रा, एक तन्द्रिल व्यामोह, शीतल ठंडे लेप सरीखा उस के शरीर को परिप्लुत कर, उस के सारे घावों को भर दे!'......और वह नीचे की ओर चल पड़ा।

इतने दिन उसे यहाँ आये हो गये थे, किन्तु वह कभी नीचे की ओर न उतरा था। उसे उधर जाने का कभी ध्यान न आया था। उत्साह से भरे उस के पग जब भी उठे थे, ऊपर ही की ओर उठे थे। नीचे की ओर भी कुछ है, उस ने कभी न जाना था। चलते-चलते चेतन को ज्ञात हुआ कि रुल्दू भट्टा उतना ही नहीं जितना वह समझता था। आठ दस मकान और उन से घिरा हुआ एक चौक—उस स्थान की कुल परिधि को वह इतने तक ही सीमित समझता था। किन्तु उस निचले मार्ग पर चलते हुए उस ने देखा—मकानों की दो पंक्तियाँ उस मार्ग के दोनों ओर भी बनी हुई हैं। दायीं ओर की पंक्ति कुछ ऊपर को है और बायीं ओर की कुछ नीचे को। चेतन अपने ध्यान में मग्न चला जा रहा था कि उसे एक बड़ा मंडुवा दिखाई दिया—बिलकुल वैसा ही जैसा पुराने ज़माने में सफ़री थीयेट्रों के लिए बनाया जाता था। अन्तर केवल इतना था कि यह पक्का था। उस मंडुवे के परे मकानों की पंक्तियाँ समाप्त हो गई थ और मार्ग नीचे खड्ड को उतर जाता था। मंडुवे को देख कर चेतन को बड़ा कुतूहल हुआ और नीचे की ओर जाने के बदले वह उस के अन्दर चला गया। उस ने देखा कि नीचे एक बहुत बड़ा हाल है और वह उस की बालकोनी में खड़ा है।

उस हाल का नाम (जैसा कि चेतन को बाद में पता चला) 'विश्वकर्मा हाल' था। उस के बनाने वाले अपने आप को देवराज इन्द्र के उस प्रवीण शिल्पी का वंशज बताते थे, जिसने भक्त सुदामा के घर पहुँचने से पहले, भगवान कृष्ण की इच्छानुसार उस के झोंपड़े की जगह एक अपूर्व भव्य प्रासाद निर्मित कर दिया था। यह और बात है कि विश्वकर्मा के ये वंशज इस कलि काल में निरे बढ़ई होकर रह गये थे। १६१४ के महायुद्ध में जब बढ़इयों में से कुछेक को सरकारी ठेके मिल

गये और उन्हों ने राशि-राशि धन संचित किया और धन के साथ-साथ उन की जाति-चेतना भी बढी तो वे विश्वकर्मा के वंशज बन गये। अपनी जाति को संगठित करके उन्हों ने एक समाज की नींव रख दी और फिर उस समाज के मिल बैठने के लिए एक भवन का भी निर्माण हो गया।

हाल में जाने का मार्ग नीचे से था। ऊपर का मार्ग तो एक छोटी सी बालकोनी में खुलता था जो चारों ओर बनी हुई थी। इसी ऊपर के मार्ग से होकर चेतन बालकोनी में पहुँचा। यह मार्ग साधारणतः महिलाओं के लिए था जो वार्षिक अधिवेशन पर बालकोनी में बैठकर तमाशा देखती थीं। किन्तु यह तमाशा तो साल में एक बार होता था, इस लिए बालकोनी खाली पड़ी थी, उस में एक ओर को दो टूटी चारपाइयाँ खड़ी थीं और कुछ लकड़ी का टूटा फूटा फर्नीचर पड़ा था। इस बालकोनी के साथ दक्खिन की ओर दो कमरे बने हुए थे। उत्सुकता चेतन को वहाँ ले गई। एक कमरे में नंगे शरीर, केवल एक साफ़ा बाँधे एक महाशय चूल्हे में फूंकें मार रहे थे। चेतन के पैरों की चाप सुन कर उन्हों ने सिर उठाया। मँझला क़द, छरहरा शरीर, गोरा रंग, पीठ और वक्ष पर हल्के हल्के बाल, उम्र शायद कम, किन्तु देखने पर बत्तीस पैंतीस की, कल्ले धँसे, चुंधी आँखों के गिर्द गढ़े और उन पर चश्मा—चेतन को देखकर नमस्कार के रूप में तनिक सा हँसते हुए वे उस के पास आये तो चेतन ने देखा कि उन के मुख पर अभी से झुर्रियाँ पड़ने लगी हैं और इस हँसी में एक विचित्र प्रकार का नम्र-भाव है।

"बैठिए, बैठिए!" उन महाशय ने चारपाई की ओर संकेत करते हुए कहा।

चेतन वहाँ बैठ गया और फिर दो घंटे तक बैठा रहा। जब वह उन महाशय के खाना पकाने, नहाने, खाने, गाना सुनने, सुनाने,

पहनने, किवाड़ बन्द करके दफ़्तर चलने तक साथ साथ बातें
के बाद, कमेटी के नल पर उन का साथ छोड़ कर, घर आया
वह अपना प्रातः का अपमान और उस के फल-स्वरूप प्रकृति के
में जा सोने की बात सर्वथा भूल चुका था। एक नया उत्साह,
नयी स्फूर्ति से उस के पाँव जैसे धरती पर न पड़ रहे थे।

इन्हीं महाशय का नाम दुर्गा दास था।

—०—

४६

दुर्गादास जन्म से बढ़ई थे, किन्तु अपने जन्मजात कर्म को छोड़
मैट्रिक पास करके, वे शिमले के बड़े डाकखाने में क्लर्क हो गये
क्योंकि वे अपने साथियों से अधिक पढ़े लिखे थे, इसलिए उस सभा
अवैतनिक उप-मन्त्री भी बन गये थे और सभा ने उनके रहने के
ए बालकों के साथ बने हुए दो कमरे दे रखे थे।

वे अपना खाना स्वयं पकाते थे और विचारों से, आर्यसमाजी होने
कारण प्रातःसायं सन्ध्या-वन्दन भी करते थे। चेतन को उन से
भी ज्ञात हुआ कि उन की पत्नी का देहान्त हो चुका है, उन्हें उस
बहुत प्यार था और उसी के हेतु उन्हों ने अपना आध सेर रक्त
ा था।

अपनी वयस से तो वे कुछ अधिक लगते थे तो उस का कारण
ों बालों के अतिरिक्त उन की वेश-भूषा भी थी। सिर पर पगड़ी,

गले में गबरून की कमीज़ और कोट और टाँगो में उटुंग पायजामा। यह भूषा उन की आँखों और कल्लों के गढ़ों और उन के गालों पर पड़ने वाली झुर्रियों के साथ मिलकर उन की वयस को बढ़ा देती थी। जब भी उनके स्वास्थ्य की चर्चा चलती, वे अपनी पत्नी के मर्मान्तक रोग और उस के हेतु किये गये अपने रक्तदान का सविस्तार बखान करते। उस ज़माने में अस्पतालों में ब्लड-बैंक* नहीं थे। जब डाक्टर ने कहा कि उनकी पत्नी के शरीर में रक्त बेहद कम हो गया है, यदि कोई रक्त देने को तैयार हो जाय तो उसकी जान बच सकती है तो उन्होंने झट अपने आप को पेश कर दिया। हर बार जब वे अपने उस त्याग का उल्लेख करते तो रक्त की मात्रा को कुछ न कुछ बढ़ा देते। उन के स्वर में अपने आपको संतोष देने का कुछ ऐसा प्रयास था कि चेतन को कभी कभी लगता, मानो उन्हें अपने इस त्याग पर पश्चात्ताप है और मानो बार-बार उस का बखान वे अपने आप को उस त्याग की महिमा जताने के लिए ही करते हैं। चेतन को लगता था जैसे उन के अन्तर में सदैव कोई कहता रहता है—"तुम मूर्ख हो, निरे गधे! भला एक मरने वाली नारी के लिए कोई यों प्राण देता है?" और जैसे उस आवाज़ को झुठलाने के लिए वे नित्य द्विगुण उत्साह से इस घटना का बखान करते हुए अपने त्याग की महिमा को सिद्ध करते थे।

जब भी चेतन उनके त्याग का यह बखान सुनता, उसे एक बुड्ढे मियाँ की याद आ जाती—

एक बार वह बड़े डाकखाने में टिकट लेने गया। भीड़ अधिक

---

*Blood Bank = अस्पतालों के ऐसे विभाग जहाँ दुर्बल रोगियों की सहायता के लिए सबल लोगों का रक्त इकट्ठा किया जाता है

थी। टिकट देने वाला युवक कुछ खोया-खोया सा काम कर रहा न जाने उस के घर में कोई मृत्यु हो गई थी अथवा कोई दूसरी थी—उस का ध्यान अपने काम में न था। खोया-खोया सा वह दाम ले लेता और टिकट आदि खिड़की से बढ़ा देता। मियाँ जी को उस ने बारह आने के टिकट अधिक दे दिये थे। जी ने जब उन्हें गिना तो निमिष भर के लिए उन के मन में हुआ—बारह आने! वे निर्धन थे और बारह आने उन के लिए महत्व न रखते थे। हो सकता है वे कुछ अधिक सोचते तो आने रख ही लेते, किन्तु उन्होंने सोचा नहीं और उस बाबू से कि उस ने हिसाब ठीक कर लिया है कि नहीं। जब उस अन्यमनस्कता से 'हाँ' कहा तो वे हँसे और उन्होंने फिर एक बार (को सुना कर) उस से हिसाब जोड़ने को कहा। उन का स्वर जैसे रहा था—'मियाँ साहबज़ादे, इस बेपरवाही से काम करोगे तो कै चलेगा! कुछ मन लगा कर काम किया करो, नहीं नौकरी से हाथ बैठोगे या सारा वेतन घाटे में भर दोगे!' पर जब इस पर भी युवक ने उन की ओर ध्यान न दिया तो कुछ खिन्नता और कुछ क्रोध हँसते हुए उन्होंने उसे बताया कि बारह आने के टिकट बाबू स तुमने ज्यादह दे दिये हैं। इस पर जब उस युवक ने अनमनी मुस्कान के साथ आँखों ही में उन्हें धन्यवाद देकर टिकट वापस ले तो उन मियाँ जी को लगा कि उन्होंने व्यर्थ ही उस कृतघ्न को ब आने के टिकट लौटा दे। बारह आने से उन की एक दिन की चल जाती। किन्तु फिर कदाचित् उन्होंने अपने आप को समझ कि उन का धर्म तो ईमानदारी है, कोई धन्यवाद दे या न दे! [illegible] लोगों को सुना कर अपनी ईमानदारी का बखान करने लगे [illegible] ईमानदारी की [illegible]। इस

बददयानती से क्या बरकत होती है! बरकत तो उसी में है, जो मौला देता है! आदि आदि......।

नेकी कर और दरिया में डाल— जिसने भी मानवों को यह परामर्श दिया उसे मानव-मन का ज्ञान कदाचित लेश-मात्र भी नहीं था। मानव अपने किये का प्रतिकार चाहता है। यह प्रतिकार वैसे ही किसी काम के रूप में हो अथवा कृतज्ञता के दो मधुर शब्दों के रूप में—यह प्रतिकार ही उस के कृतित्व को स्फूर्ति प्रदान करता है। जहाँ नेकी कर के दरिया में डाली जाती है, या जहाँ बदला नहीं मिलता, वहाँ धीरे-धीरे वह लुप्त हो जाती है, या फिर नेकी करने वाले जीवन भर अपने मन को, अपने मित्रों को, उस की महत्ता बताते रहते हैं और इस प्रकार स्वयं ही उस अभाव की पूर्ति कर लेते हैं। अपनी पत्नी के लिए दुर्गादास ने जो रक्त दिया था, उस के लिए कृतज्ञ होने वाला इस संसार में न रहा था और कदाचित इस लिए उस कृतज्ञता की भूख भी उनमें प्रबल थी।

पत्नी के देहावसान के पश्चात् दुर्गादास ने अभी तक दूसरा विवाह न किया था। जिस दिन चेतन पहले पहल उन से मिला, उसे ज्ञात हुआ कि विवाह की ओर से वे वीतराग से हो गये हैं। उन्हें इच्छा ही नहीं होती। किन्तु धीरे-धीरे ज्यों ज्यों चेतन की घनिष्ठता उन से बढ़ती गई, उसे लगा कि प्रकट विवाह के प्रति वे जितनी उदासीनता दिखाते हैं, अप्रकट वे उसके लिए उतने ही लालायित हैं। जब भी उन की बिरादरी के लोग आते तो किसी न किसी तरह अपनी स्वर्गीया पत्नी की बात चला कर उस समस्त सेवा तथा त्याग का वर्णन बड़े उत्साह से करते ताकि लड़की वालों को आभास मिल जाय कि

उन की लड़कियों के लिए उन से अच्छा वर मिलना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। अपनी पत्नी की इतनी सेवा, उस के लिए इतना त्याग कोई विरला ही कर सकता है! किन्तु न जाने उन की आकृति में, उन के पहनावे में, उन के समस्त व्यवहार में क्या बात थी कि लड़कियों वाले मतलब की बात पर मौन साध जाते। वे सहर्ष उन का आतिथ्य ग्रहण कर लेते; उन से उन की जमा-पूंजी उधार लेने में भी सकोच न करते; उन के घर ठहर कर उन के हाथों पकाई हुई खीर, दलिया, खिचड़ी या पराठे स्वाद ले लेकर खाते, किन्तु जब मतलब की बात आती तो ऐसे उड़ा जाते मानो जिस लड़की की ओर दुर्गादास संकेत करते, वह उन की नहीं, किसी दूसरे की रिश्तेदार हो।

और दुर्गादास अभी तक विधुर बने हुए थे। उन की स्वर्गीया पत्नी के गुणों में दिन-प्रति-दिन वृद्धि हो रही थी और उस के लिए उन्हों ने जो रक्त दिया था, उस की मात्रा भी उत्तरोत्तर बढ़ रही थी।

अपने एकान्त का समय दुर्गादास रोटी पकाने अथवा बाजा बजाने में बिताते थे। आठ वर्ष पहले उन के विवाह पर एक साधारण सा हारमोनियम बाजा भी दहेज़ में आया था। एक दो आर्य समाजी गीत उन की पत्नी जानती थी। वही उस से उन्हों ने सीख लिये थे। जब उन का मन उदास होता तो वे चारपाई के नीचे से हारमोनियम निकाल कर

तुम हो प्रभु चांद मैं हूं चकोरा

हुए, भक्ति भाव से गाते। उन्होंने 'भजन-पुष्पांजलि' से स्वयं भी कुछ गीत सीखे थे, यद्यपि पत्नी से सीखे हुए ये दो गीत उनको अत्यन्त प्रिय थे। जिस दिन चेतन से उन्होंने सुना कि वह प्रो० सिंह के कालेज में गाना सीखता है तो उन्होंने उस को अपने सारे गीत सुनाये—दयानन्द के आवाहन का गीत :—

"वेदां वालियाँ ऋपिया ओ तेरे आवन दी लोड़!"

महाराणा प्रताप के त्याग का गीत :—

"आया जब अकबर का क़ासिद वक्त था वह शाम का!"

मांसाहार के निषेध का गीत :—

"है भला तेरा इसी में मांस खाना छोड़ दे!"

ये सब और ऐसे ही और एक दो गाने सुना कर उन्होंने चेतन से भी कुछ सुनाने को कहा।

"मैं तो पक्के गाने ही पसन्द करता हूँ" उन आर्यसमाजी भजनों पर नाक भौं चढ़ाते हुए चेतन ने कहा, बड़ी शान से बाजा अपने सामने खींचा और यह भूमिका बाँध कि अब दस बजे हैं इसलिए वह भैरव के बोल ही सुनायेगा, उस ने

स ध, प ध, मप, गम, गा रे गम, गा रे स स

बजाया और जब दुर्गादास ने पूछा कि भाई गीत के बोल भी सुनाओ तो एक वेत्ता की सी मुस्कान के साथ 'प्रसिद्ध गाना है' यह विवरण देते हुए चेतन ने गाया :—

"जागियो गोपाल लाल, जागियो गोपाल लाल!"

चेतन को तान और पलटों का अभ्यास न था, लय और ताल का भी उतना ज्ञान न था, इस लिए उस ने एक दो बार अस्थाई और अन्तरा और बीच में केवल सरगम गाकर बाजा रख दिया, किन्तु इतने ही से दुर्गादास पर उसका रौब जम गया और वहीं, पहली ही भेंट में,

यह तय हो गया कि चेतन प्रो० सिंह से जो सीखेगा, उसका अभ्यास दुर्गादास के यहाँ आकर करेगा। दुर्गादास ने यह प्रस्ताव भी किया कि वह चाहे तो काम भी वहीं किया करे—एकांत जगह है, किसी प्रकार का शोर नहीं और दूनी एकाग्रता से काम हो सकता है। और चेतन ने उन का प्रस्ताव स्वीकार भी कर लिया।

धीरे-धीरे दुर्गादास ने भी वे सब रागनियाँ सीख लीं जो चेतन को आती थीं और सुबह शाम दोनों तन्मय होकर उन्हें गाने लगे। पहले वे अकेले अकेले गाया करते। एक दिन भैरवी की एक रागिनी उन्हों ने मिल कर जो गाई तो दोनों चौंक पड़े, अपना सम्मिलित स्वर उन्हें बड़ा मधुर लगा। इसके बाद वे प्रायः इकट्ठे ही गाने लगे।

मोरी बैयाँ पकर झकझोरी
श्याम! तू तो निपट अनारी
मानत नहीं मोरी!

सन्ध्या को वह कभी कभी दुर्गादास को म्यूज़िक कालेज ले जाता। दोनों वहाँ प्रो० सिंह का गाना सुनते, कोई छोटी मोटी रागिनी सीखते, किन्तु अभ्यास दोनों घर ही पर करते।

उन्हीं दिनों आर्य्य समाज का वार्षिक अधिवेशन आ गया और उस के उपलक्ष में संगीत-सम्मेलन के आयोजन की भी घोषणा की गई। म्यूज़िक कालेज में चेतन को पता चल गया कि प्रो० सिंह अपने छात्रों को लेकर इस अवसर पर अवश्य जायँगे और उस ने मन ही मन निश्चय भी कर लिया कि वह इस अवसर पर गाने का सुयोग अवश्य प्राप्त करेगा।

अकेले गाने का साहस अभी चेतन में था नहीं, इसलिए उस ने सोचा कि वह और दुर्गादास इकट्ठे गायेंगे। अधिवेशन पर कवि-सम्मेलन भी हो रहा था और यद्यपि चेतन ने उस के लिए भी कविता लिखी था—शिमले आने से पहले वह कई कवि सम्मेलनों में भाग ले चुका था—पर किसी संगीत-सम्मेलन में उस ने आज तक भाग न लिया था। इस लिए इस अवसर पर एक संगीतज्ञ से रूप में प्रकट होने की प्रबल लालसा उस के मन में थी। घर पहुँचते ही उस ने यह समाचार दुर्गादास को सुनाया, अपने निश्चय की बात भी बताई और यह भी कहा कि हम दोनों इकट्ठे गायेंगे। सुन कर दुर्गादास की गढ़ों में धँसी हुई आँखें एक अपूर्व ज्योति से जगमगा उठीं। उसी दिन से दोनों मित्र इकट्ठे मिल कर अपने प्रिय गीतों के अभ्यास में संलग्न हो गये।

. . .

यद्यपि आर्य्य समाज के उस संगीत-सम्मेलन में कोई बहुत बड़े संगीतज्ञ न आये थे, पर भीड़ काफ़ी थी, क्योंकि विज्ञापन में कई लड़कियों के नाम भी थे, निम्न-मध्य-वर्गीय घरानों की लड़कियों को

जिन्हें वर-प्राप्ति के लिए गाने की शिक्षा लेनी पड़ती है, अपनी कला के प्रदर्शन का सुअवसर इन धार्मिक सम्मेलनों के अतिरिक्त कहीं और नहीं मिलता। निम्न-वर्ग के बेकार युवक भी बिना टिकेट तमाशा देख लेते हैं। बेकार समय का इस से अधिक अच्छा उपयोग और क्या हो सकता है। इसी लिए समाज के साधारण अधिवेशनों से कहीं अधिक भीड़ संगीत सम्मेलन में थी।

रात चेतन देर से सोया था, पर प्रातः काल ही उठ कर वह दुर्गादास के यहाँ पहुँचा और निरन्तर कई घंटों तक दोनों इकट्ठे मिल कर गाने का अभ्यास करते रहे थे। दुर्गादास को आते समय संकोच हो रहा था, किन्तु चेतन उन्हें अपने संग घसीट लाया था।

सब से पहले कुछ लड़कियों ने 'वन्दना' गाई। इसके बाद प्रोग्राम आरम्भ हुआ। किन्तु किसने क्या गाया, चेतन ने कुछ नहीं सुना। मौन मन में अपने गानों की रिहर्सल करने के साथ-साथ वह इस बात की प्रतीक्षा करता रहा कि कब प्र० मिढ और उन के छात्रों की बारी आती है और कब वह उन से कुछ क्षण अपने और दुर्गादास के लिए ले पाता है।

तन को गली की सीढ़ियों पर जाते जाते बाँध लिया था, सारे
सारे श्रोताओं को बाँधे हुए था। सीधे साधे गाने, कम तान पलटे,
न्दर गला और शुद्ध उच्चारण ! और एक गाने के समाप्त होते ही लोग
सरे के लिए अनुरोध करते। कई गीत गाने के बाद प्रोफ़ेसर साहब थक
ये, किन्तु समय अभी बहुत न हुआ था। आयोजक चाहते थे कि
और कुछ देर तक गायें। तभी चेतन ने एक बार फिर साहस करके
पनी प्रार्थना दुहराई और उस जल्दी और घबराहट में जब श्रोता
लियाँ पीट रहे थे, 'एक और' 'एक और' के नारे लगा रहे थे
ौर आयोजक उन से कम से कम एक गाना और गाने का अनुरोध
र रहे थे, प्रो० सिंह ने चेतन की ओर संकेत करते हुए कहा—"अब
छ क्षण के लिए ये गायेंगे, मेरे ही शागिर्द हैं, मैं ज़रा साँस ले लूँ।"
ब आयोजक महाशय ने सोल्लास इस बात की घोषणा कर दी कि
ब प्रो० साहब के दो नये शागिर्द गायेंगे, जिसके बाद वे स्वयं अपने
गीत से श्रोताओं को मुग्ध करेंगे। और अपने उस उल्लास में संयोजक
होदय ने चेतन और दुर्गादास को संगीत-विद्या में विशारद बना डाला।

घोषणा को सुन कर दोनों धड़कते हुए दिलों के साथ आगे आये।
र्गादास ने बाजा आगे खींचा। दोनों की आँखें मिलीं—कौन सा गाना
ाया जाय ? और जैसे आँखों ही आँखों में दोनों ने निश्चय कर लिया

'मोरी बैय्याँ पकर झकझोरी'

बाजा बजने लगा और वे गाने लगे।

दोनों तन्मय भाव से गा रहे थे कि चेतन की दृष्टि सामने बैठे दो
वैयों की ओर गई। वे हँस रहे थे। उस ने प्रो० सिंह की ओर देखा।
उनका माथा सिकुड़ गया था और वे तिलमिला रहे थे। चेतन को लगा
के उन का स्वर नहीं मिल रहा। वह आनन्द नहीं आ रहा, जो उन्हें
सदैव इस गीत को गाने में आया करता था। उस ने दुर्गादास की

ओर देखा। वे आँखें बन्द किये, तन्मयता से झूमते हुए, आधी रात को भैरवी गा रहे थे। अचानक सामने बैठे हुए गवैये जोर से हँस पड़े। इस के बाद जैसे हँसी छूत की तरह फैल गई। तभी चेतन को ध्यान आया कि उन्हें तो 'खम्माच' गाना था। उस ने चाहा दुर्गादास से कहे कि दूसरा राग लगाओ :

बैय्याँ न पकर मोरी.........

किन्तु उसी क्षण प्रोफ़ेसर सिंह ने आगे होकर बाजा थाम लिया और उन का प्रिय शिष्य वही झीवर कुमार अपनी सुरीली आवाज़ से गाने लगा।

कौन देस गया पिया मोरा बालम रे

दर्शकों की हँसी एक दम थम गई। चेतन को इतनी लज्जा आई कि वहाँ एक क्षण भी ठहरना उस के लिए असम्भव हो गया। दुर्गादास की समझ में कुछ भी न आ रहा था। अपनी गढ़ों में धँसी हुई आँखों की पलकें, मरती हुई तितली के पंखों सी फटफटाते हुए, वे आश्चर्यचकित से चारों ओर देख रहे थे। किन्तु चेतन बिना किसी से आँख मिलाये पिछले दरवाजे से निकला और रात के अँधेरे में चोरों की भाँति घर को ओर भाग चला।

— ० —

५०

तीन दिन तक चेतन बाहर न निकला था। उसे लगता था जैसे सारा नगर उस की असफलता को जान गया है। वह बाहर निकलेगा

तो लोग अंगुलियाँ उठायेंगे कि यही वे संगीत-विशारद हैं जो रात के ग्यारह बजे भैरवी गा रहे थे। कमरे के एकाकीपन से उकताकर वह एक दिन दोपहर को सीढ़ियों के छज्जे पर आ खड़ा हुआ था, पर जाने क्यों सामने के बरामदे में खड़ी बाबू चरणदास की साँवली बड़ी लड़की उसे देखकर मुस्करा दी और वह हड़बड़ा कर मुड़ा। उस बेचारी ने चाहे उस का गाना सुना भी न हो, परन्तु चेतन को लगा, जैसे वह मुस्कान उस घटना की ओर ही संकेत कर रही है। घोंघे की भाँति वह अपने खोल में आ बैठा और माल अथवा लोअर बाज़ार तक जाना तो दूर रहा, वह रल्लू भट्टे के चौक तक जाने का भी साहस न कर पाया था। रात के पिछले पहर मुँह अँधेरे ही वह उठता, शौचादि से निवृत्त हो, व्यायाम कर, नल पर हाथ मुँह धोकर या स्नान करके अपने कमरे में आ बैठता। कविराज जी की पुस्तक खत्म हो गई थी। वह उसे फिर एक नज़र देखता अथवा अपने उपन्यास का कोई परिच्छेद लिखने का प्रयास करता, या फिर अन्यमनस्क लेटा रहता।

न जाने वह कब तक इस प्रकार उस अँधेरे कमरे में पड़ा रहता, यदि चौथे दिन प्रो० सिंह ही के यहाँ बना, उसका एक नया मित्र नारायण उसे न आ पकड़ता।

"अरे भई क्या हो गया तुम्हें जो छुट्टी के दिन भी इस अँधेरी कोठरी में बन्द पड़े हो?" नारायण ने कहा

चेतन ने कुछ उत्तर देने का प्रयास किया, पर अस्फुट बड़बड़ाहट के अतिरिक्त उस के ओठों से कुछ भी न निकल सका।

तब चश्मे के पीछे से अपनी आँखों की चमकती रेखा को कटाक्ष के रूप में चेतन पर डालकर नारायण ने कहा—"बाहर तो आओ! देखो तो कैसे बादल घिर के आये हैं। ऐसे में कोई भलामानुस कमरे में बैठा रह सकता है? ऐसे में तो जी चाहता है दिन भर शिमले की

सड़कों पर घूमते रहें।"

और दफ़्तर के वातावरण में सूख जाने वाला रस जैसे इन बादलों को देख, नव-जीवन पा, नारायण की आँखों में उमड़ने लगा।

"मेरा जी कुछ स्वस्थ नहीं!" चेतन ने कहना चाहा, किन्तु नारायण जैसे उसे बरबस घसीटता हुआ सा बाहर आया। कमरे के किवाड़ लगा कर दोनों नीचे उतरे और सच ही दिन भर शिमले की सड़कों और बाज़ारों में घूमते रहे।

बादल सामने घाटियों से उठते; धीरे धीरे बढ़ते हुए, धुनकी हुई रुई की भाँति ऊपर चढ़ते; समीप की घाटियों में रेंगते; चोटियों पर लटकते; दुकानों, मकानों पर छाते, बरसते और हल्के होकर और भी ऊपर उठ जाते। दिन भर दोनों ने उस सैर का आनन्द लूटा। वर्षा होने लगती तो वे किसी हवाघर में बैठ जाते या किसी दुकान के बरामदे में हो जाते और थमने पर फिर चल पड़ते उन्हें भूख भी खूब लगी थी और न केवल उन्होंने नारायण के घर जाकर स्वादिष्ट, खस्ता मठरियाँ अत्यधिक पुराने और मन्दाग्नि को प्रज्वलि करने वाले नींबू के अचार के साथ चटखारे ले कर खाई थीं, बल्कि लोअर बाज़ार के हलवाई की दुकान से गर्म गर्म इमरतियाँ भी चट की थीं और मशोबरे के सेब भी खाये थे। इसी बीच में उन्होंने जी भर कर बहस की थी और आत्मा-परमात्मा ऐसे सूक्ष्म आध्यात्मिक विषयों से लेकर समाजवाद, यथार्थवाद आदि स्थूल सांसारिक विषयों पर तर्क-वितर्क भी किया था। दोनों इन विषयों में पारंगत हों, यह बात न थी। बहस करने के लिए वे उलझते रहे थे और संध्या को जब चेतन नारायण को उस के होटल के सामने छोड़ कर अपने ढाबे की ओर जाने लगा तो नारायण ने उसे भी अपने साथ ऊपर खींच लिया था।

चेतन उस होटल के सामने से प्रायः रोज़ गुज़रता था। कई दिन

से वह नारायण को वहाँ तक छोड़ने भी जाता था, किन्तु उसे स्वयं कभी उस के ऊपर जाने का साहस न हुआ था। बात वास्तव में यह थी कि आरम्भ ही में कविराज जी के व्यवहार, शिमले की माल और उस माल के वासियों की तड़क-भड़क, दर्प और अभिमान ने उस के हृदय में कुछ ऐसा हीन-भाव भर दिया था कि वह अपने आप को एक दम हेय समझने लगा था। और जब कविराज जी के साथ ही खाना खाने का उस का स्वप्न टूटा और किसी दूसरी जगह भोजन पाने की समस्या उस के सामने उपस्थित हुई तो सीधे लोअर बाज़ार के किसी होटल वाले से जा कर पूछने का साहस उसे न हुआ। (माल के किसी होटल की ओर तो वह बाहर से देख ही सकता था, अन्दर जाने तक की कल्पना न कर सकता था।) उस के इस संकोच का एक और भी कारण था। कविराज जी से वह कुछ रुपये पेशगी ले चुका था, अब और अधिक रुपये वह माँगना न चाहता था और होटल वाले, उस ने सुना था, महीने के रुपये पेशगी माँगते हैं। न जाने वे कितने रुपये माँग लें! यदि उस के पास उतने रुपये न निकलें तो उसे खिसियाना सा मुँह बनाकर लौटते हुए शर्म आयगी। यही सोच कर किसी होटल में जाने की अपेक्षा उस ने यादराम से पूछा था कि कहीं कोई ढाबा आदि नहीं क्या?

यादराम उसे सहर्ष नीचे 'चोर बाज़ार' के एक अत्यन्त घटिया से ढाबे पर ले गया था। "सात रुपये महीने पर जितनी चाहो रोटी खाओ" उस ने सोल्लास चेतन से कहा था, "ये होटल वाले तो चोर हैं, मुझ से १२ रुपये माँगते थे।"

चेतन और भी सहम गया था। लाहौर में शुरू शुरू में वह जिस तन्दूर पर खाना खाया करता था, उस पर बड़ी कठिनाई से उस का बिल चार रुपये महीने तक पहुँचता था। जब यादराम से (जो साधारण घरेलू नौकर था) वे बारह रुपये माँगते हैं तो उस से तो पन्द्रह बीस ही

माँगेंगे—उस ने सोचा था।– यदि उसे पता होता कि शिमला इतनी महँगी जगह है तो वह कभी ५० रुपये मासिक पर वहाँ न आता और उस ने उसी ढाबे पर खाना खाना आरम्भ कर दिया था।

ढाबा चाहे घटिया था, पर वहाँ सफ़ाई यथेष्ट थी और जब वह टाट पर बैठकर थाली में से खाना खाता तो उसे कुछ परायापन न लगता। चँगड़ मुहल्ले में रहने वाले चेतन के लिए वह ढाबा जैसे कुछ अपनत्व का भाव लिये हुए था। फिर ढाबे का स्वामी उसे कुछ सभ्य समझकर, शाम-सवेरे उस की तरकारी और दाल में दो पैसे का घी छौंक दिया करता था। खाते समय चेतन को तेल और घी का मिला जुला सा स्वाद आया करता था, किन्तु होटलों के परायेपन की अपेक्षा उसे वह कहीं अधिक सह्य था। वह संतुष्ट था और उस ने कहीं दूसरी जगह जाने की इच्छा तक भी न की थी।

'काश्मीर हिन्दू होटल' के नीचे सोडावाटर का एक कारखाना था। बोतलों की पेटियों में से होते हुए वे एक बड़े तङ्ग लकड़ी के ज़ीने से ऊपर पहुँचे। चेतन ने देखा कि सीढ़ियाँ जिस कमरे में खुलती हैं उस में चार मेज़ लगे हुए हैं, जिन पर सफ़ेद मेज़पोश बिछे हैं। मेज़पोश वास्तव में उतने साफ़ न थे, किन्तु गन्दे सील भरे ढाबे की फटी मैली चटाइयों की अपेक्षा ये गन्दे मेज़पोश भी चेतन को साफ़ लगे।

वे दोनों जाकर सामने की मेज़ पर बैठ गये। चेतन दीवार से पीठ लगाकर सीढ़ियों की ओर को मुँह करके बैठा और नारायण मेज़ के दूसरी ओर उस के सामने। बायीं ओर एक छोटे से कमरे के बाद तनिक ऊपर को रसोईघर था। खाने के कमरे और रसोईघर के मध्य यह छोटा सा कमरा था और रसोई के धुएँ के कारण काला भी पड़ गया था। दीवार के साथ, मैल की मोटी परत के कारण काला-

स्याह पड़ जाने वाला, एक मेज़ रखा हुआ था। इसके साथ एक कुर्सी भी लगी थी। बराबर की अलमारी का आधा भाग ही वहाँ से दिखाई देता था। अलमारी के शीशे टूटे हुए थे और उसमें घी के डिब्बे पड़े थे जो कदाचित होटल के स्थाई ग्राहकों के थे। चिकनाई के कारण अलमारी के किवाड़, उसके तख्ते, शीशे, सब मैल की मोटी काली परत से ढके हुए थे और दूर से काले वारनिश से रंगे दिखाई देते थे।

उधर से दृष्टि हटा, चेतन ने तनिक मुड़ कर दायीं ओर को देखा। दोनों ओर को लटकते हुए पर्दे और बीच में एक छोटा सा मार्ग दिखाई दिया। जब हाथ धोने के लिए उस मार्ग से गुज़र कर वह बारजे पर गया और उस ने मुड़ कर कमरे का निरीक्षण किया तो उस ने देखा कि कमरा तो वास्तव में एक ही है। उसी में प्लाईवुड के स्थान पर लम्बी-लम्बी सुलाखों से पर्दे लटका कर केबिन से बना दिये गये हैं।

अन्दर के केबिनों में उस समय शायद बोतलें खुल चुकी थीं, क्योंकि बहकी-बहकी बातों की ध्वनि आ रही थी और कई लड़खड़ाती रुद्ध आवाजें यदाकदा 'ब्वाय' 'ब्वाय' पुकार उठती थीं। उधर से दृष्टि हटा कर उसने बारजे को देखा। बाज़ार की ओर को बढ़े हुए उस छोटे से बारजे में एक ओर हाथ मुँह धोने के लिए नल लगा था, दूसरी ओर अत्यधिक छोटा सा शौचगृह था। खिड़कियों के पट बाज़ार की ओर को खुलते थे। चेतन क्षण भर के लिए खिड़की में जा खड़ा हुआ।

बाहर बाज़ार में बादल घुस आये थे। बत्तियों के सिमटे, धुँधले प्रकाश में नीचे बहती हुई भीड़ चेतन को कुछ विचित्र सी लगी। उस बहिया में सभी भारतीय थे। निम्न-मध्य-वर्ग अथवा बीच के मध्य-वित्त के लोग। अँग्रेज़ या उच्च वर्ग के भारतीय लोअर बाज़ार में दिखाई नहीं

देते । उन के लिए माल और माल की वैभवशाली दुकानें और ऐसे शानदार होटल है, जहाँ दिन में खाने के छै छै कोर्स आते हैं, और जहाँ ऊँचे दर्जे के मध्यवर्गीय का मासिक वेतन एक ही दिन की भेंट हो सकता है । माल वालों में से लोअर बाज़ार की सैर को तभी कोई आता है जब उस की जेबों में माल की दुकानों के नाज़ उठाने की शक्ति नहीं रहती । गोरी चमड़ी का ऐसा ही कोई जोड़ा कभी-कभी लोअर बाज़ार में दिखाई दे जाता है—जैसे नदी की धारा में कमल का पत्ता—उस धारा का होकर भी उस से अलग । चेतन भी प्रति दिन उस बहती भीड़ का अंग बनता था । वह 'काश्मीर हिन्दू होटल' की खिड़कियों को मध्य वर्ग के उन सैकड़ों लोगों की तरह अरमान भरी दृष्टि से देखता था जो माल से गुज़रते हुए वहाँ से बड़े होटलों को देख कर सोचा करते हैं कि शीघ्र ही वे उन में जाने के योग्य हो सकेंगे। उस बारजे की खिड़कियों पर पड़े हुए पर्दे सदैव उस के सामने कल्पना-लोक बसा देते थे । और वह भीड़ में ठिलता हुआ दिवा-स्वप्नों में खो जाता था । वह जब भी नारायण को छोड़ने जाता, कई बार उसे इच्छा होती कि वह उसके साथ होटल के ऊपर चला जाय, पर संकोच सदैव उस के पैरों की बेड़ी बन जाता और वह उसे छोड़ कर अपना स्वप्न बनाता-मिटाता नीचे लोअर बाज़ार के उसी घटिया से ढाबे की ओर चल पड़ता । आज उसी बारजे में खड़ा वह कुछ विचित्र प्रकार की अनुभूति से अभिभूत था । कुछ हल्का, कुछ उत्फुल्ल, छलकने के डर से मधुर पेय को अपने किनारों में सयत्न समेटने वाले प्याले की भाँति वह उस उल्लास को अन्तर में संजोये था । विमोहित सा वह नीचे के उस धुँधले, शीतल प्रकाश में अनवरत बहती उस जन-सरिता की ओर देख रहा था......तभी नारायण ने उसे आवाज़ दी ।

नल पर जल्दी जल्दी हाथ धो और खूँटी से लटके हुए बार-बार

हाथों के पोंछे जाने के कारण निचुड़ते से तौलिये से हाथ पोंछ कर जब वह वापस मेज़ पर पहुँचा तो खाना आ चुका था। नारायण ने उसे बताया कि होटल वाले स्थाई ग्राहकों से आठ रुपया मासिक लेते हैं और आठ रुपये में एक दाल, तरकारी और रोटियाँ देते हैं।

"कितनी रोटियाँ?" चेतन को जैसे विश्वास न आया।

"जितनी भी कोई खा ले," नारायण ने थाली उस की ओर बढ़ाते हुए कहा, "हाँ यदि कोई दाल तरकारी को छौंकाना चाहे तो घी उस का अपना।" फिर कुछ क्षण ठहर कर उस ने कहा, "मैं तो नहीं खाता, किन्तु यहाँ गोश्त हर किस्म का पकता है और दो पैसे को सलाद की प्लेट मिलती है।"

और चेतन के 'न' 'न' करने पर भी नारायण ने सलाद की प्लेट मंगा ली। दाल और तरकारी अत्यधिक स्वादिष्ट बनी थीं। दोनों में घी का तड़का लगा हुआ था। सलाद का स्वाद चेतन ने जीवन में पहली बार चखा। प्लेट में टमाटर भी थे, प्याज़ भी और सलाद के कतले भी। शिमले के अपने इस निवास-काल में चेतन ने पहली बार पेट भर कर खाना खाया। उसी दिन नारायण की सिफ़ारिश पर, बिना कुछ पेशगी दिये, वह काश्मीर हिन्दू होटल का स्थाई ग्राहक बन गया।

खाना खाने के बाद तत्काल नारायण से छुट्टी ले कर वह भागा-भागा औषधालय गया कि यादराम को अपने इस आविष्कार की सूचना दे। यादराम औषधालय बन्द करके जा चुका था। तब चेतन ढाबे की ओर भागा। यादराम खाना खाकर कुल्ला कर रहा था कि चेतन ने उसे जा पकड़ा।

"तुम तो महामूर्ख हो," वह दूर ही से चिल्लाया, "इस घटिया से

ढाबे में खाना खा रहे हो। वहाँ काश्मीर हिन्दू होटल में केवल आठ रुपये महीना लेते हैं और इतना बढ़िया खाना मिलता है कि वाह! पतले-पतले लुच्चियों* से फुल्के, स्वादिष्ट तरकारियाँ और सिर्फ़ दो पैसे में सलाद की प्लेट! मैं कहता हूँ, दो पैसे में सलाद की प्लेट! कभी खायी भी है तुमने सलाद!" और सलाद और उस में निहित विटामिनों पर (नारायण द्वारा सुना हुआ) एक छोटा सा भाषण देते हुए उस ने यादराम से अनुरोध किया कि कल से वह भी होटल ही में खाना खाया करे!

किन्तु यादराम ने निराश-भाव से केवल इतना कहा, "अरे बाबू जी, हम कहाँ होटलों में जायेंगे!"

चेतन बेसब्र होकर बोला, "अरे भई कल तुम मेरे संग चलना, आखिर तुम क्यों होटल में न खाओ। अपने पैसों का खाओगे, कोई मुफ्त तो खाओगे नहीं", और फिर यादराम के असमंजस को देखकर उस ने कहा, "वे एक थाली के तीन आने लेते हैं, न होगा मेरे हिसाब में खा लेना।"

और यादराम को यह संदेश देकर चेतन इस प्रकार माल की ओर चल पड़ा जैसे अचानक अलादीन का चिराग़ उस के हाथ आ गया हो।

---

*मैदे की बहुत पतली और चौड़ी पूरियाँ।

५१

दूसरे दिन शाम को यादराम ने घर की धुली कमीज़ और कुछ साफ़ निकर पहनी और चेतन के साथ चल पड़ा।

यादराम को ऊपर बैठाकर अपनी इस कारगुज़ारी की दाद मैनेजर से पाने के लिए चेतन नीचे आया और उस ने सहर्ष मैनेजर से कहा, "लीजिए आप के लिए एक और ग्राहक ले आया हूँ।"

मैनेजर ने खीसें निपोर दीं—"आप की कृपा है महाराज!"

"वह भी स्थाई ग्राहक बन जायगा," अपने जोश में चेतन ने कहा और वह ऊपर पहुँचा। तब तक यादराम डटकर एक मेज़ पर बैठ गया था। किन्तु उस लम्बे-तगड़े, हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति के लिए वह मेज़-कुर्सी बहुत छोटी दिखाई देती थी। लगता था जैसे कोई बड़ा आदमी बच्चों की मेज़-कुर्सी पर बैठ गया हो। उस की लम्बी अधनंगी टांगें मेज़ के नीचे आ न रही थीं और वह उन्हें कुर्सी के दोनों ओर फैलाये अकड़ा बैठा था।

चेतन ने अन्दर रसोईघर में रसोइए को आवाज़ देकर कहा कि यादराम भी खाना खायेगा।

रसोइए ने किचन के दरवाजे से गर्दन बढ़ाकर यादराम की ओर देखा और फिर सिर हिलाते हुए विचित्र मुद्रा बना कर चेतन से कहा "पहले आप खा लीजिए।"

चेतन को उस का यों मुँह बनाना बड़ा बुरा लगा। किन्तु तभी नारायण बारजे से हाथ पोंछता हुआ वहाँ पहुँच गया और बोला, "आओ पहले हमीं निबट लें, एक साथ वे किस प्रकार इतने आदमियों

के लिए रोटियाँ पका सकते हैं ? यह बाद में खाता रहेगा।"

थालियाँ परोस कर आ गयीं और यद्यपि चेतन के लिए यादराम को खिलाये बिना खाना दुष्कर हो रहा था, किन्तु वह नारायण के साथ खाने लगा। जब वे खाना खा चुके तो नारायण ने घूमने का प्रस्ताव किया। तब रसोइए को ताकीद करके कि वह यादराम को खाना खिलाये और अपने आदेश के महत्व को जताते हुए इतना और कह कर कि वह स्थाई ग्राहक बनेगा, चेतन नारायण के साथ नीचे उतरा।

जब वे बाहर जाने लगे तो मैनेजर ने उन्हें रोक लिया और उपालंभ भरे स्वर में उस ने कहा, "यह होटल है बाबू साहब, यहाँ भले आदमी खाना खाने आते हैं, यहाँ दफ़्तरों के बाबू आते हैं, मजदूरों के खाना खाने का ढाबा नहीं यह !"

जब वे खाना खा रहे थे तो कदाचित रसोइया अथवा बैरा नीचे आकर मैनेजर से शिकायत कर गया था। उस की बात सुन कर चेतन किंकर्तव्य-विमूढ़-सा खड़ा रह गया। अब वह यादराम से जाकर कैसे कहे कि उसे खाना नहीं मिलेगा। क्षण भर सोच कर उसने कहा, "अच्छा उसे आज तो खा लेने दीजिए, फिर वह नहीं आयगा। अब तो मैं ले आया हूँ उसे। उस का आज का खाना मेरे हिसाब में लिख लेना।"

यह कह कर वह नारायण के साथ चला। लोअर बाज़ार में जीवन की नदी अपने यौवन पर थी। चेतन इस बहती इठलाती नदी में अपने आप को पेड़ से टूटकर गिरी हुई किसी निर्जीव शाखा सा अनुभव कर रहा था। लहरों के थपेड़ों से इधर से उधर होता वह बहा जा रहा था। किन्तु नारायण रौ में था। लोअर बाज़ार में आर्य-समाज के प्रसिद्ध उपदेशक स्वामी शुद्ध देव की कथा कई दिनों से हो

रही थी और उस को इच्छा थी कि माल का एक चक्कर लगाते और कुछ विचार विनिमय करते हुए वहाँ पहुँचा जाय। तर्क-वितर्क करने का उसे व्यसन था। उस ने 'त्रिगुणातीत' की बात चलाई। किन्तु चेतन को 'त्रिगुणातीत' के आध्यात्मिक आदर्श से किसी प्रकार की दिलचस्पी न थी। उस का मन तो 'काश्मीर हिन्दू होटल' के उस खाने के कमरे की ओर लगा हुआ था। वह सोच रहा था कि याऽगम को खाना मिला होगा कि नहीं। नारायण की गम्भीर, पांडित्यपूर्ण व्याख्या को प्रगट सुनता और 'हूँ', 'हाँ' करता हुआ वह वास्तव में उन होटल वालों की असभ्यता पर आग बबूला हो रहा था, मन ही मन प्रतिज्ञा कर रहा था कि वह भी उन के यहाँ खाना न खायेगा। कितने दुष्ट हैं ये लोग! वह उन के लिए एक ग्राहक लाया और इस के बदले कि वे उस को धन्यवाद देते, उलटे ऐसे पेश आये जैसे उस से कोई अपराध बन पड़ा हो। 'कम्बख्त होटल लिये फिरते हैं!' मन ही मन उपेक्षा से उसने कहा, 'चार पर्दों या चार साफ चादरों से ढँकी मैली-कुचैली मेजों से कोई ढाबा होटल तो नहीं बन जाता। वह होटल ही क्या जिस के खाने के कमरे में बैठें तो किचन अपनी समस्त कुरूपता के साथ दिखाई दे और हवा के हल्के से झोंके के साथ लहसुन-प्याज की तीखी गंध नथुनों में समा जाय। इतने गन्दे और मैले बैरे हैं कि हलवाई के नौकर भी न होंगे; और दम यह है कि शरीफों का होटल है!......'

वह मन ही मन उबल रहा था। किन्तु नारायण अपने साथी की मानसिक स्थिति से अनभिज्ञ उस के कानों में अनवरत गीता का विशद ज्ञान उँडेल रहा था।

"......ज्ञान उस का स्वभाव है, स्वरूप है। उसी का प्रकाश सारी इन्द्रियों को प्रकाशित करता है। स्वामी शुद्ध देव ने कितना सुन्दर, मौलिक और अति आधुनिक दृष्टान्त दिया है। जैसे एक ही विद्युत-

धारा अनेक बत्तियों के गुच्छे को एक ही बार प्रकाशित कर देती है, ठीक उसी प्रकार एक ही आत्म ज्योति सारी इन्द्रियों को ज्योति प्रदान करती है। मनन और बोधन का प्रकाश भी उसी का है, वह स्वतः प्रकाश है।......"

वे लोअर बाज़ार पार करके ऊपर माल को मुड़ने लगे थे कि चेतन ने अचानक नारायण की वक्तृता का क्रम तोड़ते हुए कहा, "मैं तो वापस जाऊँगा, नारायण।"

"तो क्या स्वामी शुद्ध देव की कथा सुनने न जाओगे? अभी आरम्भ होगी नौ बजे। कथा क्या कहते हैं अमृत बरसाते हैं।"

"इस समय अमृत की भी इच्छा नहीं!" और उस ने विदा लेने को हाथ आगे बढ़ाया।

किन्तु नारायण ने उस के हाथ को अपने हाथ में लेकर वापस मुड़ते हुए कहा, "चलो मैं इधर ही से समाज-मन्दिर चला जाऊँगा।"

होटल के पास पहुँच कर चेतन ने कहा, "मैं ज़रा देख आऊँ, उन्हों ने यादराम को रोटी दी है या नहीं।" और वह चला। मैनेजर नीचे नहीं था। वह ज़ीने की ओर बढ़ा। नारायण भी उस के पीछे-पीछे तंग ज़ीना चढ़ने लगा।

जब वह ऊपर पहुँचे तो उन्हों ने देखा कि यादराम पूर्ववत् सीना ताने कुर्सी पर डटा बैठा है और मैनेजर से झगड़ रहा है।

"क्या बात है?" चेतन ने क्रोध को बरबस दबाते हुए कहा, 'जब मैंने कहा था कि पैसे मेरे हिसाब में लिख लेना......"

"बाबू जी अठाइस रोटियाँ खा चुका है, आटे की सारी लोई खत्म कर दी।"

"अब पैसे मैं दूँगा......!" 'मैं' शब्द पर ज़ोर देते हुए चेतन ने कहना चाहा।

"लेकिन रोटी ही का सवाल नहीं । दाल सारी खत्म हो गई । हम आदमियों के लिए खाना पकाते हैं, देवों के लिए नहीं । अट्ठाइस रोटियाँ......!"

फुफकारता हुआ यादराम उठा, "इन दो तोले के 'फुल्कों' को रोटियाँ कहते होंगे ?" बड़बड़ाते और धमधमाते हुए वह नारजे में पहुँचा । हाथ धो कर, भीगे हाथों से मुँह पोंछ, उन्हें सिर के बालों पर फेरता हुआ, वह उन के पास से धमधमाता हुआ सीढ़ियाँ उतर गया—" वाह बाबू जी, किन मूज़ियों के यहाँ ले आये मुझे !"—सीढ़ियों से चेतन को उस के यही शब्द सुनाई दिये ।

तब मैनेजर-साहब भी बड़बड़ाते नीचे चले गये और धम से जाकर अपनी गद्दी पर बैठ गये । नारायण ने चेतन के कंधे को छुआ । "चलो अब छोड़ो इस किस्से को"—उस ने कहा ।

चेतन का मन अत्यन्त खिन्न था । वह उस होटल से किसी तरह का सम्बन्ध न रखना चाहता था । उस ने जाकर मैनेजर के सामने अपने दोनों जून खाने के पैसे रख दिये और कहा, "यह लो तीन आने यादराम के ।"

मैनेजर ने व्यंग्य से दाँत निपोरते हुए पैसे वापस कर दिये—"अट्ठाइस फुल्के तो वह खा गया । सात आने तो सिर्फ रोटियों के हो जाते हैं ।"

"पर एक थाली के जब तीन आने लेते हो तुम !" चेतन चिल्लाया ।

"तीन आने लेते हैं !" गद्दी पर उकड़ूँ बैठ कर मैनेजर चेतन से भी ऊँची आवाज में चिल्लाया, "तीन आने आदमियों की खुराक के लेते हैं, जन्म से भूखे जानवरों के नहीं !"

झगड़े को सुनकर बाजार में भीड़ इकट्ठी होने लगी थी । बड़ी कठिनाई से नारायण ने और आठ आने चेतन से दिलवा कर

मैनेजर को शान्त किया और दोनों समाज मन्दिर की ओर चल पड़े।

बायीं ओर घाटी पर तैरती हुई, जल-बिन्दुओं से भारी, बोझीली बयार अज्ञेय रूप से हल्के-हल्के बह रही थी। अदृश्य फुहार जैसे निःस्वन पंखों के सहारे उड़ रही थी। उस के स्पर्श से गाल, नाक, मुँह, आँख सब ठंडे हुए जा रहे थे। सहसा बादल बाज़ार में बढ़ आये। बाज़ार की रोशनियाँ सिमट कर बत्तियों के गिर्द छोटे-छोटे वृत्तों में समा गईं और चलते-फिरते लोग छायाएँ बन कर रह गये। अचानक चेतन की ऐनक के दोनों शीशे धुँधले हो गये। ऐनक उतार कर उस ने कमीज़ के छोर से उन्हें पोंछा, किन्तु शीशे अच्छी तरह साफ न हुए और जब उस ने ऐनक को फिर नाक पर रखा तो सब चीज़ों पर विचित्र सा झीना, झिलमिला पर्दा छा गया। बिजलियाँ और बत्तियाँ सब झिलमिलाती सी दिखाई देने लगीं। उस ने फिर ऐनक को साफ किया, किन्तु वह साफ़ न हुई। उस की कमीज़ कदाचित् गीली हो चुकी थी और उस की ऐनक के नमदार शीशों से छू कर उड़ता हुआ वाष्प पानी बन जाता था। हार कर उस ने ऐनक उतार ली और अंधों की भाँति चलने लगा। उस की आँखों पर दोहरा अँधेरा छा गया था—क्रोध का और 'मायोपिया' का।

नारायण के कोट की जेब में रूमाल अभी सूखा था। उससे अपनी ऐनक को साफ़ करते हुए फिर नाक पर रख कर उस ने कहा, "यह ऐनक भी एक मुसीबत है कम्बख़्त !"

चेतन ने उत्तर नहीं दिया। उस के सामने स्पष्ट वस्तुएँ भी अस्पष्ट हो रही थीं। पानी में डुबकी लगाने के बाद जैसे आँखों पर पानी का पर्दा छा जाता है, वैसा ही पर्दा सा उस की आँखों पर छा गया। उसे अपनी इस ऐनक पर बड़ा क्रोध आया, उस के जी में

आयी कि ज़ोर से घुमा कर उसे घाटी में फेंक दे। उस ने उसे धीरे से घुमाया भी, पर घाटी में फेंकने के बदले उसने उसे कोट के अन्दर की जेब में रख लिया। और वह फिर उसी घटना के सम्बन्ध में सोचने लगा।

वे दोनों सुरंग के पास से गुज़र कर चोर बाजार को जाने वाले मार्ग के समीप पहुँच गये थे। तभी नारायण ने कहा—"छोड़ो भी अब इस किस्से को, अन्दर ही अन्दर क्यों विष घोलते हो। तुमने उसे वहाँ ले जाकर गलती की। इन लोगों का काम तो ढाबे-तँदूरों पर ही चलता है।"

"पर यदि कोई पेटू धनी वहाँ आ जाता तो क्या उस के साथ भी वे लोग ऐसा ही व्यवहार करते?" चेतन ने कहा।

किन्तु उसके स्वर की कटुता दूर हो चुकी थी। देने को तो उस ने यह युक्ति दे दी थी, पर अन्तर में उसे कहीं अपनी मूर्खता का आभास मिल गया था और मैनेजर के दुर्व्यवहार की अपेक्षा उसे अपनी इस मूर्खता पर अधिक दुःख था। वह इतना बड़ा हो गया है। बी० ए० पास करके एक समाचार पत्र के सम्पादन विभाग में काम कर चुका है। अभी तक उसे इतनी समझ नहीं कि उसे यादराम को उस होटल में न ले जाना चाहिए था। इस पुण्य भूमि में जहाँ जाति-जाति, वर्ण-वर्ण और वर्ग-वर्ग ही में भेद नहीं, बल्कि हर जाति, हर वर्ण के अन्दर अगणित भेद-प्रभेद हैं, वहाँ होटलों और ढाबों में क्यों न अन्तर हो! तनिक साफ़ सुथरे ढाबे का स्वामी, जिसके ग्राहकों में ४० रुपये मासिक से १०० रुपया तक पाने वाले हैं, उस ढाबे को उपेक्षा की दृष्टि से क्यों न देखें, जहाँ ४० रुपया मासिक से कम पाने वाले लोग जाते हैं? और यह 'डेविको', 'वेंगर', 'इम्पीरियल' और 'क्लार्क'— ये अपने अहम में महान माल के होटल—ये लोअर बाज़ार के इस 'काश्मीर हिन्दू

होटल' को क्यों न हेय ख्याल करें ? यदि चेतन या नारायण अपने इन कपड़ों से उन में चले जायँ तो खाना खिलाना तो दूर रहा, शायद उन्हें कोई अन्दर भी न घुसने दे।

वे समाज मन्दिर के पास पहुँच गये थे। बाहर अहाते ही से स्वामी शुद्ध देव का गहर गम्भीर स्वर हाल में गूँजता हुआ आ रहा था। उन की कथा शायद आरम्भ हो चुकी थी। चेतन अपनी उन मानसिक उलझनों में इस हद तक उलझा हुआ था कि नारायण कब उस का हाथ थामे उसे हाल में ले गया, उसे मालूम नहीं हुआ। वह तब चेता जब वह नारायण के साथ पीछे हाल के दीवार से लगी ठंडी बैंच पर बैठ गया।

स्वामी जी तब बड़े मनोयोग से भक्ति की महिमा का बखान कर रहे थे :—

"जो मनुष्य भगवान के योग से दूर है, भक्ति धर्म में रत नहीं है, उसकी बुद्धि स्थिरता को नहीं लाभ कर सकती। निश्चयात्मक बुद्धि ही को स्थिर-बुद्धि कहा गया है और वह निश्चय तब तक होना कठिन है, जब तक आत्म-परमात्म-स्वरूप की उपलब्धि न हो जाय !"

चेतन ने पहले के शब्द नहीं सुने। 'आत्म-परमात्म' शब्द से वह तनिक चौंका। स्वामी जी तब कह रहे थे: —

"आत्म-परमात्म स्वरूप की प्राप्ति केवल धर्म-मय-भक्ति-योग से होती है। भक्ति-रहित उन को भावना भी नहीं मिलती। शुद्ध भावों का उन के भीतर भारी अभाव बना रहता है। ध्यान में, विचार में, मनन में, श्रद्धा और विश्वास में वह डाँवाँडोल बना रहता है। एक क्षण में उस की निवृत्ति नहीं ठहरती। ऐसे भावना-हीन मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती। वह सदा अशान्त, चंचल-चित्त रहता है। उसे सुख कहाँ मिलेगा ? शान्ति कैसे मिलेगी ?"

शान्ति—शान्ति—शान्ति—चेतन ने बेज़ारी से सिर हिलाया और उठ खड़ा हुआ। इतनी कटुताओं, विषमताओं, भूख, बेकारी, ग़रीबी, अवहेलना, उपेक्षा, निरादर, शोषण, उत्पीड़न में घिरा कोई स्वाभिमानी स्वतन्त्र प्रकृति का व्यक्ति शान्ति-लाभ कैसे कर सकता है ? और फिर यादराम जैसे करोड़ों अपढ़, अशिक्षित लोग इस गहन दर्शन को समझ कर उस पर कैसे चल सकते हैं ? उन के पास इस मनन, बोधन और चिन्तन के लिए बुद्धि, विवेक और समय ही कहाँ है ?

और समाज मन्दिर से निकल कर वह सीधा रुल्दू भट्टे के अपने उस कमरे में पहुँचा और गयी रात तक जलता-सुलगता बिस्तर पर करवटें बदलता रहा। शिमला ने एक दिन के लिए भी उसे अपने में न समोया था। परायेपन का जो आभास कविराज के घर, रुल्दू भट्टा के वातावरण और शिमले के उस दिखावे के जीवन में उसे लगा करता था, वह जैसे पूरे दल-बल के साथ उस पर छा रहा था। और वह उसी दिन वहाँ से भाग कर अपने उसी जालन्धर और लाहौर के जीवन में अपनेपन को पा लेना चाहता था। प्रातः के चार बजे होंगे, जब उस ने मन ही मन निश्चय किया कि अब वह एक दिन को भी शिमला न रहेगा, पुस्तक तो उसकी समाप्त हो ही चुकी है, सवेरे ही कविराज जी को सौंप कर कह देगा कि वह वापस जाना चाहता है।

न जाने इस निर्णय से उसे संतोष हो गया, अथवा उस के तन-मन दोनों थक कर चूर हो चुके थे कि यह निश्चय कर के जब वह लेटा तो उसे तत्काल नींद आ गयी।

सुबह अभी वह बिस्तर से पूरी तरह उठा भी न था कि

वाला विवाह और बीसियों दूसरे बातें ! और उसे संकोच होता कि इलावलपुर की अपनी उस मूर्खता के बाद वह कौन सा मुँह लेकर नीला के सामने जायगा ।

कभी वह सोचता कि नीला उस घटना को भूल गई होगी, अपने विवाह की प्रसन्नता में उसे वह सब याद न रहा होगा । और यह सोच कर वह अपेक्षाकृत त्वरा से पग धरने लगता, किन्तु दूसरे क्षण उसे ख्याल आता, यदि वह न भूली ? यदि वह प्रसन्न न हुई ?.....और उस की गति मन्द पड़ जाती । इसी प्रकार तीव्र-मन्द गति से चलता-चलता वह बस्ती के अड्डे पर पहुँच कर तांगे में आ बैठा था । किन्तु उस की विचार धारा न टूटी थी । उसे पता नहीं कब तांगा चला, कब बस्ती के अड्डे पर पहुँचा, वह कब उतरा और बस्ती का टेढ़ा-मेढ़ा बाज़ार पार कर पण्डित वेणी प्रसाद के मकान के सामने जा पहुँचा ।

ड्योढ़ी पार करते ही सबसे पहले जिस से उस का साक्षात्कार हुआ, वह थी स्वयं नीला । आंगन के कोने में नाली पर अपनी पतली बांह बढ़ाये हुए वह बैठी थी । उस की कलाई पर जोंकें लगी हुई थीं और उस का लोहू पीकर धीरे-धीरे फूल रही थीं ।

पल भर के लिए चेतन उस गोरी-गोरी कलाई और उस से चिपटी हुई उन भूरी-भूरी जोंकों को देखता रहा । फिर वहाँ से हट कर चेतन की दृष्टि उस के मुख पर गई । उसे लगा जैसे वह कुछ पीला हो गया है । उसे लगा जैसे नीला कुछ दुबली भी हो गई है । परन्तु उस ने यह भी पाया कि पीली दुबली हो कर वह पहले से भी सुन्दर दिखाई देने लगी है । वह शायद 'माइयाँ' बैठी थी, क्योंकि उस के कपड़े मैले थे और उन पर जगह-जगह पीले उबटन के धब्बे पड़े हुए थे ।

उन मटमैले कपड़ों में भी उस की देह का सोना जैसे कुन्दन बन कर दमक उठा था। यौवन अभी पूरे वेग से न उतरा था और वह उस अर्ध-विकसित कली सी लगती थी जिसे सूर्य के स्नेह-स्पर्श ने अभी फूल बनाया हो।

एक रूखी सी 'नमस्ते' चेतन की ओर फेंक कर नीला फिर अपनी कलाई से चिमटी हुई जोंकों को देखने लगी।

चेतन का समस्त संकोच जैसे पूरे वेग से लौट आया। उस के पास से होकर वह चुपचाप दालान की ओर बढ़ गया और लोहे की खाली कुर्सी पर जा बैठा।

क्या शिमले से जालन्धर तक इतनी दूर वह केवल यह रूखी-फीकी नमस्ते पाने के लिए आया था? उसे खेद हुआ वह क्यों चला आया इस विवाह में। इलावलपुर की घटना के बाद उसे कभी नीला के सम्मुख न आना चाहिए था।

उस ने कनखियों से नीला की ओर देखा। चेतन की ओर पीठ किये वह निरन्तर उन जोंकों को देख रही थी। एक बार भी पलट कर उस ने चेतन की ओर न देखा था। कदाचित वह उस घटना को न भूली थी; उस ने उसे क्षमा न किया था। वह क्यों चला आया वहाँ? और उस का जी चाहा कि वापस भाग जाय। किन्तु तभी उस की बड़ी-साली गोद में अपने डेढ़-दो वर्ष के रिरियाते बच्चे को उठाये हँसती मुस्कराती वहाँ आ गई।

"नमस्ते जी!" बच्चे को पुचकारते हुए उन्हों ने चेतन को अभिवादन किया।

निमिष भर के लिए चेतन के कानों में नीला के वे शब्द गूंज गये जो उस ने इलावलपुर में अपनी इस बड़ी बहन के गृह-जीवन के बारे कहे थे। इस फूहड़ को कौन इंजीनियर पसन्द करेगा—चेतन ने

सोचा, किन्तु प्रकट उस ने हँस कर कहा, "नमस्ते नीला जी, कहिए प्रसन्न तो हैं।"

"कहिए कब आये?" नीला जी बोलीं, "आप की राह देखते देखते तो आँखें पक गईं।"

"आज ही सुबह आया हूं।" चेतन बोला और फिर उस ने नीला की ओर देख कर कहा, "नीला की बांह में क्या कष्ट है?"

"फोड़ा उठ आया था कलाई पर, हकीम ने जोंकें लगाने का आदेश दिया है।"

"ब्याह स्थगित क्यों नहीं कर दिया आप ने?"

"लड़के को (दूल्हे को) फिर छुट्टी नहीं मिल सकती। बड़ी मुश्किल से एक महीने की छुट्टी लेकर आया है। सेना की नौकरी ठहरी, फिर जगह समीप हो तो भी कुछ हो सकता है। किन्तु बर्मा से तो बार-बार नहीं आया जा सकता।"

"बर्मा!" चेतन के दिल को धक्का सा लगा, "क्या करता है वह?"

"मिलिट्री एकाऊंटेंट है रंगून में।"

तब चेतन के सामने नीला का पीला दुर्बल मुख घूम गया। उसके गले में गोला सा आकर अटक गया। आर्द्र होकर उस ने कहा, "पर आप ने बड़ी दूर तैं की नीला की शादी।"

उत्तर में उस की साली ने बताया कि लड़का अढ़ाई सौ रुपया मासिक पाता है और नाते में उन का देवर होता है—उन के श्वसुर के बड़े भाई का लड़का। बड़ा नेक, सहृदय और परिश्रमी है। पाँच वर्ष हुए, उस की पत्नी मर गई थी। इस के बाद उस ने विवाह नहीं किया। एक से दूसरे स्थान पर बदली होती रहती थी, एक जगह टिक न पाता था। अब उसे विश्वास है कि शीघ्र ही उस की बदली पंजाब

में हो जायगी, इस लिए उस ने लिखा था कि उस के लिए लड़की देख दी जाय । उन्हें पता चला तो उन्होंने झट नीला की सगाई वहाँ कर दी।

अपनी इस क्रियाशीलता पर अपने आप हँसते हुए मीला जी ने बच्चे के निरन्तर रिरियाने पर एक हल्का सा थपेड़ा उसकी पीठ पर जमाते हुए कहा, "कम्बख्त इतना बड़ा हो गया है फिर भी मेरी जान खाये जाता है।" तभी शायद काम में व्यस्त चन्दा उधर से गुज़री । तब चिल्ला कर उसे चेतन के लिए कुछ लाने का आदेश दे कर चेतन की बड़ी साली पड़ोसिन से बात करने को बढ़ गई और वह मर्माहत सा वहाँ बैठा रह गया ।

रंगून, विधुर (पाँच वर्ष का) और मिलिट्री एकाऊटेंट—ये तीनों शब्द उस के कानों में बार बार गूंजने लगे । चेतन ने एक बार फिर नीला को देखा । उसके हाथों से जोंकें उतार ली गई थीं । फोड़े का उभार कम हो गया था । रक्त-स्राव के कारण उबटन की केसर से मिला उस का पीलापन कुछ और अधिक बढ़ गया था । उस की आयु पन्द्रह सोलह वर्ष की थी, पर उस समय वह तेरह की दिखाई देती थी । यह कली खिलने से पहले ही बिंध जायगी और फिर धीरे धीरे मुरझा जायगी ! चेतन के हृदय में टीस सी उठी । यदि वह इलाबलपुर में पण्डित बेणी प्रसाद से वह सब न कहता तो क्या नीला इतनी जल्दी काले कोसों दूर, एक विधुर मिलिट्री एकाऊंटेंट की दूसरी पत्नी बनने जाती । अपनी मूर्खता की गुरुता और भी बढ़ कर चेतन के सामने आने लगी । उस के लिए वहाँ बैठना दुष्कर हो गया,। वह उठा, पर तभी अपने गोल गुलगोथने मुख पर मृदु-हास बिखेरती हुई, तश्तरी थामे चन्दा वहाँ आ गई ।

ारा ;दिन चेतन चोरों की भांति नीला से बातें करने का अवसर रहा । वह अवश्य उस से रुष्ट थी । वह इतने महीनों के बाद था, यदि रुष्ट न होती तो अपनी मुखर चंचलता से घर भर को देती । विवाह में उस की चंचलता रुक जाय—चाहे वह उस का ही क्यों न हो—ऐसा सम्भव न था । पर वह तो ऐसे यन्त्र-त सी घूमती थी जैसे विवाह उस का अपना नहीं, किसी दूसरी अपरिचित लड़की का हो । चेतन से वह कन्नी काटती रही । ायों, बहनों, भावजों या पड़ोसिनों में घिरी रही । दो एक संक्षिप्त या एक आध वाक्य के अतिरिक्त उन दोनों में कोई भी बात न की थी ।

"नीला कैसी हो ?"

"अच्छी हूँ !"

और वह किसी सहेली से कोई बड़ी महत्वपूर्ण बात करने चल

"नीला तुम तो दुर्बल हो गई हो ।"

"नहीं तो जीजा जी ।"

और सहसा भावज से कोई आवश्यक मन्त्रणा करना उसे याद गया ।

"नीला अब तो तुम बड़ी दूर चली जाओगी ।"

"हाँ जीजा जी !"

"नीला तुम मुझसे रुष्ट हो ?"

"नहीं जीजा जी !"

और इस से अधिक उत्तर चेतन उस से न पा सका था। उस छोटे से आंगन में एक साथ इतना कुछ हो रहा था। इतनी चहल-पहल थी, इतने लोग आ जा रहे थे और फिर इस सब कोलाहल में उस की बड़ी साली अपने देवर के स्वभाव, वेतन, रहन-सहन आदि का बखान निरन्तर इस प्रकार करती रही थी कि नीला से सदा को बिछुड़ने से पहले उस से खुल कर बातें कर लेने, उस से क्षमा मांग कर हल्का हो लेने का अवसर चेतन न पा सका था। झल्ला कर खाना खाने के बाद वह ऊपर चौबारे में निवाड़ के पलंग पर जा लेटा था।

रंगून के उस विधुर मिलिट्री एकाऊंटेंट की प्रशंसा न जाने चेतन को क्यों अच्छी न लगी थी। लेटे लेटे उस के मन में सहसा विचार उठा कि नीला के इस मौन का कारण कदाचित् कहीं इतना अच्छा दूल्हा पाने का गर्व तो नहीं। उस की साली नीचे आंगन में फिर किसी पड़ोसिन के सामने अपने देवर की प्रशंसा कर रही थी, अपनी बहन के भाग्य को सराह रही थी और लड़का रोक लेने में उसने जिस त्वरा से काम लिया था, उस की प्रशंसा चाह और पा रही थी। चेतन के लिए वहाँ लेटे रहना कठिन हो गया। अपने भावी पति के इन गुणों को सुन कर नीला की आकृति पर कैसे भाव आते हैं, यह जानने के लिए वह आतुर हो उठा। झपाके के साथ वह नीचे गया। दालान के अँधेरे कोने में घुटनों पर ठोड़ी टिकाये, अपने दोनों हाथ पैरों पर रखे, नीला चुप बैठी थी। न जाने वह अपनी बहन की कोई बात सुन भी रही थी या नहीं। चेतना-हीन, भावना-हीन सी वह बैठी थी। बहाने से जब चेतन उस के पास जा बैठा तो नीला ने ठोढ़ी के बदले गाल अपने घुटनों पर टिका कर मुँह दूसरी ओर कर लिया। क्या नीला

रो रही है ? चेतन का हृदय धक-धक करने लगा। क्या उसे इस विवाह का दुख है ? और चेतन मन ही मन सान्त्वना भरे, पश्चात्ताप भरे, क्षमा भरे कुछ शब्द सोचने लगा। पर उस की सास ने नीला को आवाज़ दी। (बारात आने वाली थी और उस से पहले किसी रस्म का पूरा होना आवश्यक था।) नीला उठ कर आंगन में गई तो प्रकाश में चेतन ने देखा कि नीला के मुख पर रोने जैसा कोई चिन्ह नहीं। वहाँ दर्प की भी कोई भावना नहीं। राग द्वेष, उल्लास-विषाद, सुख-दुख का कोई भी भाव वहाँ नहीं। एक विचित्र, कठोर कठिन उदासीनता ही वहां छाई है। चेतन विमूढ़ सा खड़ा रह गया।

तभी बाहर बारात के आने का शोर मचा और उस की सास ने उसे बारात के स्वागत को जाने के लिए कहा।

बस्ती के एक एडवोकेट से मांगी हुई ब्यूक कार में दूल्हा के रूप में जो व्यक्ति मुँह पर सेहरे लगाये बैठा था, उसे देखकर न केवल चेतन को किसी प्रकार की ईर्षा नहीं हुई, बल्कि नीला के भाग्य और भविष्य पर उस का हृदय करुणा से भर आया।

क्या यही वे देवर महोदय हैं, जिनके गुण सुबह से गाये जा रहे थे ? बस्ती के एक दरवाज़े से बस्ती के दूसरे दरवाजे के बाहर धर्मशाला तक (जहाँ बारात के ठहराने का प्रबन्ध था) बारात के साथ जाते-जाते, उस के उतरने और नाश्ते आदि का प्रबन्ध करते-कराते चेतन ने इस मिलिट्री एकाऊंटेंट दूल्हा को हर कोण से देख लिया। गंजी होती हुई चाँद पर जवानी की यादगार के रूप में चंद बाल, आँखों के नीचे बढ़ते हुए गढ़े, उभरे हुए जबड़े, पिचके हुए कल्ले, (जहाँ हँसने से तो दूर, मुस्कराने ही से झुर्रियाँ पड़ जाती थीं) कृत्रिम

दाँत और पैंतीस से चालीस को पहुँचती हुई उम्र, यह था वह 'लड़का' जिसे श्रीमती प्रमिला देवी ने अनदेखे ही अपनी छोटी बहन के लिए चुना था।

बारात को धर्मशाला में उतार कर जब चेतन घर पहुँचा तो उस ने रसोईघर की चौखट में खड़ी अपनी सास को अपनी बड़ी साली से कहते पाया :

"तुमने देखा न था लड़के को मीला ?"

चेतन की बड़ी साली ने आँखों में आँसू भर लिये। "मुझे क्या पता था चाची कि इतनी उम्र है, वह तो बर्मा ही में था जब मैं ससुराल गई, मुझे तो चित्र दिखाया गया था। पिता जी नीला का सगाई जल्दी करने पर ज़ोर दे रहे थे। अढ़ाई सौ रुपया लड़के का वेतन था। मैंने रोक लिया।"

"बेचारी नीला!" चेतन की सास ने दीर्घ-निश्वास छोड़ा, "वह तो बच्ची है अभी।"

अपनी सास के ये शब्द तीर की भाँति चेतन के अन्तर में पैठ गये। उस के लिए वहाँ बैठनां, नीला से आँखें मिलाना कठिन हो गया। वह फिर ऊपर चौबारे में चला गया और जाकर अनबिछे पलंग पर लेट गया।

नीला के पिता ने जल्दी की और उस की बहन ने अनदेखे अनजाने (रिश्ते में अपने दूर के) देवर का केवल चित्र देखकर, उस से अपनी छोटी बहन की सगाई कर दी। पर उन की इस जल्दी की तह में था क्या ? इलावलपुर की वह छोटी सी घटना, जब नीला ने अपने इस डरपोक जीजा जी के बालों पर हाथ फेरते हुए अपना स्नेह प्रकट किया था ! क्या वह इतना बड़ा दोष था ? इतना बड़ा पाप था कि उस को जीवन भर उस बूदम मिलिट्री एकाऊंटेंट से बाँध दिया जाय !

में किस किस कवि की कृति पर डाका पड़ेगा, न जाने वह (अभी लिखा जाने वाला) सेहरा पहले कितने दूल्हों और उनके सगे-सम्बन्धियों को प्रसन्न कर चुका होगा और उस के बल पर 'हुनर' साहब ने कितनी जेबों को हल्का करने का 'हुनर' दिखाया होगा ? रणवीर की आँखों में जो उल्लास और उस की वाणी में जो उत्साह था, उसे देख कर चेतन को अपना उस समय का उल्लास और उत्साह स्मरण हो आया जब पहली बार हुनर साहब से उस की भेंट हुई थी। मन ही मन रणवीर की मूर्खता पर दया-भाव से हँस कर उस ने आँखें मूंद लीं।

चेतन सारी रात जागता रहा। बारात के आने से लेकर विवाह-संस्कार के अन्तिम मन्त्र तक खोया खोया सा प्रत्येक रस्म को देखता रहा था। नीला के इस अनमिल विवाह पर उसे अतीव दुख था और यद्यपि वह अपने मन को कई तरह से समझा चुका था, किन्तु फिर भी हृदय के किसी कोने में वह अपने आप को उस का दोषी समझता था। नीला जीते जी, उस के देखते देखते, कब्र में डाली जा रही थी और वह विवश था। और फिर ये बाजे, ये रस्में, ये गीत ! जिस चीज़ ने उस की मानसिक पीड़ा और भी अधिक बढ़ा दी थी, यही गीत थे। उसने ज्यों ही दूल्हा को देखा था उस के कानों में 'सोहाग' के वे बोल गूंज उठे थे जो उस ने घर में प्रवेश करते ही सुने थे—

चन्दन दे ओहले ओहले क्यों खड़ी, नी बेटी !
चन्दन दे ओहले ?
मैं ते खड़ी आं बाबल जी दे कोल, बाबल वर लोड़िए।
नी बेटी ?
केहो जेहा वर लोड़िए ?

बाबल, ज्यों तारियाँ विच्चों चन्न, चन्न विचों कान्ह,
कन्हैया वर लोड़िए*

साँझ को देर तक रहँट के पास बैठे रहने के बाद जब वह लौटा था तो घोड़ी की रस्म कभी की समाप्त हो चुकी थी और लग्नों की तैयारियाँ हो रही थीं। दूल्हा वेदी के नीचे आ बैठा था, पंडित जी हवन की आग सुलगा रहे थे और आँगन में वर और वधू पक्ष के लोग इकट्ठे हो चुके थे। चेतन चुपचाप जाकर आँगन की दीवार से पीठ लगा कर बैठ गया था।

नीला का विवाह आर्यसमाजी रीति के बदले सनातनी ढंग से हो रहा था। पंडित वेणी प्रसाद स्वयं आर्य्य समाजी विचारों के थे, किन्तु मध्य-वर्गीय घरानों में प्रायः लड़की के पिता का धर्म, वर अथवा उस के पिता के विचारों के अनुसार बदलता रहता है। वे समस्त रस्में जिन का अभाव चेतन को अपने विवाह पर खटकता था, अपने समस्त गुण-दोषों के साथ यहाँ विद्यमान थीं। भाँवरें भी सनातनी ढङ्ग से हो रही थी। जब गठरी सी बनी नीला को दो बालिश्त का घूँघट काढ़े वेदी के नीचे खारे पर बैठा दिया गया तो सामने बरामदे में बैठी हुई स्त्रियों ने गीत छेड़ दिया।

ओह दिन याद कर कान्हा.....

---

† ऐ बेटी तू चन्दन के पेड़ की ओट में क्यों खड़ी है?

मैं तो बाबल (पिता) के हुजूर मे खड़ी हूँ क्योंकि मुझे वर चाहिए

ऐ बेटी तुझे कैसा वर चाहिए?

ऐ पिता जैसे,तारों में चाँद और चाँदों में कान्ह, वैसे ही मुझे भी कन्हैया रूप वर चाहिए।

थान्हा ! और चेतन के कानों में फिर सुहाग के वे बोल गूँज उठे। 'कैसा कान्ह वर ढूंढ़ा है नीला के लिए !" उस ने मन ही मन कहा और एक व्यंग्यमयी मुस्कान उस के ओठों पर फैल गई। कौन लड़की है जो चाँद सा वर नहीं चाहती ? किन्तु चाँद सा वर क्या सभी को सुलभ है ? उन को बात तो दूर रह जो स्वयं कुरूपा होने पर भी चाँद सा वर चाहती हैं, पर उन युवतियों में से भी कितनों को ऐसा वर मिलता है जो हर प्रकार से ऐसे वर के योग्य हैं ? प्रति दिन कान्त कामिनी तरुणियाँ, अनमिल युवकों, अधेड़ों अथवा विधुरों के सङ्ग बांध दी जाती हैं और ये अपढ़ स्त्रियाँ अपने गीतों में निरन्तर उन्हें कान्ह और कन्हैया बनाया करती हैं। क्या इनके आँखें नहीं ? क्या ये चुप नहीं रह सकतीं ? यदि लड़की का गला घोंटना ही अभीष्ट है तो क्या यह 'सत्कार्य्य' मौन रूप से नहीं हो सकता ? क्या इन बाजों गाजों और बेचारी लड़की के जले हुए जी को और भी जलाने वाले इन गीतों के बिना काम नहीं चल सकता ? चेतन ने देखा उन गाने वालियों में उस की सास भी थी जिसने सांझ ही को भरे हुए गले से कहा था—'और नीला तो अभी बच्ची है', और वह पड़ोसिन भी थी जो बोली थी 'लड़की का गला घोंट दिया बहन ने ललता की मां !' यन्त्र-चालित सी वे इन घिसे-पिटे गीतों को भावना-रहित, निर्लिप्त भाव से गा रही थीं। उन के लिए जैसे इन गीतों को गाना विवाह की इस रस्म की पूर्ति का एक अङ्ग मात्र था।

और चेतन को यह सब सोचते-सोचते उन समस्त रस्मों से घृणा हो उठी—उन अंधी-बहरी रस्मों से—जो भावनाहीन चक्की की भाँति मानवों के हृदय और जीवन पीसे जा रही थीं। क्या कभी ऐसा समाज न बनेगा जो इन रस्मों से स्वतन्त्र हो या जहाँ ये रस्में देखें, सुनें, अनुभव करें और समय के अनुसार (बलिदान चाहे बिना) अपना-

चोला बदलती रहें।

अपने मनोभावों का, उस पीड़ा का जो उस के अन्तर में प्रति पल तीव्रतर हो रही थी, विश्लेषण करते करते चेतन नीला की मानसिक स्थिति के सम्बन्ध में सोचने लगा। वह क्या सोचती होगी? ये गाने और रस्में उस के मन पर क्या प्रभाव डाल रहे होंगे। उस ने आँख उठाकर नीला की ओर देखा। गठरी सी बनी वह चुपचाप बैठी विवाह संस्कार में योग दे रही थी। चेतन को लगा, जैसे वह मिट्टी का एक बड़ा सा लौंदा बन गई है, और उसके अन्तर की बिजली सदा के लिए बुझ कर रह गई है।

आँगन की दीवार से पीठ लगाये वह इसी प्रकार खौलता रहा था और विवाह की ज़ंजीर नीला के गिर्द कठिन से कठिनतर होती गई थी। वह बैठा रहा था और पण्डित ने अन्तिम मन्त्र पढ़ कर वर के बड़े भाई को बधाई दी थी और स्त्रियों ने अलसाये हुए कंठों से नया गाना छेड़ दिया था।

रणवीर के चले जाने के बाद चेतन ने फिर सोने का प्रयास किया। पर उस की मुँदी हुई आँखों के समक्ष रात की घटना अपने छोटे से छोटे ब्योरे के साथ घूमने लगी और उस के विशृङ्खल विचार और भी बिखर उठे। उस की नींद एक दम उड़ गई। उस की आँखें भी मुंदी न रह सकीं। उसने करवट बदल ली। दिन बहुत चढ़ आया था। प्रकाश से कमरा जगमगा रहा था। नीचे खूब चहल-पहल थी। पर वह उठा नहीं। वहीं लेटा चुपचाप शून्य में देखता रहा।

यदि वह नीला के पिता को सब बात न बताता, उस की विचार-

धारा ने एक दूसरा मोड़ लिया—तो करता भी क्या ? क्या वह चन्दा को छोड़ सकता था ? क्या नीला से विवाह कर सकता था ? और वह मन ही मन हँसा । उस आर्थिक, समाजिक और नैतिक स्थिति में यह कब सम्भव था । फिर यदि नीला का विवाह किसी सुन्दर, स्वस्थ, तरुण से होता तो क्या वह इतना दुख मानता । तब उस का यही कृत्य जो पाप बन कर रह गया था, पुण्य हो जाता । बारात में उस का परिचय एक अति सुन्दर स्वस्थ लड़के के साथ हुआ था । उस का नाम था त्रिलोक और वह नीला के जेठ का लड़का था । चेतन ने सोचा, यदि नीला का विवाह चचा से न होकर भतीजे से होता तो कितना अच्छा होता ? पर त्रिलोक शायद किसी सम्पन्न किन्तु मूर्ख, कुरूप लड़की से ब्याहा जायगा और चचा उस लड़की का पति बनेगा जो कदाचित भतीजे के लिए उपयुक्त थी । और चेतन को लगा कि उस के, नीला के, त्रिलोक के, इस जर्जर मध्य-वर्ग के समस्त स्त्री-पुरुषों के गिर्द रूढ़ि-ग्रस्त समाज की लौह-दीवारें खड़ी हैं । क्या ये दीवारें कभी न गिरेंगी ? क्या इन की चारदीवारी में घुट कर मरने वाले स्वतंत्र होकर कभी सुख की सांस न ले सकेंगे ?

बाहर गली में बाजे बजने लगे । बारात कदाचित खाना खाने के लिए आ रही थी । चेतन उठा । अंगुलियों में अंगुलियाँ डाल कर उस ने एक लंबी अंगड़ाई ली और अपने उन्मन विचारों को सिर के एक झटके से दूर करने का प्रयास करते हुए वह बाहर निकल गया ।

—o—

चेतन नीला से कुछ कहना चाहता था। पर क्या कहे, उसे सूझ न पड़ा। वह चुपचाप बैठा रहा और नीला ही की भाँति पाँव के अँगूठे से धरती पर बे-नाम से चित्र बनाने लगा।

सहसा बाहर ज़ोर ज़ोर से बाजे बज उठे। शायद हुनर साहब ने सेहरा खत्म कर दिया था और बारात वापस जाने को तैयार थी। तभी बाहर आँगन में चेतन को अपनी बड़ी साली के ये शब्द सुनाई दिये "चले आओ इधर त्रिलोक, यह रही तुम्हारी चाची।"

दूसरे क्षण हँसता लजाता त्रिलोक दालान की चौखट में आ खड़ा हुआ। चेतन उस के कुर्सी लिए छोड़ कर अलग हो गया।

"नीला यह है त्रिलोक, तेरे जेठ का लड़का।"

चेतन की दृष्टि उस नवयुवक पर गई। पंच-शर-हस्त मदन सा सुन्दर! फिर उस ने नीला की ओर देखा—रति क्या इस से अधिक रूपवती होगी?

तभी त्रिलोक ने कहा, "चाची जी नमस्ते!"

नीला ने आँख उठा कर देखा। चेतन को लगा जैसे क्षण भर के लिए नीला की दृष्टि त्रिलोक के मुख पर रुकी, उस का पीला सा मुख लाल हो उठा और उस अँधेरे में उस की उदास आँखों में एक अज्ञात सी चमक कौंध गई।

५५

साडा चिड़ियाँ दा चम्बा वे
बाबल असाँ उड़ जाना।
साडी लम्बी उडारी वे
खवरे किस देस जाना ?*

आधी रात की निस्तब्धता में यह करुण गीत, जैसे किसी दूरस्थ प्रदेश से आकर निरन्तर चेतन के कानों में दर्द उँडेल रहा था। उस का गला भरा आ रहा था और आँखें आर्द्र हो चली थीं।

नीला की शादी हो गई थी। चेतन अपनी पत्नी को वापस जालंधर ले आया था। यद्यपि चन्दा इतने दिनों के पश्चात् उस से मिली थी और यद्यपि रात के अकाश पर बादल रिमझिमा रहे थे और ऋतु अत्यन्त सलोनी और सुहानी थी, किन्तु चेतन का मन जैसे एक दम निस्पन्द सा हो गया था।

चन्दा ने एक दो बार बात चलाने का प्रयास भी किया, पर चेतन के संक्षिप्त उत्तरों ने उसे हतोत्साह कर दिया था। वह कई दिनों की थकी हुई थी, इस लिए चेतन की उदासीनता ने उस के शरीर में सोई।हुई नींद उस की पलकों में भर दी थी और वह चेतन से शिमले की बातें पूछते पूछते सो गई थी।

---

*हमारा तो चिड़ियों का झुण्ड है, ऐ पिता हम चिड़यों सरीखी भिन्न भिन्न दिशाओं में उड़ जायँगी।

ऐ पिता हमारी उड़ान बड़ी लम्बी है, न जाने किस किस देश जायेंगी ?

उस का इस तरह सो जाना चेतन को बुरा लगा था, परन्तु उस का ध्यान उस समय अपने अथवा अपनी पत्नी के मानापमान की ओर न था। उस के सामने तो नीला की बिदाई का दृश्य बार बार आ रहा था और उस के कान निरन्तर सुन रहे थे—वही मधुर करुण गीत—

साडी लम्बी उडारी वे, ख़बरे किस देश जाना !

लम्बी उड़ान ! कितनी लम्बी !! कहाँ जालंधर और कहाँ रंगून ! न जाने सदियों पहले अपने मायके और सहेलियों से दूर, अपनी ससुराल में बैठी किस दुःखिनी की भावनाएँ उस करुण गीत में फूट पड़ी थीं। सदियाँ बीत गईं, पर उस दुःखिनी की परवशता उसी प्रकार बनी हुई है।

चेतन सोचता था, इस गीत को सुनकर नीला के हृदय पर क्या बीत रही होगी ! कितना पूरा उतरता था उस की स्थिति पर यह गीत

साडी लम्बी उडारी वे.........

बाहर वर्षा थम गई थी। चेतन अपनी पत्नी के साथ बरसाती में लेटा था। वह उठ कर छत पर चला आया। बादल छट कर नीलाम्बर पर बहे जा रहे थे। हल्की हल्की समीर चल रही थी। दूर सामने के मकान की ओट में छिपा हुआ पंचमी का चाँद अपनी मन्द ज्योत्सना से काली छत को बादलों की बराबरी करने से रोक रहा था। चेतन के देखते देखते रजत-वक्र सींग की नोक सी छत के ऊपर बादल से बाहर निकलने लगी। आकाश में कई जगह फटे हुए मेघों में नीलिमा चमक उठी, नीचे के अंधकार में सोये खोये से मकानों की रेखाएँ उभर आईं। धीरे धीरे वह वक्र-सींग बाहर निकल आया, कुछ क्षण तक बहते हुए बादलों पर तैरता रहा, फिर शायद कोई भयानक काला बादल चढ़ दौड़ा और वह जैसे एक ओर से

निकला था, वैसे ही दूसरी ओर से बढ़ती हुई उस कालिमा में डूब गया। मकान की छत, फिर बादलों की बराबरी करने लगी। मकानों की रेखाएँ फिर तिमिर के उस बढ़ते सागर में डूब गईं।

चेतन कुछ क्षण छत पर चक्कर लगाता रहा, फिर सीमेंट की ठंडी गीली रौंस (शहनशीन) पर बैठ गया। बायीं ओर मकानों की छतों के ऊपर दिखाई देता हुआ 'बरने पीर' का नीम एक बड़ा सा धब्बा बनकर रह गया था। चेतन निर्निमेष उस धब्बे की ओर देखता रहा, फिर उसी धब्बे पर नीला के विवाह की समस्त घटनाएँ अपने छोटे से छोटे ब्योरे के साथ चित्रित हो उठीं।

दिन भर चेतन उखड़ा-उखड़ा सा घूमता रहा था। अपने सहपाठी मित्रों को उस ने उन के घरों से जा खोद निकाला था और उनकी संगति में किसी न किसी प्रकार समय का गला घोंट कर, वह संध्या को अपने चौबारे में जा लेटा था। जब बारात खाना खाने आई थी तो वह अस्वस्थता का बहाना करके वहीं लेटा रहा था।

किन्तु जब बारात जाने लगी और बाजे बजने लगे तो उस के लिए वहाँ लेटे रहना कठिन हो गया था। उठ कर वह आंगन की मुंडेर पर जा बैठा और जब नीचे आँगन में उस ने त्रिलोक की आवाज़ सुनी तो उस का दिल धक-धक करने लगा।

नीचे चची और जठीए (जेठ के लड़के) में क्या बातें हुईं, यह चेतन न जान सका, किन्तु जब त्रिलोक चला गया तो वह सब जानने के लिए वह आतुर हो उठा। अपनी छोटी साली शीला को अपने 'जीजा जी' के लिए पानी का गिलास लाने का आदेश दे कर वह फिर अन्दर चारपाई पर जा लेटा था। जब शीला गिलास ले आई तो उसने एक घूंट भर कर गिलास को सिरहाने के ताक में रख दिया और अपनी उस नन्हीं मुन्नी साली को गोद में लेकर पूछा—"नीचे कौन आया

था शीलो ?"

और भोली-भाली शीला ने अपने जीजा जी की प्यार भरी गोद में बैठे-बैठे सब कुछ बता दिया था कि और कौन आता, त्रिलोक आया था। नीला बहन से हँसी-मज़ाक करता रहा। बेचारी नीला लजा-लजा कर रह गई, पर उसे लज्जा न आई।

और अपने जीजा जी के गले में बाहें डाल कर उस ने कहा, "आप तो बड़े 'बीबे'[1] हैं जीजा जी, पर त्रिलोक बड़ा 'गोला'[2] है !"

"क्या मज़ाक किये त्रिलोक ने तुम्हारी बहन से, शीलो ?"

पर शीलो बेचारी इस सम्बन्ध में अपने जीजा जी को कुछ न बता सकी। चेतन ने उसे गोद से उतार दिया और चुपचाप जाकर फिर बिस्तर पर लेट गया।

रात को चन्दा उसे स्वयं खाना खिलाने आई थी और उस ने चेतन को बताया कि सुबह ही नीला विदा हो जायगी। वर को शीघ्र ही अपनी नौकरी पर जाना है, इस लिए तीन से अधिक 'रोटियाँ' वे लोग नहीं चाहते, सुबह नाश्ते के बाद ही वे नीला को विदा कराके ले जायेंगे। चन्दा ने उससे यह भी प्रार्थना की थी कि यदि उस का जी वैसा खराब न हो तो नीला की विदाई के समय चेतन को अवश्य नीचे जाना चाहिए। गौना साथ ही दिया जा रहा था, इस लिए चन्दा ने उसे बताया था कि पहले नीला सुबह ही विदा हो कर बारात के अड्डे (धर्मशाला) में जायगी। फिर जब बारात नाश्ते को आयगी तो साथ ही उसे भी लेती आयगी और दस बजते बजते दूसरी और अन्तिम विदाई हो जायगी। चन्दा ने पाँच रुपये भी उस के सिरहाने रख दिये थे कि विदाई के समय वह नीला के हाथ में रख दे।

---

[1] बीबा = अच्छा, [2] गोला = बुरा, [3] दावतें

चेतन ने कुछ उत्तर न दिय था। रुपये उस ने तकिये के नीचे रख लिये थे और चुपचाप लेटा रहा था। तब चन्दा ने पूछा था—"क्या आप का जी बहुत खराब है ?"

"नहीं नहीं, कोई ऐसी बात नहीं, मैं दे दूँगा शगुन के रुपये !" और चन्दा आश्वस्त होकर नीचे चली गई थी।

पर चेतन का जी वास्तव में खराब था ! तन से न सही मन से वह अस्वस्थ था। वहीं लेटे लेटे एक बार फिर उस के सामने इलावलपुर की घटना घूम गई। किस तरह उस की बीमारी की खबर सुनते ही नीला उस की सेवा-शुश्रूषा में आ जुटी थी, उन चार छै दिनों में वह कितना उस के समीप आ गई थी। किन्तु अब ?.....वह कितना भी बीमार क्यों न हो जाय, वह न आयगी। चेतन का जी चाहा, वह सचमुच बीमार पड़ जाय, मरणासन्न हो जाय। वह मर रहा है, यह सुनकर तो वह एक बार अवश्य आयगी। मर कर वह अपने उस पाप का प्रायश्चित कर देगा जो उस ने अनजाने ही नीला का जीवन नष्ट करने में किया था। तब उस की विकृत-अस्वस्थ-कल्पना के सामने उस की अपनी मृत्यु का दृश्य भी घूम गया वह मर रहा है; चन्दा उस के सिर को गोद में लिये बैठी है; उस की सास, उस की माँ, उस के भाई सब आँखों में आँसू भरे उस के आस-पास बैठे हैं। बाहर बाजे बज रहे हैं। नीला को जाना है। वह रुक नहीं सकती। उस के मिलिट्री-एकाऊंटेंट पति मिलिट्री के नियन्त्रण से बँधे हैं। उन्हें रंगून पहुँचना है। उन की नव-परिणीता पत्नी के 'जीजा जी' की बीमारी या मौत, कोई भी घटना उन्हें नहीं रोक सकती। जाने से पहले नीला क्षण भर के लिए आती है। अपने जीजा जी को मरणासन्न देखकर दो आँसू आप से आप उस के गालों पर ढुलक आते हैं। फिर वह चुपचाप उस के चरणों

को छूकर, मुह फेर कर, भाग जाती है ... ...

और चेतन की रात करवटें बदलते बीत गई थी। दूर किसी मुर्ग ने प्रातः की बांग दी थी जब उस का मस्तिष्क थक कर सो गया था।

सुबह जब वह जगा था तो बारात नाश्ता खाकर जा चुकी थी। नीला की पहली बिदाई हो चुकी थी और वह दूसरी और अन्तिम बार जाने को तैयार थी।

"जीजा जी उठिए, जीजा जी उठिए!" शीला के निरन्तर झकझोरने से वह उठा था और यद्यपि उस ने 'चलो मैं आता हूँ शीलो' कह कर फिर लेटने का प्रयास किया था, किन्तु शीला ने उसे सोने न दिया था, "चन्दा बहन ने आप को बुलाया है," उस ने उसे फिर झकझोरा था, "नीला जा रही है।"

वह उठ कर बैठ गया था और शीला नीचे भाग गई थी। पर चेतन नीचे न गया था। मन में उस ने निश्चय कर लिया था कि जब नीला लम्बा सा घूंघट निकाले अपने बड़े भाई या चाचा की गोद में बैठ, अपने वर के पीछे पीछे तांगे में जाकर बैठ जायगी तो वह बिना उस से आँखें मिलाये उस के हाथ में पांच रुपये की भेंट दे आयगा।

न जाने क्यों, न जाने कहाँ से, एक अज्ञात संकोच उस के मन में आकर बैठ गया था। वह सोचता भी था कि वह किस से रूठा हुआ है? नीला से? उस से रूठने का उसे क्या अधिकार है? इस का उत्तर उसे न मिला था। किन्तु उत्तर न पाकर उस के मन का संकोच कम न हुआ था और न वह वहाँ से हिला ही था।

अभी शीला को गये चन्द ही मिनट हुए होंगे कि चन्दा भागी भागी ऊपर आई...चलिए भी! आप अभी तक यहीं बैठे हैं।"

"तुम घबराओ नहीं," चेतन ने अपनी पत्नी को आश्वासन देते

हुए कहा था, "मैं जाकर नीला को शगुन दे आऊँगा। अभी मेरे सिर में चक्कर आ रहे हैं।"

"आप का जी ठीक नहीं तो आराम कीजिए," चन्दा घबरा गई थी, "क्या करूँ इतना काम है नीचे कि आप के पास बैठ नहीं पाई। नीला की विदायगी हो जाय तो आप के सिर में तेल मल दूँगी। लाइए रुपये दे दीजिए, आप की ओर से मैं उस को शगुन दे दूँगी।"

किन्तु चेतन को यह स्वीकार न था। चन्दा को तसल्ली देते हुए बोला, "नहीं, नहीं, कोई ऐसी बात नहीं, तुम चलो मैं आता हूँ।"

और चन्दा के जाने के बाद वह इस बात की प्रतीक्षा करने लगा कि कब बाजे बजने लगें, कब नीचे स्त्रियाँ नीला को लेकर गाती हुई चलें तो वह भी नीचे उतर कर उन के पीछे हो ले।

तभी बाजे बजने लगे और स्त्रियों ने गीले भारी स्वर में गाना आरम्भ किया :

साडा चिड़ियाँ दा चम्बा वे
बाबल असाँ उड़ जाना
साडी लम्बी उडारी वे
खबरे किस देस जाना

चेतन के जी को कुछ होने सा लगा था। उसे अपने आप पर क्रोध हो आया था। क्यों उस ने चन्दा को रुपये न दे दिये। उस का जी कहीं भी जाने को न हो रहा था। वह तो चाहता था, वहीं लेटा रहे और इतने दिन से मन में एकत्र होने वाली पीड़ा को आँखों के रास्ते बहा दे।

क्षण भर को वह फिर लेट गया। जब बाजे दूर चले जायँगे तब वह उठेगा, उस ने मन ही मन सोचा और करवट बदली। पर तभी सीढ़ियों में उसे गहनों कपड़ों में लदी नीला छम छम करती हुई

आती दिखाई दी।

चेतन उठ कर बैठ गया। उस का हृदय धक-धक करने लगा।

नीला चौखट में आकर खड़ी हो गई। दोनों हाथ बांध कर मस्तक तक ले जाते हुए उस ने लगभग आर्द्र स्वर में कहा, "जीजा जी नमस्ते, मेरी भूल-चूक क्षमा कर दीजिएगा।"

वह तेज़ी से मुड़ने को थी कि चेतन ने उठ कर उस का हाथ थाम लिया। उस क क्रोध, ईर्षा, दर्प संकोच, मान की चट्टानें जैसे नीला के एक ही वाक्य से पानी पानी हो कर बह गईं।

"नीला मुझे क्षमा कर दो, मैंने सचमुच तुम्हारा बड़ा अपराध किया है।" और वह उस के चरणों में झुक गया!

"जीजा जी आप क्या करते हैं!" नीला ने उसे कंधों से थामा, और फिर पीठ मोड़ कर वह सिसकी को दबाती हुई नीचे को भाग गई।

बादलों की नयी तहें आकाश पर छा गई थीं, पंचमी के चाँद की ज्योत्सना गहरे अंधकार में जा छिपी थी, मकान, उन की छतें, बरसातियां और बरने पीर का नीम सब अंधकार का अंग बन गये थे। एक दो बूंदें चेतन की नाक पर गिरीं। उस के विचारों का क्रम टूट गया। गीली रौंस पर बैठे-बैठे उस की कमर दुखने लगी। वह उठा, अन्दर बरसाती में चला गया और चुपचाप बिस्तर पर जा लेटा।

बाहर ज़ोर ज़ोर से वर्षा होने लगी और आंगन के जंगले पर पड़ी हुई टीन की चादरें वर्षा के निरन्तर थपेड़ों से क्रन्दन कर उठीं।

—o—